

लेखक

उपकथन।

आधुनिक पशु-चिकित्सा विज्ञान की पुस्तकों का हिन्दी में बिल्कुल अभाव है इसलिये जनता तथा किसानों के पशु-सम्बन्धी रोगों से अनभिज्ञ रहने के कारण, मैंने उनकी कठिनाइयों को दूर करने और पशु-चिकित्सा की जानकारी के लिये ही इस पुस्तक के प्रणयण का प्रयत्न किया है। इसमें पशुओं के संक्रामक या छुआ-छूत से फैलने वाली बीमारियों की चर्चा तथा चिकित्सा विधि लिखी गई है। इस पुस्तक का प्रथम संस्करण हुआ था जो हाथो-हाथ बिक गया, उस समय Control तथा War के कारण इसके मुद्रण में कुछ विशेष व्यय होने से मूल्य कुछ अधिक पड़ गया था तथा नये प्रेस में छपने के कारण कुछ भूलें भी थीं। यह इसका द्वितीय संस्करण है जिसमें भूलों के सुधार में पूर्णरूप से प्रयास किया गया है, नवीन चिकित्सा इत्यादि लिखी गई है, तथा मूल्य में कमी की गई है। जिसे पाठक पढ़कर लाभ उठावें और मूक पशुओं की सहायता कर परोपकार के भागी बनें। यदि इस संस्करण से नये राष्ट्र के निर्माण में कुछ भी सहायता मिली तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

विनीत —

राजेन्द्र प्रसाद सिंह

विषय-सूची

संक्रामक रोगों के फैलने पर नीचे लिखे नियमों का पालन करना अति आवश्यक है।

१. बीमारी की जगहों से पशुओं को हटाना।

२. जानवरों को तीन हिस्सों में बाँटना। (क) जो जानवर बीमार पड़ चुके हों। (ख) जिन पर बीमारी का सन्देह हो। (ग) तन्दुरूस्त जानवर।

३. मरे हुए जानवरों को हटाना।

४. बीमारी तथा मरे स्थानों को शुद्ध करना।

५. बीमारी के जगहों को डाक्टरों द्वारा निरीक्षण, देख भाल कराना।

६. हटाये हुए जानवरों के प्रति कर्त्तव्य का ालन करना।

७. सूई द्वारा ानवरों की रक्षा करना।

—:(०):—

१ बीमारी युक्त जगहों से पशुओं को हटाना

रोग के मुताबिक जानवरों को हटाना जरूरी है जैसे अगर भगवती (Rinderpest) पशुओं में फैली हों तो स्वस्थ पशुओं को तुरत हटाना चाहिये। किसी भी हालत में बीमार

जानवरों के पास से स्वस्थ जानवरों को हटाना अति आवश्यक है।

२ पशुओं के हटाते समय जानवरों को तीन भागों में बांटना चाहिये

१. वैसे जानवर जो बीमार पड़ चुके हों।
२. वैसे जानवर जिन पर बीमारी का शक हो।
३. वैसे जानवर जो स्वस्थ एवं तन्दुरूस्त हों।

बीमार और बीमारी के शक वाले जानवरों को तन्दुरूस्त जानवरों से तीन जगह अलग अलग रखना जरूरी है। इन जानवरों को रखने के लिये अलग अलग आदमी भी रखे जायं, जिनको बीमारी के ख्याल से अच्छे जानवरों के खटाल में जाने की सख्त मनाही रहे, और अच्छे जानवरों को खाने-पीने का इन्तजाम एवं बर्त्तन वगैरह सब अलग अलग होना चाहिये। किसी भी हालत में बीमार जानवरों का बर्त्तन वा खाद्य पदार्थ अच्छे जानवरों के निकट नहीं लाये जायँ। यहाँ तक कि अगर कोई बीमार जानवरों को देखने जायँ, तो उनके लिये खटाल के दरवाजे पर, दो बड़े २ नाद में फेनाईल का लोसन बना रहे। जिसमें जाने आने वाले लोग अपना जूता और छड़ी की नोक जिसे जमीन से सम्बन्ध हो, लोसन में भींगा दें। ताके बीमारी के कीटाणु दूसरी जगह न जायँ। जानवरों के रखने में इस बात का भी ख्याल रहे कि जिधर से हवा बहती हो उधर बीमार जानवरों का खटाल न रहे। नहीं तो बीमारी अच्छे जानवर में भी आ सकती है।

जो जानवर बीमारी वाले खटाल में है, वे तब तक वहाँ से न हटाये जाँय, जबतक बीमारी एकदम हट न जाय, नहीं तो ऐसी गल्ती से बहुत नुकसानी लोगों ने उठायी है।

३ मरे हुए जानवरों को हटाने का नियमः— हर हालत में जानवरों के मुंह, नाक, तथा और किसी इन्द्रियों से अगर कुछ लार अथवा किसी प्रकार का दूषित पदार्थ गिरता हो उसमें सदा कीटाणुओं के रहने एवं बीमारी फैलने का डर बना रहता है। इसलिये सब इन्द्रियों को, जिससे लार वगैरह गिर रहा हो, रूई या पटुआ से, कड़े फेनाईल के लोसन में भींगा कर बंद कर देना चाहिये। मरे हुए जानवर को, उस जगह से दूसरी जगह पर ले जाना हो तो लाश को घसीट कर कभी नहीं ले जाना चाहिये, क्योंकि सड़कों पर अथवा और किसी रास्ते पर ऐसा करने से बीमारी बढ़ने का डर रहता है। वेहतर हो कि मुर्दे को बैलगाड़ी से गाड़ने या फूकने की जगह पर ले जाया जाय।

मुर्दे को हटाने में बीमारी के कीड़े या कीटाणुओं का ज्ञान रखना जरूरी है। जैसे अगर जानवर पिल्ही के कारण से मरा हो तो, उनकी लाशों को जलाना बहुत जरूरी है उसके कीटाणु जो कि स्पोर (Spore) के साथ रहते हैं बहुत ही मजबूत

होते हैं और बहुत तरह की दवाइयों से भी जल्द नहीं मरते, और जहां पर बीमारी एक मरतबे होती है, वहां वे बहुत दिन तक जीवित रहते हैं।

जलाने की जगह—इस प्रकार के नक्शे की बनानी चाहिये। गड़हे की लम्बाई ७ फीट, चौड़ाई १५" पन्द्रह इंच और गहराई १८" आठारह ईंच हनी चाहिये, जहां पर दोनों वांहें गड़हे से मिलती हैं। मिट्टी जो गड़हे की निकलती है तथा खोदने से जो कोन बनते हैं, कहीं पर ढ़ेर कर देना चाहिये और उसके ऊपर तीन-तीन फीट मजबूत लोहे की कील रख देनी चाहिये, जिस पर मरी अड़का कर रखा जा सके। हिन्दुस्तान में १२ मन लकड़ी और ६ बोतल किरासन तेल देने से एक ऊंट, एक बड़ा घोड़ा या एक बड़े बैल को अच्छी तरह से जलाया जा सकता है, और छोटे बैल या छोटे घोड़े के लिये ८ मन जलावन और उतना ही मिट्टी का तेल काफी होता है।

अगर पिल्ही से मरे जानवर को नहीं जलाया जाय तो गाड़ अवश्य देना चाहिये। मतवाही (Rinderpest) और घोड़े का कन्ठसार (Glander) एवं सड़ा (Surra) के बीमारी से मरे हुए जानवरों को या तो जला देना चाहिये और नहीं तो गाड़ देना चाहिए। सब बिमारियों में सिर्फ पिल्ही बीमारी छोड़कर, मरी के चमड़े को कई एक जगह काट कर और उसके ऊपर चुना वगैरह छींट देना चाहिये। ताके चमार

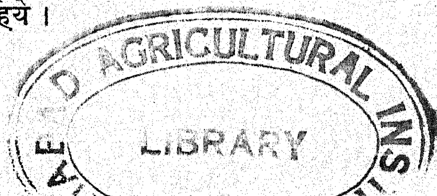
वगैरह उखाड़कर काम में न लावें। मरी को प्रायः पाँच फीट ऊँची मिट्टी से अच्छी तरह ढक देना चाहिये और खास कर पिल्ही से मरे हुए जानवरों को अच्छी तरह ढकना अति आवश्यक है। जिस जमीन पर मरी फाड़ी गयी हो और जिसके वजह से जमीन पर खून और दूसरे दूषित पदार्थ जो गिरे हों, वैसी जमीन को कुदाल से कोड़ कर उसी गड़हे में डाल देना चाहिये। गड़हे का स्थान पानी पीने के तालाब या नदी वगैरह से हट कर होनी चाहिये। खास कर जहां पर पिल्ही के बीमारी से जानवर मरा हुआ गड़ा हो, उस जगह को ठिकाने से घेर कर अगर हो सके तो एक साईनबोर्ड, जिसमें लिखा हो कि यह स्थान पिल्ही की बीमारी से ग्रसित है लटका देना चाहिये।

—:०:—

४ बीमारी एवं मरी स्थानों को शुद्ध करना या छूत छोड़ाना

बीमारी के स्थानो को शुद्ध रते समय दो बातों का ख्याल रख, उसको होशियारी से काम में लाना चाहिये।

(१) किटाणुओं की जीवन कथा, जो हर तरह की बीमारी को फैलाते हैं तथा उनकी बाहरी सहनशक्ति, सूरज की रोशनी, आग की गर्मी और दवाइयों के प्रति कैसी है, का ज्ञान रखना चाहिये।



(२) बीमार जानवरों के दूषित पदार्थ, जैसे, मुंह की लार, नाक की सरदी, घाव का पीव घोड़े के कण्ठासार की बीमारी में, नाक की सरदी खून तथा लार का गिरना, मतवाही की बीमारी में, और खून सा पानी की तरह नाक से गिरना, पिल्ही बीमारी में और घोड़े की गिल्टी फूलने की बीमारी में घाव से पीब का चलना इत्यादि का ख्याल रखना जरूरी है।

(१) जैसे मतवाही यानी भगवती बीमारी का कीटाणु बहुत मुश्किल से पशु के शरीर के बाहर तीन रोज तक रह सकता है उसी प्रकार खोरहा यानी भजहा का कीटाणु १८ दिन तक शरीर के बाहर जीवित रह सकता है। पागलपन (Rabies) का कीटाणु १५ पन्द्रह रोज धूप में सुखाने से बेकाम हो जाता है। सड़ा (Surra) बीमारी का (Parasite)कीटाणु २४ चौबीस घण्टा बाद खतम हो जाता है, और घोड़े का कण्ठासार (Glanders) का कीटाणु खुली हवा में १४ से २४ रोज तक, और बन्द अस्तवल में चार महीने तक जिन्दा रहता है। पिल्ही (Anthrax) बीमारी का कीटाणु जो कि स्पोर पैदा करता है, वह बहुत ही मजबूत एवं वर्षों तक जीवित रह सकता है। घोड़े की गिल्टी सुजने वाली बीमारी [Epizootic Lymp hangitis] का कीटाणु बहुत दिन तक शरीर के बाहर रह सकता है।

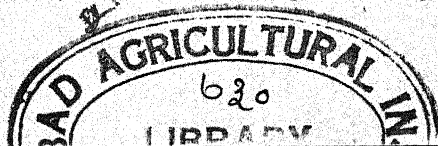
प्रकाश :—इसमें सब प्रकार के कीटाणुओं को नष्ट करने की शक्ति है। हवा और सूरज की रोशनी उनको बढ़ने से रोकती है। यहाँ तक की स्पोर को भी बढ़ने नहीं देती।

अग्नि :—यह सब प्रकार के किटाणुओं को नाश करने वाली वस्तु हैं। यह जानवरों को जलाने उनके खाद्य, बिछावन, और रहने की जगह को शुद्ध करने में बहुत ही लाभदायक और आसान-प्रद है। अत: जब कभी भी ऐसा मौका हो तो इसे काम में लाना चाहिये।

खौलता हुआ जलः—भाफ या खौलता हुआ जल इन सबों के लिये बहुत काम की चीज है। जब कभी रेल के डब्बे को शुद्ध करने का मौका हो तो इसे काम में लाना चाहिए। भाफ जिसकी गरमी २३०° से २३६° तक हो, उससे १५ मिनट में जगह शुद्ध हो जाती है। १४६° की गरमी वाली आग १० मिनट में सब प्रकार के कीटाणुओं को मारने में कामयाब होती है। पिल्ही बीमारी के कीटाणु (Spore) को गरम भाफ ३ मिनट में, और उबलता हुआ जल पांच मिनट में मारता है।

ठण्ढक :—यह बहुत से कीटाणु पर कोई असर नहीं भी कर सकता है।

रसायनिक पदार्थ :—कीटाणुओं को नष्ट करने में बहुत लाभदायक वस्तु हैं। तेजाब (Acids) इस काम के लिये बहुत अच्छी चीज है, लेकिन किमती वस्तु है। पिल्ही बीमारी से



मरी हुई लाश को बालू में सलफ्यूरीक एसिड (Salphuric acid) देकर गाड़ना अति उत्तम है।

इन सब समयों में नीचे लिखे दवाइयों को उपयोग में लाया जा सकता है।

१. कौरोसीभ सबलीमेंट। (Perchloride of murcery)

२. कारबोलिक एसिड। (Carbolic acid)

३. चूना। (Chloride of lime)

४. पकाया हुआ चूना। (Quick lime)

५. नमक। (Sodium chloride)

कौरोसीभ सबलीमेंट :—यह शुद्ध करने की दवाइयां में सब से अच्छी दवा है। इस दवा को लोसन १ में १००० भाग देने से पिल्ही और घोड़े की कण्ठासार कीटाणुओं को १० सेकेण्ड, और पिल्ही के स्पोर को १० मिनट में नाश करता है इसका लोसन १ में ४०० से लेकर १ में १००० भाग तक बनाया जाता है।

कारबोलिक एसिड :—यह बीमारी की जगहों को शुद्ध करने में बड़े ही काम की वस्तु है। लेकिन इससे स्पोर पर कोई असर नहीं होता है। नमक के साथ इस दवा को मिलाने से इसकी तेजी और बढ़ जाती है। इसको गरम पानी में ५% (सैकड़े पाँच) के के हिसाब से लोसन बना कर काम में लाया जाता है। कारबोलिक पाउडर, जो एक चूना में मिला हुआ बिकता है, वह अच्छा नहीं होता।

चूना :—यह बहुत सस्ती चीज है। इसे गोबर के साथ मिश्रित करने से मकान, गच्च, नली, दीवाल और रेलवे डब्बे वगैरह को, शुद्ध करने के काम में आता है। पर सुखी हुई बुकनी भी अपवित्र जगहों में छींटा जाता है। आधा सेर चूना १ गैलन पानी में मिलाकर दीवाल वगैरह को लिपवाना चाहिए। चूना ताजा होने से काम ठीक होता है। इसके जांचने का यह नियम है कि जब यह आखों के पास ले जाया जाता है तो आँख में कड़वापन मालूम होगा। जब किसी दीवाल या रेलवे डब्बे वगैरह में देना हो तो ताजा चूना पानी में मिलाकर कम-से-कम तीन मरतबे पोतना चाहिए।

पकाया हुआ चूना:—इसको ऊपर लिखे मोताबिक इस्तेमाल में लाया जाता है। लेकिन यह उससे कमजोर होता है।

नीमक :—कारबोलिक एसिड और परक्लोराइड ऑफ मरकरी के काम में सहायता पहुँचाता है।

नीचे लिखे नियम के मोताबिक बीमारी के जगहों को शुद्ध किया जाता है।

१ शुद्ध करने की वस्तु तथा नियम।

गच्च और मकान जहाँ पर बीमारी जानवर रहते हो :—गच्च के ऊपर पुआल या घास जो कुछ बचा हो, उसको जला देना चाहिए। उस जगह को ५% प्रतिसत लोसन कारवोलिक एसीड का या सैकड़े दस चूने का पानी बनाकर तीन मरतबे धोना चाहिए। पिछले दोनों मरतबे करौसीभ सवलीमेट

का पानी १ में ४०० से १००० तक बनाकर धोना जरूरी है। यह दवा जो बनाया जाय सबमें गर्म जल इस्तेमाल हो, और नीमक मिलाना चाहिए। इसके बाद अगर हो सके तो उस जगह पर धूप और लगने देना चाहिए।

२ जमीन की मिट्टी परः— जहाँ पर बिमारी वाले जानवर मरे हों या बन्धे हों। उस जमीन पर जो कुछ गोबर पेशाब या और किसी प्रकार के दुषित वस्तु हो उसको कोड़ कर समूची जमीन पर पुआल बिछा कर जला देना चाहिए। जलाने के बाद उस जगह को एक फुट गहरा तमाम कोड़ कर उसमें चूना मिला कर, सबको उस जगह से दूर हटा कर, गाड़ देना चाहिए और नहीं तो बिछा कर जला देना चाहिए। उसके बाद कोड़े हुए जमीन को १४ रोज तक धूप और हवा लगने देना चाहिए। फिर उसके बाद नयी मिट्टी जिसमें ताजा चूना मिला हुआ हो लाकर भर देना चाहिए।

३ नाद-या खाने की जगहः—नाद अगर मिट्टी की हो तो ऊपर लिखे मोताबिक उसको तोड़ कर हटा देना चाहिए। अगर उसमें कुछ घास वगैरह हो तो उसको जला देना चाहिए। अगर नाद लोहे की हो तो उसको आग पर गरम कर देना चाहिए। यह नरुआ जला कर किया जा सकता है और नहीं तो Brazier's lamp अगर मिले तो इससे काम ठिकाने से चल सकता है और खर्चा भी वैसा नहीं पड़ेगा। फिर इसके बाद एक बुरूस से उसको मुलायम साबुन में गरम पानी मिला कर खूब रगड़ना

चाहिए। इस प्रकार तीन मरतबे इसको धोना चाहिए, हरेक तीसरे रोज इसको धोना चाहिए। जिस चीज में मैल बेसी बैठा हो उसको कारबोलिक एसिड से धोना जरूरी है।

शुद्ध करने की वस्तु

४ दिवालः—पहले दिवाल को झाड़ से खूब झाड़ कर तब उसके पलस्तर को छोड़ा देना चाहिए, और खखोरने से जहाँ-जहाँ पलस्तर वगैरह गिरा हो उसको जला देना चाहिए। तब दिवाल को १००-१० के हिसाब से चूने का पानी या १००-५ के हिसाब से कारबोलिक एसिड या १ में १०० के हिसाब से क्रौसीभ सबलीमेट से धोना चाहिए। इस प्रकार उसको देकर तीन बार धोना चाहिए तथा धूप और हवा बराबर लगने देना चाहिए, अगर हो सके तो कम से कम १५ रोज तक हवा लगते छोड़ देना चाहिए। दवाल शुद्ध करने में ध्यान रखना चाहिए कि जिसमें दरार, दवाल के कोना, इसी तरह की और जगहें छुटने न पावें। नाद के सामने की दीवाल पर बिशेष ध्यान देना चाहिए। १५ रोज तक सूखने के बाद दिवाल पर फिर चूना से पोतना चाहिए। थोड़ा तूतिया चूने में मिला कर पोतने से दिवाल और पवित्र होता।

५ लकड़ी की बीम, दरवाजा तथा दरीची वगैरहः—लकड़ी की चीजों को किसी यन्त्र द्वारा खँखोर डालना चाहिए, तब गरम पानी में मुलायम साबुन मिलाकर खूब धोना चाहिए। इसके बाद ऊपर लिखे मोताबिक चूना या कारबोलिक एसिड के पानी से धोकर तब क्रौसिभ सबलीमेट के पानी से धोना

चाहिए। इसको फिर दोहराना चाहिए, जितना छेद वगैरह लकड़ी में हो सबको धो देना चाहिए। उसके १५ रोज बाद दरवाजा और खिड़की को रङ्ग देना चाहिए।

६ जल पीने का बर्तन:—बर्त्तन को १ में ५०० करौंसीभ सवलीमेट और सैकड़े १० चूना का पानी मिलाकर भर देना चाहिए। २४ घण्टे के बाद पानी गिरा कर तब उसमें पोआल देकर जला देना चाहिए। बाद उसको खूब रगड़कर मल देना चाहिए, और १ में ५०० कौस्टिक पोटास (Caustic Potass) मिलाकर उसको खूब मल कर धो देना चाहिए, जिसमें कुछ भी दवा की बू न रहे। उसके बाद पानी भर कर २४ घण्टे तक छोड़ देना चाहिए। फिर पानी फेक कर उस बर्तन को इस्तेमाल में लाना चाहिए।

७ शुद्ध करने की वस्तु (बिछावन और दुषित पदार्थ):—नियम—बिछावन को आग में जला देना चाहिए। यदि जानवर का अभी इलाज हो ही रहा हो और अगर बिछावन किसी वजह से नहीं जलाया गया हो तो उसमें चूना छींट देना चाहिए। फिर उसके बाद गोबर और बिछावन वगैरह को जलाकर गाड़ देना चाहिए। कौरोसीभ सबलीमेट से गोबर या लीद वगैरह शुद्ध नहीं हो सकता है।

८ नाली:—नाली साफ करने के लिये, ठीक न० १ में बताये नियम के मोताबिक काम करना चाहिए।

९ कपड़े, रस्सी, नोखता, तोबड़ा, खरहरा, बाल्टी, वगैरह:— कौनसी चीज जलानी चाहिए और कौनसी नहीं, इसका विचार वह किस तरह की बीमारी है उसी बात पर निर्भर करता है। लेकिन नियम है कि रबर, बुरूस, गद्दी, कम्बल, तोबड़ा और इसी तरह की और कोई वस्तु जो जानवर के इस्तेमाल में बराबर रही हो, उसको जला देना चाहिए। यदि कम्बल जलाया न जाय तो १००-१० प्रति के हिसाब से चूना को पानी में, या खौलते हुए पानी में पांच सैकड़ा कारबोलिक मिलाकर उसे पानी में १२ घण्टे तक रहने देना चाहिए। तीन दिन के बाद दोहराना, और फिर तेहराना चाहिए। लोहे की जो चीज हो उसको आग में लाल कर देना चाहिये। और फिर धूप में १४ रोज तक छोड़ देने के बाद तब ऊपर लिखे पानी में कुछ घण्टों के लिये डाल देना चाहिए।

१० जीन और साज वगैरह:—चमड़े की चीजों को गर्म-पानी और मुलायम साबुन से खूब रगड़ना चाहिए, और इसको तीन मरतबे १०० भाग जल में १० के हिसाब से चुने का पानी या सैकड़े पांच के हिसाब से कारबोलिक एसीड के पानी से धोना चाहिए, और देख लेना चाहिए कि कहीं का हिस्सा या नीचे का हिस्सा छूटने न पावे। हर मरतबे धोने के बाद उसको धूप में सुखाना चाहिए, और जब ठिकाने से साफ हो जाय तो उसमें तेल या खास साबुन जो जीन के लिये होता है लगाना चाहिए। लोहे का जो सामान हो उसको ऊपर बताये नियम के अनुसार शुद्ध करना उचित है।

११ शुद्ध करने की वस्तु शाईस, ग्वाले, और उसके कपड़े लत्ते :—
नियमः-भयंकर छूत वाली बीमारी जैसे चेचक, और खोरहा वगैरह मनुष्यों द्वारा ज्यादा फैलाते हुए पाये गये हैं। जिस तरह बीमारी जानवरों को अच्छे जानवरों से अलग रखा जाता है उसी प्रकार जो मनुष्य बीमारी जानवरों के पास रहता हो या उसकी सेवा करता हो, वह अच्छे जानवरों के पास कभी न आवे। वैसे मनुष्य जो बीमारी पशुओं के पास रहते हों, उन्हें जूता नहीं पहनना चाहिए, और उनके कुरते या कोट की बांह कटी हुई होनी चाहिए, क्योंकि पूरा आस्तीन रहने से कीटाणुओं का आस्तीन में लग जाने से फिर दूसरी जगह बीमारी फैल जाने का खौफ रहता है। दिन भर काम वगैरह करने के बाद शाम को उन मनुष्यों को इस बात का हेदायत रहे कि अपने हाथ पैर कारबोलिक साबुन से धो लिया करें, और बीमार पशुओं के जख्म वगैरह धोने के बाद भी हाथ साबुन से धो लेना चाहिए। पहनने के कपड़े को बराबर बदलना चाहिए जो कपड़े मैले हों उनको साफ करके ऊपर बताये हुए कारबोलिक ऐसीड के पानी में डूबा देना चाहिए और उसी हाते में फींचना चाहिए। बीमारी खतम होने के समय मनुष्यों को जो जानवरों को देखते हों उनको तीन रोज की छुट्टी देनी चाहिए, ताकि वे अपना कपड़ा लता साफ कर लें।

१२ घोड़े के रेलवे डब्बे वगैरह तथा शुद्ध करने की वस्तु:—
वह रेल का डब्बा जो बीमार पशुओं से दूषित हुआ हो

उसको तमाम खूब खंखोरवा कर खंखोरे गये पदार्थों को जलवा देना चाहिए। रेलवे कम्पनियों से लिखा पढ़ी करके भाफ द्वारा जगहों को शुद्ध कर देना चाहिए। इसके लिये भीतर और बाहर कम-से-कम आध घण्टे तक भाफ लगना जरूरी है। उसके बाद १०० भाग जल में १० भाग चूने का पानी उसके ऊपर छींट देना चाहिए, फिर खुली हवा और धूप में छोड़ देना चाहिए। चूने का पानी तीन मरतबा दो या तीन रोज बीच करके देना चाहिए। यदि गरम भाफ का यन्त्र न मिले तो गरम पानी से खूब रगड़ कर धोना चाहिए, जिसमें साबुन और कारबोलिक एसिड १०० भाग में ५ भाग के हिसाब से मिला हुआ हो। उसके बाद ऊपर लिखे मोताबिक चूना छींट देना चाहिये। जिस डब्बे में बिमारी जानवर ढोया गया हो उस डब्बे को सफाई के १४ रोज बाद इस्तेमाल में लाना चाहिए।

४ जहाजों को शुद्ध करना :—

किस प्रकार की बीमारी फैली है इसकी सफाई में ध्यान रखना चाहिए। आधी कारवाई कभी न होनी चाहिए, और जहाँ तक हो सके बीमारी को रोकने का उपाय करना चाहिए। जानवर जो बीमारी से जहाज पर मर गया हो, उस जानवर के सम्बन्ध की जितनी वस्तुएँ हो, सबों को समुद्र में फेंक देना चाहिए तथा यही कार्रवाई बीमार जानवरों के गोबर अथवा चारे के विषय में भी करना चाहिये। गर्म भाफ को जहाँ तक हो सके शुद्ध करने के काम में लाना चाहिए।

उस शुद्ध जगह को खाली कर देना चाहिए। सामुद्रिक यात्रा में समुद्र के जल से खूब उस जगह को धो देना चाहिए। गर्म पानी और मुलायम साबुन का इस्तेमाल भी पूरा होना चाहिए। ऊपर बतायी गयी दवाइयों का प्रयोग करना चाहिए। कच्चे चूने के पानी को खूब हिसाब से देना चाहिए क्योंकि इससे आँख में कड़ुवापन मालूम होता है।

पाठकों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया जाता है, कि बार-बार जिन दवाइयों का प्रयोग बतलाया गया है, इसको कभी न भूलें। क्योंकि ऐसा न करने से कीटाणुओं के जिन्दा रहने का खौफ रहता है।

५ बीमारी की जगहों को डाक्टरों द्वारा निरीक्षण।

हर रोज बीमार जानवरों के निरीक्षण की आवश्यकता है, जिसमें तनदुरूस्त जानवरों को सबसे पहले, तब जिनमें बीमारी का सन्देह है, और सबसे पीछे बीमार जानवरों को देखना चाहिए। नथनों का मुलाहजा करने के बाद हाथों को धोकर कारबोलिक के पानी में शुद्ध कर लेना चाहिए। नथनों के मुलाहजा के कबल धोना नहीं चाहिए। थर्मामिटर का प्रयोग हर जानवरों में करना जरूरी है, क्योंकि जिसको बुखार मालूम पड़े उसको तुरत हटाना चाहिए।

६ हटाये हुए बीमार जानवरों के प्रति कर्त्तव्य।

जब बिमारी किसी जगह पर देखने में आवे तो नीचे लिखे हुए नियमों का प्रयोग करना चाहिए :—

(क) बीमार जानवरों के लिये पीने का बर्त्तन अलग हो।

(ख) बीमार जानवर अच्छे जानवरों के साथ न रहें।

(ग) बीच बीचे में जानवरों की देखभाल करना, जब तक जख्म अच्छे न हो जायँ।

(घ) साइसों का रद्दोबदल ऐसे मौके में नहीं करना चाहिए।

७ सूई द्वारा जानवरों की रक्षा।

घोड़ों के कण्ठासार की बीमारी में मेलीन (Malline Test) की सूई द्वारा जाँच।

जाड़े के दिनों में चेचक से बचने के लिये, बकरे द्वारा बनाया हुआ सूई लगवाना (Goat. Tissue virius vaccination) पिल्ही की बीमारी में पिल्ही का सिरम और भेकसीन (Anthrax serum or vaccine) दिलाना।

डंगहा बीमारी में डंगहा की सूई (Black quarter serum) या (Black quartervaccine) दिलाना।

सड़ा (surra) की बीमारी में नैगनल (Naganol) की सूई बिमार जानवरों को दिलाना।

गरगटी बीमारी में गरगटी (Hamorerhagice Septaemia) सीरम का प्रयोग करना।

लकड़ जीभा या गाल की बतौरी

(Actinomy-Cosis)

बीमारी का स्वभाव :—पशुओं की यह एक खास बीमारी है जो मनुष्यों में भी कभी-कभी होते देखा गया है। यह बीमारी

रेफनगस नामक कीटाणु से बतौड़ जीभ, मुंह, जबड़ा और सिर या गर्दन के चमड़े पर हो जाता है।

घोड़ों को यह बीमारी बहुत कम होती है।

कीटाणु और उनका स्वभाव :—इस बीमारी को इस्ट्रपरजीरीकसबोभीस (Streptothrixbovis) या एकटोनोमाइसीस बोभीस (Actinomycesbovis) पैदा करता है, जो बहुत शीघ्रता से बढ़ता है। यह तीन तरह की शक्ल में पाया जाता है जिसको फीलमेन्ट कोकाई और कल्व कहते हैं। यदि जख्म से एक बून्द पीव लेकर एक सीसे पर फैलाकर खुर्दबीन में देखा जाय तो बालू के कण के समान देखने में आते हैं। यदि इनको शीशे के नीचे चूर कर दिया जाय, और कम शक्तिवाली खुर्दबीन में देखा जाय तो मालुम पड़ेगा कि वह बहुत से गढा के ऐसा पदार्थ कतार बाँधे हुए है, जिनकी मोटी सिरा बाहर के तरफ गदा के समान देखने में आती है। यह रोग होने के कुछ दिनों के बाद देखने में आती है।

यदि घाव का थोड़ा हिस्सा या उसको, शीशे पर रगड़ कर कीटाणु को शुरू ही में रंगकर खुर्दबीन में देखा जाय, तो बहुत बारीक जाल के ऐसा नजर आता है। अतः इसी जाल या फीलमिन्ट (Filament) का ऊपरी हिस्सा या ढक्कन, गदा के समान हो जाता है और जिससे कल्वस (clubs) बनते हैं। और उसी समय फीलामिन्ट (Filament) का प्रोटोपलाजम (Protoplasum) जो जाल में होता है, टूट कर छोटे-छोटे

कण के समान हो जाते हैं जिसको (Coceoid bodies) कोकवायड बडीज कहते हैं।

बीमारी की परीक्षा के लिये उतने रंगने की जरूरत नहीं है। कीटाणु बहुत जल्द मामूली खुर्दबीन में भी देखे जा सकते हैं। लेकिन कीटाणु के ज्ञान के लिये रंग की आवश्यकता है, और जिसके लिये कारबल फूकसीन (Carbal fuchiax Zeichal-neilson Salution) और पीकरीक एसिड की जरूरत होती है; और जिसके फंगस लाल रङ्ग के होते हैं उसके धड़ पीले रङ्ग जाते हैं।

यह बीमारी खास-खास जानवरों को होता है, यह छूत से फैलने वाली बीमारी नहीं है। जब जानवरों में यह बीमारी नहीं हो तथा थोड़े दिन बाद जब बहुत जानवरों को यह बीमारी हो जाय तो समझना चाहिए कि कोई खास चीज के सम्बन्ध से बीमारी फैली है; न कि एक जानवर को दूसरे जानवर के संसर्ग से।

यह बीमारी ज्यादा सर्दीला जगह में देखा जाता है और जीभ और मुंह के हिस्सों से यह जाहिर करता है कि इसके कीटाणु भोजन खाद्य पदार्थ के द्वारा बैठते हैं। जो जख्म या मुंह में घाव इत्यादि द्वारा बीमारी उत्पन्न करते हैं।

यह बीमारी ज्यादातर सुई दिये जाने की तरह से होते हैं। इस बीमारी के कीटाणु बहुत से अनाजों पर भी पाये जाते हैं और ज्यादातर जौ के पौधे पर पाये जाते हैं। जैसे कि

जौ के टुन्डे मुंह में गड़ जाने से उसके द्वारा बीमारी के कीटाणु शरीर में बैठ जाते हैं। मसुड़े में दाँतो के लग जाने अथवा चमड़े पर घाव रहने से भी यह बीमारी होती है।

बीमारी के लक्षण :—जिस जगह में कीटाणु बैठते हैं, वहीं पर बीमारी शुरू होती हैं, यदि जीभ में हुई तो उसमें बड़े-बड़े फोड़े के समान निकल जाते हैं, जो छूने में कड़े होते हैं। फिर इसके बाद बढ़ते-बढ़ते तमाम मुंह में फैल जाते हैं। जिसके बजह से जीभ में सूजन हो जाता है तथा जीभ मुंह के बाहर निकल जाता है। उसे छूने में तख्ता के समान कड़ा मालूम होता है, जिसके वजह से इसका नाम 'लकड़ जीभा' रखा गया है। जो शायद किसी-किसी जानवर में पक जाता है लेकिन ज्यादातर पकते नहीं देखा गया है। जिसके वजह से जानवर चर नहीं सकता है और दुबला होता जाता है।

दूसरी बीमारी की जगह, चेहरे के ऊपर या निचले जबड़े में होती है। जबड़े वाले को 'घुघुआ' भी कहते हैं और यहाँ पर यह घाव खोखलापन लिये हुए होता है और फूटने पर बलुहा पीब निकलता है। कण्ठ में यह बीमारी नहीं होती है। कभी-कभी इसके वजह से माँस बढ़ जाता है।

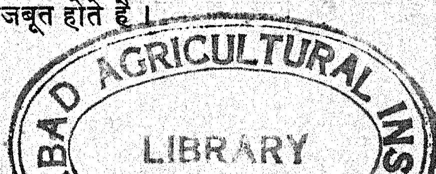
शायद ही कभी चमड़े पर सिर में या गर्दन में भी इसी प्रकार के घाव देखने में आते हैं। इस जगह पर होने से बतौड़े के समान होते हैं, जो कभी-कभी बड़े और चौड़े घाव पाये जाते हैं।

शरीर के भीतर भी सब हिस्सों में जैसे फेफड़ा और कलेजा में भी हो सकता है, लेकिन ऊपर लिखे गये खास उसकी जगह है।

दूसरे बीमारी के लक्षण से मिलाव:—कभी कभी साधारण प्रकार के बतौड़ से तथा गायों के राजक्ष्मा रोग से अथवा घोड़े के बतौड़ से इस बीमारी को पहचानने में गड़बड़ी हो जाती है। लेकिन इसका खास कीटाणु रेफनगस (Rayfungus) या बलुहा पिब होता है, जिसके कण खाली आँख से भी देखने में नजर आते हैं, तथा शीशे पर खुर्दबीन में देखने से तुरत पता चल जाता है। इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिये कि यह बीमारी घोड़े को नहीं होता बल्कि ठीक एक इसी तरह की बीमारी है जिसको बोट्रोमाईकोसिस (Botriomycis) कहते हैं, घोड़ों को होता है।

यह बीमारी होने पर किस तरह का उपाय आवश्यक है।

१ यह बीमारी उतनी जानमारू नहीं है। इसमें जानवरों के बीमार पड़ने पर, दवा करने का मौका मिलता है। इसके लिये जानवरों को कहीं हटाने की जरूरत नहीं है। लेकिन घाव का पीब, या जिस औजार से घाव चीरा गया हो उस औजार को गर्म पानी में उबाल देना चाहिए। पीब लगी हुई रूई या पटुवे को जलाना आवश्यक है। क्योंकि इसके किटाणु स्पोर (Spore) के समान बड़े मजबूत होते हैं।



२ चिकित्सा या इलाज:—घावों को चीर कर पीब सब निकाल कर जख्म को फेनाइल के पानी से रोज धो दे, और तब उसको टींचर आईडीन के लुगल (Lugalsulution) देकर पट्टी बांध देना चाहिये। आएओडाएड बीमारी के लिये पोटासियम, अक्सीर दवा है, तथा जब कभी जहर का लक्षण देखने में आवे तो बन्द कर देना चाहिये। तीन या चार हप्ते में बिमारी अच्छी हो जाती है। जीभ का सूजन धीरे २ कम होता जाता है। बतौरा गायब होते दिख पड़ता है। विनआएओडाएड-औफ-मरकरी (Binedide of murcary) पोटाश-आएओडाएड के बदले में तीन से चार ग्रेन तक १० ग्रेन पोटास आएओडाएड में मिलाकर देना लाभदायक होता है। जब जीभ में बीमारी हो गई हो, तो पानी के समान पदार्थ जैसे मांड़ या सत्तू घोर कर खाने के लिये देना चाहिये।

पोटासियम आएओडाएड देने के बाद दूध इस्तेमाल में नहीं लाना चाहिये, क्योंकि यह दवा दूध के द्वारा बाहर होता है, और इस दवा से दूध भी कम जाता है।

पिल्ही ANTHRAX

इसके तरह तरह के नाम:—इसको कहीं पिल्ही, पील्हा बोखार, टुनकी, और कहीं रोम रोग भी कहते हैं।

रोग की प्रकृति:—पिल्ही पशुओं की एक भयानक प्राण घातक बीमारी है। पिल्ही के कीटाणु (Baullus Anthrax)

द्वारा उसके खून में बैठकर कर सारे खूनको खराब और बेकार कर के छोड़ता है।

किन किन पशुओं को यह बीमारी होती है:—यह बीमारी सब जानवरों को होती है। कम उम्र के पशु इससे अधिक रोगग्रस्त होते हैं। मांसहारी जीव जैसे कुत्ता, बिल्ली, शूकर और जंगली मांसहारी को भी यह बीमारी होती है लेकिन बहुत कम, और पिल्ही से मरे हुए पशुओं के माँस खाने से यह बीमारी उन जीवों को होती है। जिन जीवों को बराबर मांस खाने की आदत हो उनको इस रोग के प्रति कुछ सहन शक्ति हो जाती है। चिड़ियों को यह बीमारी नही होती, जिस बात का ख्याल खास गिद्धों के द्वारा किया जाता है पिल्ही के लाश बराबर इनके द्वारा खाये जाते हैं। मेढ़क को यह बीमारी नहीं होती। चिड़ियों और मेढ़कों को खून की गरमी इस बीमारी के कीटाणु के बढ़ने के लिये सुबिधा युक्त नहीं हैं। इसलिये इनमें यह बीमारी नहीं होती है। घरेलु पशुओं में भेड़, पशु, घोड़े और ऊंट को यह बीमारी होती है, सिर्फ एक अलजिरिया के भेंड़ें को यह रोग नहीं होता। मनुष्यों को यह बीमारी सूई या सांस के द्वारा भी हो जाती है। जैसा उनके कारखानों में होते देखा गया है। जंगलो शाहकारी जीव जैसे हिरण, बकरे ,इत्यादि को भी यह बीमारी बड़े जोर से होती है।

कहाँ-कहाँ यह बीमारी होती है:—यह बीमारी ज्यादा हिन्दुस्तान में होती है। घसकट्टा जब घास बेचने के लिये

लाते हैं, तो गन्दे पानी में घास को धोते हैं जिसके कारण बिमारी फैलती है, और खास-खास जगह है जहां पर बार-बार यह बीमारी होती है, जिससे मालूम होता है कि स्पोर (Spore) वहां पर नष्ट नहीं होता है और उस जगह के जानवर इस बीमारी के अधिक शिकार होते है।

कीटाणु और उसकी प्रकृतिः—पिल्ही बीमारी का कीटाणु जो बड़े कीटाणुओं में से एक है खुर्दबीन से बहुत जल्द देखने में आते हैं। खून जांच करने के लिये, पहले थोड़ा खून, कान के सिरे से बाल छांट कर एक सुई से भौंक कर, खून के छोटे कतरे को एक शीशे पर खूब पतला करके लगा लेना चाहिये। खून को सूखने देना चाहिये, सूखने के लिये स्प्रीट लैम्प पर धीरे से सुखाना चाहिये तब उसको तीन मिनट तक मेथलीन बुलु के पानी उस पर दे देना चाहिये और जो बेसी रंगा जाय तो कल के पानी से धो कर और सूखने देना चाहिये; और तब उसपर कैनेडा का बालसम लगाकर, शीशे को ढांक देना चाहिये। उसीके बीच में कीटाणु एक दो या एक छोटे कतार में दीख पड़ेंगे। यह एक सीधे डण्डे के ऐसा मालूम पड़ेगा, जिसका दोनों सिरा कटोरे के समान कटा हुआ होता है जिसमें कुछ गति नहीं होती है, और जिसकी लम्बाई खून के लाल कौरपसल (रक्त में पाये जाने वाले अणुओं) के बराबर होता है। बीमारी के शुरू में कीटाणु जल्द नहीं मिलते, लेकिन बढ़ी हुई बीमारी के खून में पाये जाते हैं। और मरने पर

पिल्ही जो बढ़ी हुई होती है उसमें पाया जाता है। लाश के सड़ने से कीटाणु नष्ट हो जाते हैं, इसलिये मरने पर जितना जल्द हो सके खून का जाँच करना आवश्यक है।

जब नजदीक में कोई खून के जाँच की जगह न हो तो खून शीशे में लेकर कोई नजदीक के परीक्षालय (Laboratory) में भेज देना चाहिये।

पिल्ही बीमारी का कीटाणु स्पोर पैदा करता है, और स्पोर के वजह से बीमारी बराबर हुआ करती है। जिन्दे जानवरों में स्पोर नहीं हो सकता है लेकिन खून में हवा लगने पर स्पोर पैदा होता है। इसलिये इसमें मरे हुये पशुओं को चीरना मना हैं, यदि इस बीमारी से मरे हुए पशु को फाड़ा भी जाय तो जहाँ गाड़ने का इन्तजाम वगैरह पूरा हो ✓ वहाँ फाड़ना चाहिये। इसके कीटाणु बहुत जल्द नष्ट होते हैं लेकिन इसका स्पोर बहुत मजबूत होता है और शीघ्र नष्ट नहीं होता है, इसलिये जो जगह एक मरतबे इस कीटाणु का स्थान हो गया हो, वह स्थान बहुत दिनों तक स्पोर से घिरा रहता है। यह बीमारी हिन्दुस्तान में वर्षाकाल के बाद होती है, जिसमें स्पोर को बढ़ने का मौका मिलता है और उस स्थान के घास में प्रवेश कर जाता है, तथा उस घास को खाने से बीमारी शुरू होती है।

यह बीमारी खाद्य पदार्थ या पानी के द्वारा होती है। घास इसका खास कारण है। जब इस बीमारी की चिकित्सा हो रही हो उस समय मक्खियों द्वारा भी यह बीमारी फैलती है।

साँस के द्वारा मनुष्यों में जो रोग होता है, वह रोग जानवरों में साँस के द्वारा होते देखा नहीं जाता है।

रोग के लक्षण :—पिल्ही बीमारी के लक्षण बहुत प्रकार के देखने में आते हैं। जिसमें कितने कीटाणु प्रवेश किये हों, और शरीर के किस अँग में प्रवेश किये हों। महामारी के शुरू में लक्षण बहुत भयानक होता है और पीछे मामूली होता है।

इस बीमारी के शुरू में देखा गया है कि बहुत से पशु मरे पाये जाते हैं। साथ ही जो पशु तन्दुरुस्त होते हैं वही इसके शिकार होते हैं। इस बीमारी में ललछाह खून पानी के ऐसा नाक से गिरते देखा गया है, गुदामार्ग बाहर निकले हुए देखे गये हैं, जिसके माँस कुछ कालापन रंग लिये होते हैं। मरे हुए जानवर का बदन बहुत जल्द फूल जाता है, और बहुत जानवरों में ऊपर लिखे लक्षण नहीं भी रहते हैं। वैसी हालत में बीमारी को जानने के लिये खून का जाँच करना अत्यावश्यक है। इस कारण को फूलमीनैन्ट Fulminant or (Appoplectic Anthrax) कहते हैं। यह ज्यादातर भेंड़ या गोरूओं में होता है यदि इस बीमारी को जिन्दे में देखने का मौका हो तो जानवर का चिल्लाना, कहरना और नाक से ललछाह खून, पानी के समान गिरना तथा मृत्यु कुछ मिनटों से लेकर चार घन्टे तक में होती है।

दूसरे प्रकार की बीमारी है जिसको पिल्हा बोखार या भीतरी पिल्ही कहते हैं। जिसमें २४ घन्टों के भीतर मृत्यु होती है

इसके बाद बीमारी कुछ मोलायम पड़ जाती है, जिसमें जानवर कई एक रोज के बाद मरता है या अच्छा हो जाता है। इस बीमारी में बुखार १०४° से लेकर १०७° तक रहता है और मुंह या आँख के माँस देखने में कालापन लिये हुए रक्तस्राव ऐसा होता हैं। नाक से लाल जैसा खून का पानी गिरना, गोबर में खून जो की पानी के ऐसा होता है, तथा पेशाब में भी खून के समान होता है जिससे जानवर बहुत उत्तेजित हो जाता है। नाड़ी कुछ धीमी चलती है, साँस लेने में दिक्कत मालूम होता है, और दिल भी बहुत कमजोर हो जाता है। जिससे फेफड़े का रक्तस्राव बढ़ जाता है उसके नाक से खून भी चलता है। पेट में भी बहुत दर्द और चढ़ा हुआ रहता है।

भीतरी पिल्ही की बीमारी खाने ही के द्वारा होती है। कीटाणु या स्पोर, जिसमें कीटाणु तो पेट के रस द्वारा नष्ट हो जाते हैं पर जो कीटाणु चारा या पानी के साथ भीतर जाते हैं, तीन या चार दिन के भीतर बीमारी पैदा करते हैं।

इस बीमारी से घोड़े अधिकतर बीमार होते हैं और गौओं को भी यह रोग होता है।

इस बीमारी से १०० में ७० और १०० में ६० जानवरों की मृत्यु होती है। तीसरे किस्म की बीमारी है जो बाहरी पिल्ही कहलाती है। यह उतना जोरदार नहीं होता है। इस कारण बहुत से जानवर अच्छे भी हो जाते हैं। घोड़ों में, अधिकतर

हिन्दुस्तान के अन्दर यही बीमारी होती है। जिसमें बहुत बड़े-बड़े सूजन, सिर के चमड़े के नीचे, तथा गले, गर्दन और चेरू के चमड़े में देखे जाते हैं, और यह सूजन बहुत जल्द निकलते है और बढ़ते हैं जो छूने में गर्म और दुखदायी होते हैं, पर पीछे ठण्डे और मुलायम पड़ जाते हैं। इस सूजन में दबाने पर कोई तरह की आवाज नहीं होती जैसा डेंगहा कारण में होता है, और न यह सूजन पकता ही है। बुखार इसमें उतना नहीं होता है, लेकिन लक्षण वर्त्तमान रहते हैं। इस बीमारी की अवधि ३ से ७ रोज तक होती है।

बीमारी ऊत्पन्न ठीक उसी प्रकार से होती है। बीमारी के समय में, पीठ पर, पेट के नजदीक, और पुराने घाव की जगहों पर सूजन होते हैं। यह प्राय: मक्खियां, कीड़ों (काटनेवाले) तथा जीन, कपड़े और घोड़े मलने के सामान से कीटाणु भीतर जाकर सूजन उत्पन्न करते हैं।

रोग की पूर्णता का विचार :—(Diagnosis) बीमारी की पूर्णता तब तक ठीक नहीं, जब तक कि उसके रक्त तथा और दुषित पदार्थों का निरीक्षण खुर्दबीन द्वारा न हुआ हो और रोग के कीटाणु उसमें न मिले हों। इस रोग से मरे हुये जानवरों को फाड़ने से नीचे लिखे रद बदल पाये जाते हैं।

(१) काला अलकतरे के रंग का खून का होना जो कि देखने में चमकीला होता है।

(२) पिल्ही या तिल्ली का दुगुना या तिगुना बढ़ जाना। फुलमीनैन्ट पिल्ही में तिल्ली नहीं भी बढ़ती हैं, लेकिन कीटाणु बहुतायत से पाये जाते हैं।

(३) वाहरी पिल्ही में पीले रंग का तथा रक्त के ऐसे चकते, सूजन के ऊपर देखने में आते हैं।

(४) भीतरी पिल्ही में आंत के परदे का रंग जमे हुए काले खून की तरह हो जाता है। आंत के भीतर रक्तस्राव, नाड़ीयों का फूल जाना और आंत की गिल्टियों में पीले रंग के पीटाओं का सटा रहना और पेट के भागों में जल का बढ़ जाना।

(५) मांसों का रंग काला हो जाना, तिल्ली का बढ़ जाना।

(६) मरी या लाशों का खूब फूल जाना, और बहुत जल्द सड़ना, इस बीमारी के प्रधान चिन्ह हैं।

(७) रक्त वा लाल जल के समान नाक से गीरना, गुदामार्ग का बाहर नजर आना तथा गुदामार्ग से भी खून का गिरना।

बीमारी की जाँच को पक्का समझने के लिये, चूहे तथा विलायती खरगोशों में इस बीमारी के खून की सूई देने से दोनों जानवर बहुत जल्द मर जाते हैं। और इन जानवरों से खून लेकर खुर्दबीन में देखने पर इस रोग के कीटाणु पाये जाते हैं।

महामारी होने पर किन २ उपायों का प्रयोग किया जाता है :-
नीचे लिखे प्रयोगों को काम में लाना चाहिये :—

(१) उन जगहों को खाली कर देना चाहिये जहां पर बीमारी हुई हो।

(२) मरे हुये जानवरों को जलाना अथवा गाड़ना।

(३) घास या खाद्य पदार्थों की जगह को बदल देना।

(४) बीमारी की जगहों को शुद्ध करना।

१ जब मालूम हो कि कोई जानवर इस बीमारी से मर गया है, तो तुरन्त उस जगह को खाली कर देना चाहिये। जानवरों को तीन जगहों में बांट देना चाहिये, जसा कि ऊपर शुद्ध करने के सिलसिले में बताया गया है।

२ मरे हुए जानवरों को दूर में ले जाकर जलाने के लिये बहुत सावधानी की जरूरत है, जिसमें इसके कोई अंग से रक्त या, और कोई दुषित पदार्थ न गिरने पावे। नहीं तो इससे तुरत स्पोर पैदा हो जाते हैं, जो बहुत कठिनाई से नाश किये जा सकते हैं।

जब मरी को उस जगह से जहां वह मरा है उठावें तो बहुत सावधानी के साथ ले जांय, और उसके नाक और गुदामार्ग को रूई या पटुआ से जो कड़े फेनाइल के पानी में भिगाया हो बन्द कर देना चाहिये और मरी का मुंह ऊपर खींचकर बांधना चाहिये, ताकि मुंह से कुछ लार या पानी वगैरह न टपके।

पिल्ही की बीमारी से मरे जानवरों को सड़कों पर कभी घसीट कर ले जाना नहीं चाहिये , गाड़ी वगैरह पर ले जाना अच्छा होता है गाड़ी में जुते जाने वाले बैलों को पिल्ही के सीरम द्वारा सूई देकर (Anthrax Serum) तब जोतना चाहिए।

बाद में जोतने वाली गाड़ी को शुद्ध करने के नियमों के अनुसार शुद्ध कर लेना चाहिये।

मरी को ठिकाने से जला देना चाहिए, यदि यह नहीं हो सके तो इसको पाँच फीट जमीन के नीचे चूना दे, बिना काटे या फाड़े हुए गाड़ देना चाहिये, और खूब ठिकाने से मिट्टी देकर ऊपर से कांटा वगैरह से तोप देना चाहिये।

मरी को फाड़ने के लिये सख्त मुमानियत है। अगर फाड़ा जाय तो तुरत वहां की मिट्टी सहीत जो खून से भींग गया हो जला देना चाहिये। साथ ही बहुत सावधानी से औजार तथा हाथ वगैरह को शुद्ध कर लेना चाहिये। औजार को पानी में उबाल लेना अच्छा होता है।

(४) रोगग्रसित पशुओं कों कहीं एक शून्य स्थान में रख कर दवा करना जरूरी है।

(५) चारे का रदों बदल :—घास इस बीमारी का कारण समझा जाता है। अगर कुछ भी शक हो तो घास को जला देना चाहिये और जिस जगह की घास से बीमारी फैलती हो, जगह को बदल देना चाहिये। यदि कुछ चारे रखे हुए हों तो उनमें तीन चार रोज तक धूप लगा देना चाहिये।

(६) बीमार पशुओं को सवेरे और शाम दोनों समय बोखार देखनी जरूरी है। इसमें सिर्फ बीमार पशुओं को नहीं बल्कि जो जानवर वहाँ पर उपस्थित हों, सबों को देखना जरूरी है। यदि किसी अच्छे जानवर में बुखार मालूम हो तो उसको वहां से हटा देना चाहिये, और बीमारी खटाल में रखना चाहिये।

घोड़े और मवेशियों के शरीर में कीटाणु के भीतर प्रवेश करने के बाद, बीमारी शुरू होने में करीब ६ दिन समय लगता है, भेड़ों में २ से ४ रोज तक, चूहे और विलायती खरगोशों में २४ घन्टे से ४८ घन्टे तक समय लगता है।

(७) शुद्धता —शुद्ध करने के नियमों में बताये गये अनुसार काम करना चाहिये। इसका स्पोर जो बहुत मजबूत और जल्दी से बढ़ने वाला है, इस पर पुरा ध्यान रहे। इसलिये खौलते हुए वे जल और आग से काम करना अच्छा होगा। तीन दिन के भीतर कम-से-कम तीन बार शुद्ध करना चाहिए, और पुरा ध्यान बचे हुए चारा, पानी, बिछान, कम्बल इत्यादि पर रखना चाहिये।

किसी भी हालत में अर्धशुद्धता नहीं करनी चाहिये और अगर अपने से न हो सके तो भेटेनरी डाक्टर से मदद लेना जरूरी है।

बीमारी से पशुओं की रक्षा:—पिल्ही का सीरम Anthrax Serum जो कि मुक्तेश्वर लेबोरेटरी Laboratory

में मिलता है मँगा कर तीनो रोगी जानवरों को सूई दे देनेसे बीमारी कुछ रोज तक नहीं होती है। पिल्ही का सीरम (dose Anthrax Serum 15 c.c.)बीमारी जानवरों में भी बहुत फायदा करता है।

पिल्ही का स्पोर भैकसीन (Dose Anthrax sporevaccine 1 c.c.) जो कि आज कल पटना में मिलता है; उसे मंगा कर सुई द्वारा देने से बीमारी, दो बरस तक जानवरों को नहीं होती है।

(८) बीमार जानवरों की दवा :—महामारी के अन्त में दवा करने का मौका बहुत से पशुओं में मिलता है। वैसी हालत में नीचे लिखी दवाओं का प्रयोग करना उचित होगा।

कारबोलिक एसिड एक एक ड्राम करके दिन में तीन मरतबे,आधा कनवा नीमक के साथ गुड़ मिलाकर या तीसी के तेल में देना चाहिए, और जरुरत हो तो १००—५ या १० कारबोलिक एसिड का पानी बनाकर फूले हुई जगहों को धो देना चाहिये। लुगल सल्युसन २० सी० सी० बड़े जानवरों को सूई द्वारा देनी चाहिये।

पोटास परमैन्गनेट एक ड्राम और ढेला कपूर तीन से चार ड्राम तक गुड़ में मिलाकर चार-चार घन्टे में देना चाहिये।

साईलीन आधा औंस, आधा सेर सुसुम पानी में मिलाकर दिन में दो बार देना चाहिये। फेनाइल दो ड्राम आधा सेर पानी में मिलाकर, दिन में तीन बार देना चाहिये।

जहां पर जानवर हो उस जगह को खूब साफ रखना चाहिये और चूना छींट देना चाहिये। खाने के लिये चावल की लपसी,

सत्तू पानी में घोल कर देना चाहियें। जानवरों के बदन पर चीअर पाईन का तेल लगा देने से मक्खी का डर कम रहता है क्योंकि मक्खियों से भी बीमारी फैलती है। इसलिये मक्खियों का सदा भगाते रहना चाहिये।

हटाये पशुओं को अपनी जगह पर लाना:—सब से पीछे बीमार पड़े हुए जानवरों को १४ दिन बाद अपनी जगह पर लाना चाहिये।

जो बीमार जानवर अच्छे हो गये हों, उनको एक महीने से कम में अपनी जगह पर नहीं लाना चाहिये। बीमार से अच्छे हुए जानवरों का सामान आने के पहले शुद्ध कर लेना चाहिये।

डेंगहा (BLACK QUARTER)

इसके नाम:—इसको कहीं डेंगहा, कहीं लंगड़ा, कहीं गोड़ फुली, और कहीं देह फुली कहते हैं।

रोग की प्रकृति:—यह गोरुओं और भेड़ों का जान घातक बीमारी है, जिसमें ज्वर, शरीर का फूलजाना, तथा लंग देता है। पहले लोगों का विचार था कि डेंगहा बीमारी एक कीटाणु से होता है, लेकिन नहीं, अब लोगों ने पता लगाया है कि दो प्रकार के कीटाणुओं से यह रोग होता है। इसके कीटाणु यानी डेंगहा के कीटाणु (Bacillus chauvi or Bacillus belchi) और दूसरे कीटाणु जो कि वाष्पयुक्त कीड़ा उत्पन्न करते हैं उन्हीं

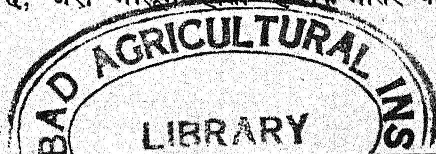
कीटाणुओं का एक किसीम, जिसको (Vebrion septi-gue) भीबरीओन सेप्टीक कहते हैं। पर अधिकतर डेंगहे की कीटाणुओं (Baeillus chauvi) के द्वारा रोग देखे जाते हैं।

किन २ पशुओं को यह रोग होता है:—यह रोग गोरुओं को और भेड़ों को अधिकतर होता है। मवेशी जो छ महीने से दो बरस तक के उम्र वाले होते हैं, वे इस रोग के अधिकतर शिकार होते हैं।

कहां २ पर यह बीमारी होती है :— यह बीमारी सारे संसार में व्याप्त है।

किस प्रकार बीमारी होती है:—किस प्रकार यह रोग उत्पन्न होती है सो पूरी तरह मालूम नहीं, लेकिन उमीद की जाती है कि सूई के द्वारा यह बीमारी होती है ।

लक्षण :—पहला जो देखने में आता है वह पिछले किसी पैर से लंग देना, स्वांस में दिक्कत, कंहरना और बुखार बहुत रहता है। पैर के ऊपर, पीछले पैर में, फूला हुआ मालूम पड़ता है, जो कि कभी २ अगले चेरु में, पीठ पर, पेट के ऊपर और गर्दन पर देखने में आते हैं। यह सूजन पहले गर्म और दुखदायी होता है, जो बहुत जल्द बढ़ता है, और पीछे छूने में ठंढा और दुखरहित होता है। यह सूजन छूने में मुलायम और दबाने पर करकर आवाज करता है, जैसे मालूम होता है कि भीतर बालू भरा



हुआ हो। जब इस सूजन को चक्कू से चीरा जाता है तो उसमें रक्त का रंग कालापन लिये हुये फेन के समान देखा जाता है तथा मृत्यु बहुत शीघ्र होती है। भेंड़ें में यह रोग बहुत खतरेनाक होता है और मृत्यु पशु से भी कम समय में होता है और कभी जानवर मरा हुआ पाया जाता है। शरीर का सूजन भेंड़ों में देखने में नहीं आता है।

रोग की पूर्णता:—इस रोग की खूबी यह है कि शरीर के सूजन दबाने में करकर करता है, और यदि उस जगह को काटकर देखा जाय तो उसमें माँस काला या लाल रंग का जो सूखा हुआ मालूम होता है, जो कि मांस के रेसे छोड़ देने के वजह से मालूम पड़ते हैं, जो कि वाष्प ऊत्पन्न करने वाले कीटाणुओं के द्वारा होता है। दूसरे स्थान में रक्तस्राव मांस में दिख पड़ेंगे, सूजन वाले मांस प्रायः पुराने मक्खन के समान दुर्गन्ध करते हैं। गिल्टियां प्रायः फूले हुये पाये जाते हैं जिसमें रक्त पाया जाता है। रक्त के रंग के सदृश जल वक्षस्थल तथा उदरस्थल में पाये जाते हैं।

दवा या इलाज:—साधारण चिकित्सा कोई काम का नहीं है। यह बीमारी खास-खास जगहों में होती है और कोई २ जगह ऐसी हैं जहां पर बीमारी नहीं देखी जाती। इसलिये जिन स्थानों में बीमारी होती है, वहां के छोटे २ जानवरों को सूई द्वारा रक्षा करनी चाहिये। जिन स्थानों में रोग होता हो उन स्थानों को हल से खूब जोतवा देना चाहिये, या चूना छींट देना चाहिये।

जो जानवर इस रोग से मरे हों उनकी लाश को गाड़ या फूंक देना जरूरी है, साथ ही साथ उसके फोड़े के दुषित पदार्थ तथा भींगी हुई मिट्टी भी दे देना जरूरी है।

सूई द्वारा जानवरों की रक्षा :—डेंगहे की भैक्सीन (Black (Quarter vaccine dose 5 c.c.) कहते हैं, सीरम (Black Quarter serum dose 15 c.c.) सूई द्वारा भैक्सीन देने से, ६ महीना तक रोग होने की शंका नहीं रहती। इस सूई को नव या दस रोज के बाद दोहराने से और अच्छा होता है, इसलिये जिन जगहों में बीमारी होती हो वहां बीमारी होने के एक महीना पहले सूई दिला देना जरूरी है। जब किसी स्थान में बीमारी हो गई हो तो सिर्फ डेंगहे के सिरम (BLACK QUARTER SERUM) की सूई देनी चाहिये। इसकी मात्रा १५ सी० सी० की अवधि सिर्फ नव रोज की है।

बीमार जानवरों को आधा औंस साईलिन आधा सेर गर्म जल में मिलाकर दिन में दोबार पिलाने से फायदा करता है। या पोटास परमैगनेट एक ड्राम और कपूर तीन ड्राम गुड़ के साथ चटनी बनाकर चार चार घंटे में देने से लाभदायक होता है। फेनाईल दो ड्राम आधा सेर जल में मिलाकर दिन में तीन बार देना चाहिये। लुगल सल्युसन की सूई २० सी० सी० चमड़े में या रक्त की नल्ली में देने से लाभ होता है। एम० बी० ६९३ (M.B. 693) की गोली बड़े जानवरों को १५ गोली गुड़ के साथ बुक कर चटनी के ऐसा बनाकर दिन में दो बार देना चाहिये।

सुजे हुए जगहों को थोड़ा २ चीरकर टींचर आईडीन लगा देना चाहिए, ऐसा करने से गैस सब निकल जाता है, शरीर जैसा पहले था वैसा हो जाता है।

घोड़ों की बत्तौरी (BOTRIOMYCOSIS)

रोग की प्रकृतिः—यह रोग अधिकतर घोड़ों को होता है इस रोग के कीटाणु बोटरोमाइसीस (BOTRIOMYCIES OR DISCOMYCIES) घोड़े के शरीर में किसी प्रकार से प्रवेश करता है, और शरीर के खास-खास अंगों में बतौड़ उत्पन्न करता है।

रोग के कीटाणुः—दो प्रकार के कीटाणु इसके घाव में पाये जाते हैं। एक जो अकेला पाया जाता है उसको माईक्रोकोकाई और डीप्लोकोकाइ (MICROCOCIE and DEPLO-COCIE) कहते हैं, और दूसरे को जिसमें बहुत कोकाई पाये जाते हैं।

कीटाणुओं की परीक्षाः—ये कीटाणु अधिकतर पुराने जख्मों में पाये जाते हैं। इस बीमारी के पीव जो कि करीब एक सप्ताह पहले सीसे पर लगाया गया हो, खाली आँख से देखने पर भी मालूम होगा कि कुछ रेणु के कण बिखरे हुये हैं। साधारण शक्ति वाली खुर्दबीन में रख कर देखने से मालूम होगा कि वे कण गोलाकार हैं, और नीचला हिस्सा चिपटा है। इस प्रकार दिखने का कारण यह है कि ये कण सब

गोलाकार पदार्थों से बने हुये हैं। यदि कण को चूर कर दिया जाय, और रंग कर परीक्षा की जाय तो, यह बोध होगा कि वे पदार्थ माईक्रोकोकाई से बने हुये हैं और यह समझा जाता है कि वे पदार्थ एक महीने परदे से ढके हुये होते हैं। रंगे हुये कीटाणुओं को देखने से बोध होता है कि माईक्रोकोकाई के मध्य का भाग रंग नहीं पकड़ सकता है। लेकिन बोटरोमाईसीस (Botromyces) साधारण रंग से रंगा जाता है और इसटाईफलोकोकस अउरस (Staphylococus aurerus) से भिन्न होता है।

यह रोग जख्मों के द्वारा होता है, जो जख्म कि साज से या अखता करने के कारण होता है। यह रोग किसी एक जानवर को होता है, और दूसरे जानवरों में नहीं फैलता है। इसके पीव छुतहा होते हैं। इसके कीटाणु बहुत धीरे-धीरे बढ़ते हैं, क्योंकि घोड़ों को अखता होने के बाद बीमारी पकड़ने पर कम से कम पाँच या छ बरस होने पर यह रोग होता है।

लक्षण :—ठीक गायों की बतौरी के समान यह रोग भी किसी-किसी अंग में पाये जाते हैं। बतौर या तो एक होता है या बहुत होते हैं। जो कि छोटे से छोटे मटर के दाने से लेकर मनुष्य के सिर के बराबर होते हैं। जिनका खास जगह चेरु के उपर बीर्य्य नस तन्तुओं पर (Sqermatic Cord) अगले बाजू के पास और स्तन में पाये जाते हैं, और जो कि घने रेसों से बने होते हैं। किसी-किसी में फोड़े भी पाये जाते

हैं, बढ़े हुये मांसों के निकट, चमड़े ऊँचे हो जाते हैं और मुंह बना कर फूट कर, गाढ़े गर्द रंग के पीव फेंकते हैं। इस प्रकार जो जख्म होते हैं वे अच्छे हो जाते हैं, और फिर दूसरे घाव निकल आते हैं। इसके पीव एक खास तरह के होते हैं जो लसलसा और कण सदृश होते हैं, परन्तु गायों की बतौरी में इस प्रकार का पीब नहीं होता है।

चिकित्सा :—

(१) बतौरों को काटकर हटाना, या उसे बांध कर हटाना अच्छा होता है।

(२) पोटासीयम आएओडायड खाने के लिये दिन में दो बार देना चाहिये, इसको देने से बतौर का कद छोटा होता है। जिसमें चीर फाड़ करने में सुविधा होती है।

(३) जख्म में सैकड़े १।२ से १% आईडीन का पानी बनाकर लगाना चाहिये।

(४) (Lugal Solution) १० सी. सी. इन्ट्राभेनस इन्जेक्सन हफ्ते में दो बार देना चाहिये।

(५) टाटरईमेटिक १० से २० सी. सी. १% इन्ट्राभेनस इन्जेक्सन, हफ्ते में दो बार देना चाहिये।

(६) रूई या पट्टी वगैरह जिसमें पीव इत्यादि लगे हों, जला देना चाहिये; और काम करने के बाद औजार सब को उबाल देना जरूरी है।

बरसाती

बरसाती घाव हिन्दुस्तान में घोड़ों को होता
दार मांस बढ़ जाता है, जिसके भीतर कंकड़

यह बीमारी अधिकतर बरसात में (जून
होती है।

लक्षण :—पहला लक्षण जो घोड़ों में दे
अंगों का फूल जाना, जो कि गरम और
चमड़े के ऊपर ठीक रहते हैं।

एक सप्ताह के भीतर सूजन कड़ा हो जाता
उसी मांस में सट जाते हैं।

२१ रोज के बाद चमड़ा मांस को छोड़
जाता है। बाद एक जख्म देखने में आता है,
मोटा और घाव को घेरे रहता है।

पीलापन लिये हुये लाल रंग के मांस
आते हैं, जो चमड़े से भी ऊँचे हो जाते
छोटे-छोटे मांस पिंड धसे रहते हैं, जिसक
छोटे-छोटे गड़हे हो जाते हैं। इसको कंकड़
सरसो दाने से लेकर मटर के दाने के बराबर
उसमें छोड़ देने पर कड़े चूने की छोटी
जाते हैं।

जो घाव रगड़ने के स्थानों पर होता वह बहुत बढ़ता है और जहां पर किसी प्रकार से रगड़ नहीं पहुचाई जाती, वह नहीं बढ़ सकता है। इस घाव में जलन अधिकतर होता है, जिसे जानवर खुजलाने की कोशिश करता है।

इस प्रकार का घाव अधिकतर थोंथ में, आंखों के नीचे ऊपर, नाक के कोने में, गर्दन पर, मउर पर, चेरू पर, मोजों पर, लिंग तथा उसके खोल में भी हो जाते हैं। इस प्रकार के घाव में पीब नहीं पाये जाते हैं।

परीक्षा :—परीक्षा द्वारा पाया गया है कि बढ़े हुये मांस अधिकतर मोटे रेसों के होते हैं।

कारण :—अभी इसके कारण का ठीक पता नहीं चेला है।

चिकित्सा :—

(१) बढ़े हुये मांसों को काट कर निकाल देना, और उसके ऊपर नित्य रेड ऑकसाईड ऑफ मरकरी लगाना।

(२) घाव के ऊपर पोटास परमैन्गनेट चूर कर लगाना।

(३) खाने के लिये लाल आएओडायड ऑफ मरकरी ५ से २० ग्रेन तक पोटासीयम आएओडायड १ से ३ ड्राम तक रोज दाने में या पानी में मिलाकर देना चाहिये।

(४) नीचे लिखे नुस्खे को घाव पर लगाने से लाभदायक देखा गया है।

पेरीस की पलास्तर—१०० भाग।
फिटकीरी— २० " ।
नेपथिलीन— १० " ।
क्वीनाईन— १० " ।

घाव को फेनाईल के पानी से धोकर लगाना चाहिये। इसमें लगाने से मक्खी भी घाव पर नहीं बैठती है।

(५) सिर्फ क्वीनाईन भी जख्म पर लगाने से जल्द जख्म छुटता है।

(६) बढ़े हुये मांसों को काटकर निकालने के बाद आएओडायड फेनौल लगाकर सिर्फ दिन भर बांध देना चाहिये। फिर दूसरे रोज से उसको नमक के पानी (Saline Solution) से बराबर धोने से करीब १५ रोज में जख्म आराम होता है।

(७) आईडीन सलुअसन १% २० सी. सी. इन्ट्राभेनस इन्जे-क्सन देने से भी जख्म आराम होता है। सूई हफ्ते में दो बार देनी चाहिये।

(८) एन्टीमोनी पोटासीयम ट्राटरेट :—८ ग्रेन २० सी. सी. डिस्टिल्ड जल में उबाल कर, रक्त की नल्ली में एक बार दिया जाता है। लेकिन यह सूई किसी सुयोग्य डाक्टर से दिलवाना चाहिये, नहीं तो दवा

का एक बून्द भी रक्त की नल्ली से बाहर गिरने से जख्म हो जाता है, जो बहुत देर से आराम होता है।

छेरहा या छेरा (Coccidiosis)

रोग की प्रकृतिः—छेरहा एक ऐसा रोग है, जिससे आंत में तथा आंत के और भागों में सूजन होता है।

यह एक प्राण घातक रोग है जो बहुत शीघ्र बढ़ता है, और जिसके लक्षण छेरहा या आँव पड़ जाना होता है। और किसी किसी में जिसमें कीटाणु कम प्रवेश करते हैं, उनमें भयानक लक्षण नहीं दिखाई पड़ते हैं।

इसके कीटाणु को कोकसीडीयम (Coccidium) कहते हैं। जो बहुत जानवरों में पाया जाता है।

किन किन जानवरों को यह रोग होता हैः—बिलायती खरगोशों में बीमारी साधारणतः बहुत भयंकर रूप में होती है। यह रोग मवेशियों में भी होता है तथा छोटे बछड़ों में यह और भयानक रूप धारण करता है। भेंड़, बकरों और चिड़ियों को भी यह रोग होता है। कुत्ते और बिल्लियों को भी यह रोग हो सकता है, लेकिन इन जानवरों में यह रोग उतनी बुराई नहीं पहुंचा सकता है।

यह रोग कहां २ होता हैः—यह रोग हिन्दुस्तान के भेंड़ और बकरे में अक्सर पाया जाता है, और इससे शायद ही कभी खराबी

का एक बून्द भी रक्त की नल्ली से बाहर गिरने से जख्म हो जाता है, जो बहुत देर से आराम होता है।

छेरहा या छेरा (Coccidiosis)

रोग की प्रकृतिः—छेरहा एक ऐसा रोग है, जिससे आंत में तथा आंत के और मार्गों में सूजन होता है।

यह एक प्राण घातक रोग है जो बहुत शीघ्र बढ़ता है, और जिसके लक्षण छेरहा या आँव पड़ जाना होता है। और किसी किसी में जिसमें कीटाणु कम प्रवेश करते हैं, उनमें भयानक लक्षण नहीं दिखाई पड़ते हैं।

इसके कीटाणु को कोकसीडीयम (Coccidium) कहते हैं। जो बहुत जानवरों में पाया जाता है।

किन किन जानवरों को यह रोग होता हैः—बिलायती खरगोशों में बीमारी साधारणतः बहुत भयंकर रूप में होती है। यह रोग मवेशियों में भी होता है तथा छोटे बछड़ों में यह और भयानक रूप धारण करता है। भेंड़, बकरों और चिड़ियों को भी यह रोग होता है। कुत्ते और बिल्लियों को भी यह रोग हो सकता है, लेकिन इन जानवरों में यह रोग उतनी बुराई नहीं पहुंचा सकता है।

यह रोग कहां २ होता हैः—यह रोग हिन्दुस्तान के भेंड़ और बकरे में अक्सर पाया जाता है, और इससे शायद ही कभी खराबी

देखी जाती है। यह रोग कभी कम और कभी जोरदार फैलती है। बहुत भयानक प्रकार से इसका रूप भगवती बीमारी के फलस्वरूप देखा जाता है। यह रोग खास करके पहाड़ी स्थानों में होता है। इसका कारण है कि वहां की भूमि शर्द होती है जिस पर कीटाणु आसानी से बढ़ सकते हैं। चौरस और सूखी जमीन पर कीटाणुओं को बढ़ने की सुविधा नहीं होती है।

कीटाणुओं की प्रकृति:—इस रोग का कीटाणु कोकसीडीयम है जिसकी जीवनी बहुत पेचीली है। जो विलायती खरगोशों के मल में पाया जाता है और कम शक्ति वाले खुर्दबीन में देखने से गोल पत्तियों के सदृश दिखता है, जिसकी लम्बाई २१-५० यू० लम्बा और १३-१८ यू० चौड़ा होता है। यह बहुत शक्ल के होते हैं परन्तु साधारणतः यह गोलाकार देखा जाता है। जिसकी लम्बाई गायों में अण्डाकार का २० से २५ यू० और चौड़ाई १०-१२ यू० और गोलाकार का लम्बाई १२ से १५ यू० तक होता है।

कीटाणु दो तह पर्दों से ढ़का होता है। जिसका एक सिरा दूसरे सिरे से पतला और कुछ चौड़ा होता है, और उसी स्थान के ढक्कन में एक छेद रहता है। यह प्रोटोपलाजम (Protoplasm) ढक्कन में पूरे भरे रहते हैं, जो रुखड़े और दानेदार होते हैं, लेकिन बहुत से कीटाणुओं में सट जाता है, बहुत रुखड़े दानेदार पिण्ड के समान ढक्कन के मध्य में देखे जाते हैं जिसमें नीवक्लीयस बहुत कठिनाई से दिख पड़ता है। ठोस स्थान साफ

जल से भरा रहता है। यह कीटाणु जो मल में पाये जाते हैं, वे ओसीस्ट (Oocysts) कहलाते हैं। जिनकी बढ़ती शरीर के बाहर अच्छे मौसीम होने से होता है और जब पक जाते हैं तब दूसरे जानवरों में प्रवेश करते हैं, जिनमें यह रोग होता है, और जो घास इत्यादि द्वारा शरीर में जाते हैं तब और बढ़ते हैं।

इन कोकसीडीयम की जीवनी जो कि पेचीली है। मवेशियों में वे आंत के मांस पोटलियों में खास कर भीतर जो भीलाई (Villi) और क्रीपटस औफ लीभरकुन (Crypts of Lieber kuh.n) कहलाते हैं उसमें प्रवेश करते हैं। इसी स्थान पर खरगोशों में भी पाये जाते हैं, परन्तु इसमें इसकी खास स्थान कलेजी है जहां पर वे पित्त की नली में उतरते हुये देखे जाते हैं। जहां पर वे अस्वभाविकता से बढ़ते हैं। मांस पेशियों में, और फिर नर और मादीन कीटाणुओं के स्पर्श से बढ़ते हैं। गर्भयुक्त मादीन कीटाणु शरीर से बाहर निकलते हैं और कुछ दिनों के बाद बहुत से अण्डे देते हैं, जो अण्डे मजबूत ढकन से ढंके रहते हैं, और वे अण्डे पक कर ओसीस्ट (Oocyst) कहलाते हैं। यह ओसीस्ट जब जानवरों द्वारा चारे के साथ खाये जाते हैं, तब फिर वह अप्राकृतिक नियम पूर्वक आंत, मांस, पेसियों में बढ़ने लगते हैं, और बहुत कीटाणु हो जाते हैं, इसके बाद रोग का लक्षण देखने में आता है।

सबसे मशहूर कोकसीडीयम जो घरेलु जानवरों में पाया जाता है, वह है जेनस इमीरीया (Genus Eimeria)।

बिलायती खरगोशों में छेरहा:—

कारण:—यह रोग इमीरीया स्टीडी (Eimeria Steidoe) द्वारा इन जानवरों में होता है।

लक्षण:—बच्चे जानबर इस बीमारी के बड़े शिकार होते हैं, और उन जानवरों के मल में ओसीस्ट (Oocyst) होने के पहले ही मर जाते हैं।

लक्षण जो प्रायः देखे गये हैं वे यह हैं:— (१) सुस्तीपन (२) भूख न लगना (३) दुबला होना (४) मुंह के भीतर और-आँखों के पर्दों का रंग पीला होना (५) पेट का कड़ा हो जाना (६) पेट में हवा या गैस बोध होना (७) पतला दस्त करना तथा अन्त में अंगों को सून होकर मृत्यु हो जाना।

बड़े या बुढ़े खरगोशों में यह रोग दो या तीन महीने तक रहता है, और कोई कोई जानवर जिसमें रोग के कीटाणु प्रवेश कर जाते है, परन्तु कोई लक्षण देखने में नहीं आते तो इन जानवरों से भी रोग फैलता है। उनके मल परीक्षा करने पर बीमारी की पूर्णता बोध होती है। मरे हुये जानवरों को फाड़ने से नीचे लिखे लक्षण पाये जाते हैं।

(१) अक्सर कलेजे का बढ़ जाना, जिसके ऊपर अनेकों उजले दाग, जिनमें कितने लम्बे रूप में पाये जाते हैं, और जिसमें पित्त की नाली कीटाणुओं सहित उतरती देखी जाती है। यदि इसमें से किसी एक उजले दाग को चीर दिया जाता है तो उसमें से उजला दूध के सदृश जल निकला है और इस जल को यदि खुर्दबीन द्वारा

निरीक्षण किया जाय तो उसमें अनेकों ओसीस्ट (Oocyst) पाये जाते हैं। वे दाग बहुत तरह के होते हैं, जो सरसों के दानों से लेकर बादाम के गुठलियों के बराबर होते हैं और दूसरे स्थानों में रदो बदल नहीं पाया जाता है, लेकिन किसी-किसी में आंतों का सूजन और उजले दाग, जो कोकसीडीया के पिंड हैं, भीलाई तथा क्रीबटस और लीभरकून में पाये जाते हैं।

बीमारी से बचने का उपाय :—इन जानवरों को इस रोग में कोई दवा से लाभ नहीं पहुँच सकता है। इसलिये जो जानवर मर गये हों उनको गाड़ या जला देना चाहिये और इस बात का पूरा ख्याल रखना चाहिये कि यह बीमारी चारा द्वारा फैलता है, जो चारा बीमारियों के मल से मिश्रित रहते हैं। इसलिये चारे तथा जगहों को भी शुद्ध करना बहुत जरूरी है।

मवेशियों में छेरहा :—इसके कीटाणु को इमीरीया जूरनी (Eimeria Zurni) कहते हैं। यह गायों का रोग हिन्दुस्तान के सिवाय और और देशों में भी होता है। जैसे यूरोप, उत्तरी, दक्षिणी और पूर्वी अफ्रिका, तथा अमेरिका और आस्ट्रेलिया में भी होता है। यूरोप में यह रोग अधिकतर चारागाहों में देखा जाता है। बरसात के दिनों में जब जमीन भींगी रहती है, उस समय रोग के होने का ज्यादा डर होता है। यह रोग अधिकतर बच्चे जिसकी उम्र छ महीने से लेकर दो बरस तक होता है। लेकिन बहुत बच्चे जैसे चार से सात सप्ताह तक के जानवरों में भी यह रोग देखा गया है, लेकिन बूढ़े जानवरों में यह रोग बहुत कम देखा जाता है।

लक्षण :—जो सब से पहले लक्षण देखने में आता है, वह है पतला दस्त का होना, लेकिन कभी-कभी रक्त का थक्का भी मल के साथ देखा जाता है। रोगी कूंखता है, जिससे बोध होता है कि दर्द में है। जैसे-जैसे रोग बढ़ता जाता है, मल पोटा के समान हता जाता है, और बहुत मात्रा में रक्त मल के साथ गिरता है, इसके अलावे और जो लक्षण हैं, वे यह हैं कि जानवर बहुत सुस्त रहता है, खाना छोड़ देता है, दुबल होता जाता है, और पागुर कभी करता है कभी नहीं। इसके बाद गोबर बहुत पतला जल के समान होने लगता है, और रक्त के थक्के बड़े-बड़े देखने में आते हैं, और उससे बहुत बदबू आती है। बुखार बहुत कम रहता है, नाड़ी और सांस की गति धीमी पड़ जाती है। जानवर बहुत कमजोर हो जाता है और दस रोज के भीतर जानवर को यदि अच्छा होने का ढंग हुआ तो अच्छा हो जाता है या रोग कहीं आगे बढ़ा तो जानवर की मृत्यु हो जाती है। रोग एक तो तुरन्त अच्छा हो जाता है, और दूसरा जो पुराना हो जाता है तो कमजोरी कई महीनों तक रह जाती है, एक बार बीमार पड़ने से जानवर को रोग के प्रति पूरी सहन शक्ति हो जाती है। रोग के कीटाणु पेट के अन्दर रहता है, जब किसी रोग के कारण जानवर कमजोर हो जाता है तब उसे सताता है।

रोग के जाँच के लिये जानवर के मल की परीक्षा करने पर उसमें बहुत से कोकेसीडीया देखे जाते हैं। गोबर की परीक्षा सुगर फलोटेशन (Sugar Flotation) नियम से भी की जाती है।

बहुत से पश्चिम (Europian Countries) के देशों में इस रोग से अनेकों मृत्यु होती है, जो कि १०० में १० या १५ तक देखा गया है।

भिन्न-भिन्न रोगों से लक्षणों का मिलना :—इस बीमारी का लक्षण, चेचक (Rinderpest), (Johne's disease) जोन्स डीजीज, और लाल पेशाब (Pirçplasmosis) से मिलता है। इन तीनों रोगों के होने के पहले ही छेरहा के कीटाणु उसमें उपस्थित रहते हैं, और दूसरे कीटाणुओं के साथ मिलकर रोग को और भी भयानक बनाते हैं।

मरे जानवरों को फाड़ने पर नीचे लिखे लक्षण या रदो बदल भी देखने में आते हैं। गुदामार्ग जख्म जैसा देखने में आता है जिसके मांस पेशी लाल और मोटे हो जाते हैं, जिसका परदा कहीं-कहीं कटा हुआ दीख पड़ता है, जहाँ पर माँस पेशियों में सिकुड़न आ जाती है, और जहाँ तहाँ रक्त की बून्दें दीख पड़ती हैं। बड़ी आंत की माँस पेशी में रक्त जमा हुआ और मोटापन दिख पड़ता है, जिसके भीतर सिरूआ के समान मल पाया जाता है, जिसमें रक्त के भाग दीख पड़ते हैं। ८ या दस रोज की बीमारी में समस्त पेट तथा आंत में यह दशा हो जाती है, लेकिन अधिक सूजन गुदामार्ग में पाया जाता है। आंत की गिल्टियां बढ़ जाती हैं, और बड़े आंत की मांस पेशियों में सिकुड़न आ जाती हैं, और भूरे रंग के चकते, और जहाँ से मांस छूट जाता है वहाँ पर चौड़े-चौड़े घाव के समान पाये जाते हैं। पेट के भीतर में गोबर, जल के समान पाया जाता है जिसमें दुर्गन्ध रहती है। जानवर बहुत सूख जाता है और उसके मांस रसहीन जान पड़ते हैं। अधिकतर रद बदल आंत की मांस पेशियों में ही देखी जाती

है और बहुत से क्रीपटस ऑफ लीभरकुन (Cripts of Lieber kuh.n) में भी पायी जाती है।

अन्तिम अवस्था में गुदामार्ग में जो चिन्ह देखे जाते हैं, वे बहुत गढ़हे जख्म के समान होते हैं।

जिन्दे समय में जो रक्त मल के साथ बाहर आते हैं, उनके आने का अन्दाज आंत के मांस पेशियों से ही हैं, जो कि खाली आंखों से देखने में नहीं आते हैं।

रोग से बचने का उपाय:—बच्चे पशुओं को सर्दी से तथा रोग ग्रसित चारागाहों से हटा देना चाहिये। बीमार पड़े जानवरों को अलग कर देना चाहिये और छोटे जानवरों को बड़ों के साथ चरने न देना चाहिये क्योंकि बड़ों के पेट में इस रोग के कीटाणु उपस्थित रहते हैं।

उन जानवरों के लिये जो बन्द हातों में चरते हैं, उनको देखना चाहिये कि जमीन सूखी और साफ रहे और गोबर इत्यादि जो रोग कि प्रधान कारण हैं, उनको जला या गाड़ देना चाहिये।

चिकित्सा:—इस रोग में बहुत से दवाओं का प्रयोग किया जाता है जिसमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं।

जैसे:—१ सलफा गुनाडीन [Sulpha Gunadin] १०, १५ गोली मांड़ के साथ दिन में दो बार देना चाहिये।

२ कथ १।२ औंस, हींग १।२ औंस, टींच र अफीम (Tr. OPii) १।२ औंस, कटीओजोट (Creoste) १ ड्राम। सत्तू या मांड़ में मिलाकर दिन में दो खुराक देना चाहिये।

३ कथ—आधाऔंस, सोपारी–दो अदद, कसीस–दो ड्राम, तुतीया—आधा ड्राम को बुक कर रोज एक खुराक आधा सेर जव के आंटा में देना चाहिये।

४ तुतीया (Copper sulph)—एक ड्राम, तथा शुद्ध जल-एक पात्र को हप्ते में या १५ रोज में एक खुराक दे सकते हैं।

५ कारबन टेटरा कोलोराईड-४ ड्राम बड़े जानवरों को माँड़ देना चाहिये।

इसके बाद तीसी का तेल-एक पाव पिलाया जा सकता है। दूसरे रोज मीथीलीन बुलू (Mithyline Blue, Bayer) १५ ग्रेन को डेढ़ बोतल जल में मिला कर, दिन में तीन बार तक दिया जाता है; और इसका लोसन बना कर, ०५ ।-३।४ गैलन पानी गुदामार्ग में दिन में तीन बार देने से लाभ होता है।

भेंड़ और बकरे में छेरहा:—भेंड़ और बकरों में भी यह रोग हिन्दुस्तान में ही होता है। भेंड़ और बकरों के अलग अलग कीटाणु होते हैं।

यह रोग अधिकतर मेमने को होता है, और लक्षण जैसा और जानवरों में बताया गया है, वैसे ही होता है। बड़े बड़े बकरे और भेंड़ इस रोग के कीटाणुओं को बगैर कोई लक्षण दिखाये ढोते फिरते हैं।

चिकित्सा जो ऊपर बताया गया है उसकी मात्रा कम करके दी जा सकती है।

छूत से गायों का बच्चा फेंकना।

Bovine Contagious Abortion

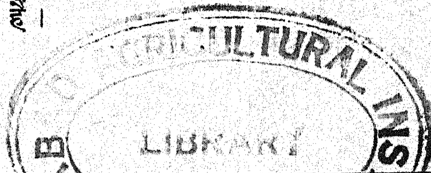
रोग की प्रकृति:—गायों में बच्चों का बगैर दिन पूरे हुये

प्रसव करना एक कोई खास रोग नहीं बल्कि गायों के प्रसोत रोग का लक्षण है।

बच्चा फेकने के वजह से गाय के मालिकों को बहुत नुकसानी उठानी पड़ती है। किसी-किसी जानवरों में जब बच्चा देर से फेकता है, तो उस समय बच्चा जीवित रहता है, लेकिन बहुत कमजोर रहने के कारण तुरन्त मर जाता है। इस रोग के वजह से सिर्फ बच्चों ही की नुकसानी नहीं होती, बल्कि दूध की बहुत क्षति होती है और अधिक जानवरों में बच्चा गर्भ रहने के थोड़े दिनों के बाद ही बच्चा फेक देती है। कोई गाय पहली बियान में बच्चा फेक देती है, फिर दूसरी और कोई-कोई गाय तीसरी बियान तक बच्चा फेकती रहती हैं। जो गाय बच्चा फेकती है वे पीछे गर्भ नहीं धारण कर सकतीं तथा बन्ध्या हो जाती हैं।

किसी अच्छे गायों के झुण्ड में जब एक नयी गाय इस रोग से ग्रसित हो जाती है, तब सब गायों में यह रोग फैल जाता है। जब यह रोग शुरू होता है तो पहले साल में कम जानवर बीमार पड़ते हैं, दूसरे साल उससे अधिक और तीसरे साल बहुत अधिक रोग बढ़ जाता है।

किन-किन पशुओं को यह रोग होता है :—यह रोग गाय, घोड़ी तथा भेड़ियों में देखा जाता है, परन्तु हरेक के कीटाणु भिन्न-भिन्न होते हैं।



कहां-कहां होता हैं :—यह रोग सारे संसार में होता है, लेकिन हिन्दुस्तान में कई एक बरसों से मौजूद है और कुछ ही दिनों से इस विषय पर ध्यान दिया गया है।

कीटाणु और उसके प्रवेश के नियम :—इस रोग के कीटाणु को बैन्ग वैसीलस या एबौरटस (Bacillus Bang or Bacillus abortus) कहते हैं। जो कि मांस में पाया जाता है और खास कर जरायु (बच्चेदानी) में तथा बच्चे फेके हुये गायों से निकले हुये जल पदार्थ में अनेको पाये जाते हैं। यह कीटाणु छोटा, गति हीन और बिना स्पोर के कोको बोसीलस (Coca Bacilus) कहलाती है। यह अपने रहने के स्थान पर शायद ही एक में सटी हुई पायी जाती है। यह खुर्दबीन में देखने के लिये एनेलीन रंग से रंगा जा सकता है और (Gram negative) ग्राम निगेटीम है। इसके बड़े कीटाणु शायद ही ग्रेनुलर (Granular Staining) रंग से रंगे जाते हैं, जिसमें बहुत से स्ट्रेप्टो कोकाई (Strepto Cocci) के सदृश होते हैं।

साधारणतः यह रोग एक जानवर से दूसरे जानवरों को चारे के द्वारा होता है जो चारे बच्चे फेके हुये बच्चेदानी के रस से मिश्रित रहती है और खास कर बच्चों के ऊपर जो गर्भ की झिल्ली होती है उसमें यह कीटाणु बहुत होते हैं। सांढ़ो के द्वारा भी यह रोग हो सकता है, यदि उसमें बीमारी का लक्षण देखने में नहीं भी रहे। यह रोग घोड़ी तथा भेड़ियों को भी चारे के द्वारा होता हुआ देखा गया है।

लक्षण :—गायों में प्रसव वेदना होती है, और जो गाय दूध देती है, उसका दूध कम हो जाता है और दूध फेनूस के समान देखने में बोध होता है। बच्चा फेंकने के पहले भग से उजला नेटा से समान लभ्भा गिरता है। बच्चा फेंकना या अड़ा जाना ३ से ७ महीने के भीतर होता है और यदि बच्चा ७ महीने के बाद होता है तो जिन्दा रहता है, जो कि बहुत कमजोर होता है और जल्द मर जाता है। बच्चे फेंकने के बाद अक्सर फूल तथा गर्भ की झिल्ली रुक जाती हैं। जो गाय बच्चा फेंक देती हैं, उसके मासिक धर्म में गड़बड़ी हो जाती है, और जल्द गर्भ नहीं रहता है, और बन्ध्या हो जा सकती है।

बच्चेदानी या फेंके हुये बच्चे में लक्षण :—चिन्ह केवल बच्चेदानी में देखे जाते हैं, और साफ चिन्ह उन गायों में मिलते हैं जो कि तुरन्त बच्चा फेंकने पर हैं। बच्चेदानी और उसके कोरीअन नामक झिल्ली के बीच में पीले गाढ़े गन्ध रहित लभ्भा देखे जाते हैं और झिल्लियों के ऊपर एक मांस पिण्ड का कुछ ऊंचा ऐसा पदार्थ दिख पड़ता है। बच्चेदानी के गुले, भूरे रंग के हो जाते हैं। इसी लभ्भे या गर्भ के झिल्ली की जाँच करने से कीटाणु पाये जाते हैं, लेकिन तुरन्त बच्चा फेंकने के पहले या बाद में जाँच करने से मिलता है। यह बच्चे के कलेजे, कमल के रक्त, बच्चे के आंत तथा झिल्ली के गुठले में भी पाये जाते हैं।

रोग की पूर्णता :—जब बहुत से जानवर कुछ-कुछ रोज के आगे पीछे जब बच्चा फेंकते हैं तो रोग का शुभा होता है। इसके लभ्भा जो पीलापन लिये हुये लसलसा रहता है, इससे बीमारी का शक और पूरा हो जाता है। कोरीयन (Chorian) नामक झिल्ली मोटी हो जाती है और उस पर ठेला के समान बन जाता है। उस के गुले (Coty Ledons) पीलापन लिये भूरे रंग के और मुलायम जान पड़ते हैं।

रोग के कीटाणु की जाँच उपर बताये हुए अंगों से लेकर खुर्दबीन में देखा जा सकता है, लेकिन कभी कभी नहीं भी दिखता है। कभी कभी यह रोग बिना कोई लक्षण दिखाये ही हो जाता है, इसलिये अपने शक को पूरा करने के लिये, सेरोलोजीकल टेस्ट (Serological test) या एगलूटीनेसन टेस्ट (Agglutination test) और कैम्पलीमेन्ट फीकसेसन टेस्ट (Campliment fixation test) से जाँच किया जा सकता है, जिससे जाहिर होता है कि गाय, बच्चे फेंकने वाले कीटाणु के द्वारा ग्रसित हैं।

रोग से बचने का उपाय:—पूरा ध्यान रखना चाहिये कि कोई गाय यदि बच्चा फेंकने का लक्षण दिखावे तो उसको शीघ्र झुण्ड से हटा देना चाहिये। जो गाय झुण्ड के अन्दर बच्चा फेंक दिया हो तो, बच्चे तथा उसके साथ गिरी हुई झिल्ली, चारा, और वहां जिस किसी वस्तु से मरे हुये बच्चे का स्पर्श हुआ हो, उसे उठाकर जला या गाड़ देना चाहिये। जमीन तथा गाय के रहने का स्थान को शुद्ध करने के बताये गये नियमों के मोताबिक शुद्ध करना चाहिये। रोग ग्रसित गाय की

बच्चेदानी को पोटासीयम परमैगनेट के पानी से डुस द्वारा धो देना चाहिये, और जांघ या पैर में जो कुछ दाग लगा हो उसको इसी दवा के जल से धो देना चाहिये। नयी खरीदी हुई गाय को बगैर एगलूटीनेसन टेस्ट (Agglutination test) के और गायों के साथ न रहने देना चाहिये और उस गाय को सांढ़ के पास न भेजना चाहिये। यदि सांढ़ इस प्रकार के किसी गाय के साथ पाल किया हो, तो उसके लिंग तथा लिंग के खोल को पोटासीयम परमैगनेट (P.P.Lotion ni 500)के पानी से धोदे ना चाहिये।

सूई के द्वारा जानवरों की रक्षाः—यह देखा गया है कि जो जानवर इस रोग से एक बार ग्रसित होते हैं, तो उसमें इस रोग के प्रति बहुत सहन शक्ति आ जाती है। इसलिये दूसरी बार से पूरे दिन के बाद बच्चे देते हैं। जिसमें बहुत जानवर तो दूसरे बियान में और कोई कोई तीसरे बियान में बच्चा फेंक देते हैं।

दो प्रकार के भैकसीन (Vaccine) काम में लाये जाते हैं, जिनमें कि एक भैकसीन जिसके कीटाणु मरे हुए रहते हैं, और दूसरा भैकसीन जिसमें कीटाणु जीवित रहते हैं। मरे हुये कीटाणु वाले भैकसीन गर्भवती गायों में दी जाती है, जिसमें देने की अवधि हर महीने में, तथा छच मास तक है। जीवित कीटाणु वाले भैकसीन उन गायों को दी जाती है, जो गर्भवती नहीं है। इसको गर्भ रहने के दो मास पहले दिया जाता है।

हिन्दुस्तान में मरे हुये कीटाणु वाले भैकसीन से कोई लाभ नहीं पाया गया है, इसलिये जिन्दे कीटाणु का भैकसीन काम में लाया जाता है। इसलिये जिन्दे कीटाणुओं के भैकसीन से उन जानवरों को जहां पर रोग हो गया हो सूई दे देना जरूरी है जिसमें नये जानवर भी शामील हों। जिस तरह रोग ग्रसित गायें बहुत दिन तक कीटाणु ढोती हैं ठीक उसी प्रकार सूई दी गई गाय भी बहुत रोज तक कीटाणु ढोती हैं। कीटाणु जो स्तन में भी रहते हैं दूध के द्वारा बाहर निकलते हैं। जो दूसरे गर्भ के समय कोरीयन झिल्ली में जाकर लगता है। लेकिन उन कीटाणुओं का असर कम होता जाता है।

सूई देने के पहले सब जानवरों को एगलूटीनेसन टेस्ट (Agglutination test) के द्वारा जांच कर लेना चाहिये, और जो रोग ग्रसित हो उनको अलग हटा देना चाहिये, और तनदुरुस्त गायों को भी सूई देनी चाहिये। एक मास के बाद फिर एगलूटीनेसन टेस्ट दोहराना चाहिये। फिर एक साल में दो बार करना चाहिये।

याट्रीन बेयरस भैकसीन (Yatren Bayer's Abortion Vaccine) जो कि इस रोग के लिये मुफीद है, जो गाय गर्भ नहीं रखती हो या जिसमें यह रोग न हो, उसको यह दिया जा सकता है। जो बेयर कम्पनी की बनाई हुई है। उस कलकत्ता या बम्बई से मंगा कर लाभ उठाया जा सकता है।

छूत से घोड़ियों का बच्चा फेंकना

रोग की प्रकृतिः—यह रोग गायों के रोग के समान ही स्वभाविक है, जो प्रसोत के कारण बच्चा फेंकना एक लक्षण है; पहले के लोगों ने देखा था कि घोड़ियों का बच्चा फेंकना एक खास रोग है जो बैसीलस एबोरटीभो इक्वाईन्स (Bacilus Abortivo Equinus) के द्वारा होरा है। मैकफेडियन और एडवर्ड भी इस बात को ठीक ठहताया हैं।

किन २ जानवरों को यह रोग होता है:—गदहे और घोंड़ों में यह रोग समान रूप से होता है।

किन २ देशों में यह रोग होता है:—यह रोग सारे संसार में होता है, अमेरिका और यूरोप में यह रोग अधिकतर देखा जाता है। हिन्दुस्तान में भी बहुत से घोंड़ों के खटाल में पाया गया है। गदहों में एक स्थान के, खास जानवरों में बीस बर्ष पहले देखा गया था, जिसमें अभी तक मौजूद है।

कीटाणु और उसके आक्रमण के नियमः—इस रोग के कीटाणु का नाम बैसीलस एबोरटीभो इक्वाईन्स (Bacilus Abortivo Equinus) है। कोई कीटाणु, जो गर्भावस्था में बच्चेदानी में पहुँच कर वह प्रसूत की बीमारी उत्पन्न कर सकता है। जिनसे बच्चा फेंका जा सकता है, लेकिन कीटाणु बहुत कम रोज तक रहता है और दूसरे बियान में कुछ असर नहीं कर सकता है। लेकिन इस रोग का कीटाणु जो एक बार प्रवेश करता है, और वह दो या तीन साल तक रह जाता है, उसके बाद फिर साफ हो

जाता है और फिर प्रवेश करता है। रोग ग्रसित जानवरों का मल और मूत्र भी रोग फैला सकता है। साधारणत: चारा जो बच्चेदानी के रस, तथा गर्भ की झिल्ली या मरे हुये बच्चे से सना हुआ रहता है, वह स्वस्थ्य जानवरों द्वारा खाये जाने पर यह रोग उत्पन्न होता है। इस कीटाणु का रूप कोकस (Coccus) के सदृश होता है जो कि छोटा कीटाणु है. ५ से. १ यू० लम्बा और. ३ से. ५ यू० चौड़ा होता है। जिसमें साफ डन्डे के समान पदार्थ भी उपस्थित रहते हैं।

यह एनीलीन रंग के द्वारा किसी प्रकार रंगा जा सकता है और कभी कभी बाइपोलर (Bipolar) रंग दिखाता है, और यह ग्राम निगेटीभ (Gram negative) है। ऊपर इस का बढ़ना अजीब है, दो तीन रोज के बाद सतह जिस पर बढ़ता है. देखने में एक सिकुड़न लिये हुये, गिरगिट के चमड़े के समान दीखता है। इस प्रकार का अजूवापन कीमती कलभर से बनाया जा सकता है। इसके कीटाणु स्पोर उत्पन्न नहीं कर सकते हैं। बच्चा फेंकना दूसरे जानवरों में भी इसी कीटाणु के बनाये हुये दवा से खून की नल्ली द्वारा सूई के देने से, भेंड़ और शुकों में उत्पन्न किया जा सकता है।

यह रोग बहुत बरसों तक रह सकता है जिसे बड़ी नुकसानी पहुच सकती है। कहीं कहीं जांच करने पर पता चला है कि बहुत जानवर रोग ग्रसित हैं, लेकिन बच्चा कम फेंका जा रहा है।

रोग के लक्षण:—भग से उजला ललछाह रंग का लभ्भा गिरता है, जिसकी गन्ध खट्टी होती है। यह गन्ध मरे हुये बच्चे तथा उनकी झिल्लियों में भी पायी जाती है। बगैर कोई लक्षण दिखाये भी कभी कभी जानवर बच्चा फेंक देता है। यह रोग छूत का है अतः साधारणतः इसका कोई खास लक्षण नहीं हैं। खुर्दबीन द्वारा देखने पर इसके कीटाणुओं का पता लगता है और यदि कीटाणु कोई अन्य कीटाणुओं के साथ मि श्रत न रहा, तो इसके कलचर (Culture) बनाये जा सकते है। इसका बहुत आसान तरीका है। सेरोलोजीकल टेस्ट (Serological test) द्वारा, जैसे एगलुटीनेसन, और कोम्पलीमेन्ट फीकसेसन (Agglutination and Compliment fixation test) जिसमें पहला अधिकतर इस्तेमाल किया जाता है।

रोग से बचने का उपाय:—दवाइयों से कोई लाभ इस रोग में नहीं देखा गया है। लेकिन जिसमें यह रोग न हो इसे बचने के लिये नीचे लिखे उपाय करना चाहिये।

एक साथ अधिक जानवरों को न रखना:—यदि थोड़ा २ जानवरों को एक २ जगह रखा जाय, कुछ २ स्थान छोड़ कर, तो यदि बीमारी जानवरों में फैला भी हो तो कम हो सकता है।

हमेशा के लिये एक ही स्थान पर घोड़ियों को न चरने देना चाहिये। यदि किसी जानवर को रोग हो जाय, तो उसकी परीक्षा सीरम के द्वारा करनी चाहिये और यदि ठीक ठहर जाय तो, सब जानवरों की परीक्षा करनी चाहिये। जिन जानवरों पर यह

रोग होने का सन्देह हो, चाहे जिन में जांच ठीक निकली हो उन सबों को अलग २ रखना जरूरी है। जिन में जांच ठीक न निकली हो उनकी जांच फिर तीन मास के पश्चात करनी चाहिये, और फिर ठीक उतरे हुये जांच वाले ज नवर को सन्देह वाले जानवरों से अलग कर देना चाहिये।

स्वस्थ जानवरों को ६ मास या १ साल में परीक्षा करनी चाहिये—इस्ट्रालाईज्ड भैकसीन (Vaccine) द्वारा जानवरों की रक्षा की जा सकती है। यार्टीन एबोरसन भैकसीन (Yarten-abortion vaccine Bayer's) से जानवरों को, इस रोग से बचने के लिये, अथवा वह जो रोग के वजह से बच्चा नहीं देती हो, तो वह दे सकती है उसे देना चाहिये।

मवेशियों में छूत से फैलनेवाली फेफड़े की बीमारी

(Contagious Bovine Pleuro Pneumonia)

रोग की प्रकृति:—यह एक छूत से फैलने वाली मवेशियों की बीमारी है जो खास कर फेफड़े और फेफड़े के ऊपर के परदे में होती है। पर पानी के समान पतला होकर फेफड़े के रक्त तन्तुओं में तथा उसके परदों के अन्दर जमा हो जाती है।

किन किन जानवरों को यह रोग होता है:—इस प्रकार का रोग अधिकतर मवेशियों को होता है, लेकिन भैंस, ऊंट, हीरण इत्यादि को भी हो सकता है। दो महीने से नीचे के बछड़े को प्रायः बड़े जानवरों के संसर्ग से हो जाता है।

यह रोग कहाँ २ होता है:—यह रोग हिन्दुस्तान में नहीं होता है। यह अस्ट्रेलिया अमेरिका तथा अफ्रिका में होता है। लेकिन कुछ रोज पहले यूरोप के बहुत से देशों में भी इस रोग से नुकसानी हुई है। १६ वीं शताब्दी में यह सारे यूरोप में छाया हुआ था, लेकिन १६१० ईस्वी में सिर्फ रसीया और स्पेन को छोड़ कर सारे यूरोप से किसी प्रकार हटाया गया है। अमेरिका से यह रोग १८६२ और ब्रिटेन से १८६८ ई० में हटा है।

लेकिन अस्ट्रेलिया, अफ्रिका और एशिया के कुछ हिस्सों में अभी तक मौजूद है।

कीटाणुओं की प्रकृति तथा आक्रमण के नियम:—इसके कीटाणु बहुत छोटे एवं सबसे शक्तिशाली खुर्दबीन से देखने पर बहुत छोटे बिन्दु के समान नजर आते हैं। ये कीटाणु (Bercfield) बर्कफील्ड भी० (V) (Chamberland) चैंम्बरलैन्ड एफ (F) फीलटर, जिसमें बहुत प्रकार के कीटाणु (Bacteria) देखे जाते हैं, उसमें ये कीटाणु नजर नहीं आते। इसका पता पहले पहल नोकर्ड (Nocord) रौक्स और (Roux) ने लगाया था। इन दोनों ने नउटरीएन्ट ब्रौथ को कोलोडीअन की शीशी में इस रोग के रस (Lymph) को बन्द कर इन शिशियों को खरगोशों के ऊपर भाग में घुसेड़ दिया। इस प्रकार इस रोग के कीटाणुओं का पालन किया गया जो भींगने पर उसका रस उन कीटाणुओं तक पहुंचता है जो कि लुपकोसाईटस से तुरन्त रखना चाहिये। १४ रोज के बाद ब्रौथ कुछ भूनाया

हुआ और खुर्दबीन से देखने में छोटे-छोटे बिन्दी के समान दीख पड़ता है, जिसको किसी रूप में कहना मुमकीन नहीं है।

इसके लिम्फ को किसी जानवर में सूई द्वारा दे देने से भयानक रूप धारण करता है। सूई देने की जगह अत्यन्त फूल जाती है और निकट मांस पेशियों के अन्दर रक्त जल का आवाहन होता है। वहां का मांस संगमर्मर पत्थर के समान चिकना हो जाता है, ठीक इसी प्रकार का लक्षण स्वाभाविक बीमारी होने पर फेफड़ों में देखा जाता है। जो जानवर इस प्रकार की सूई से चंगे हो जाते हैं, वे स्वाभाविक बीमारी तथा सूई द्वारा उत्पन्न होने वाली बीमारी के शिकार नहीं हो सकते हैं। फेफड़ों में रदोबदल सूई देकर नहीं की जा सकती है, खिलाकर या दूसरे प्रकार से रोग उत्पन्न करना, असफल है। इसलिये स्वभावतः रोग कैसे होता है इसका पता अभी तक मालूम नहीं हुआ है। एक जानवर से दूसरे जानवर के भीड़ने पर यह रोग होता है।

इसके कीटाणु रोगी जानवरों के फेफड़ों में कई एक महीनों तक, और ठिकाने से रखे जाने पर १० महीने तक रहते हैं। इसलिये बोध होता है कि सांस के द्वारा भी यह रोग हो सकता है। जो जानवर इस रोग से चंगे हो जाते हैं, उनके फेफड़े में गढ़े हो जाते हैं, जिसे झुण्डों में रोग फैलने का अधिकतर डर रहता है।

लक्षण :—जानवरों के पकड़ाने पर १४ रोज पर बीमारी का लक्षण देखा जाता है। शुरू में जानवर सुस्त, भूख का न लगना, पागुर का बन्द करना, और दूध देनेवाली गायों का दूध कम हो जाता है। और २ या ३ बुखार बेसी हो जाता है, और स्वांस में भी कुछ गड़बड़ी हो जाती है। उसके बाद जानवर को खांसी हो जाती है और तब सरेसाम और फेफड़ों के परदों का फूलने का रोग (Pneumonia and Pluerisy) हो जाता है। छातियों की परीक्षा करने पर उनमें बीमारी के दाग फेफड़े पर और दोनों तरफ छाती पर जल भरा हुआ बोध होता है और यदि रोग आरम्भ का हुआ और लक्षण बढ़ने लगा तो जानवर १० से २० रोज के अन्दर मर जाता है। बहुत से शुरू वाले भी रोगी अच्छे होने लगते हैं, लक्षण मन्द पड़ जाता है, और फिर पहली तन्दुरुस्ती आ जाती है। किसी-किसी जानवरों को फेफड़े में गढ़े हो जाते हैं, वह सिर्फ चीरने पर मालूम होता हैं। बहुत से रोगी जो अच्छे नहीं होते हैं, उनकी बीमारी पुरानी हो जाती हैं जिनको खांसी बराबर जारी रहती है, दिन पर दिन सूखे जाते हैं, और कुछ दिनों के बाद मृत्यु हो जाती है। पुराने रोगियों से रोग फैलने की अधिक आशंका रहती हे। जो उनके बलगम से फैलता है।

एक दूसरे प्रकार के रोग है जिसको हाईपर एक्यूट (Hyper acute) कहते हैं, जिसमें बहुत शीघ्र मृत्यु होतो है, और जिसमें

फेफड़े के परदे से बहुत पानी चलता है और कभी बच्चों का फेंकना जिसमें कुछ बोखार हो जाता है और जानवर बहुत जल्द आराम हो जाता है। सिर्फ फेफड़े में गढ़े हो जाने के कारण बरसों जीवित रहता है, मरे हुये जानवरों को फाड़ने पर इस रोग का पता चलता है।

चिन्ह (भीतरी अंगों में) :—वक्षः स्थल के भागों में अनेक प्रकार के चिन्ह देखने में आते हैं। वक्षः स्थल के परदों के अन्दर दो से तीन गैलन तक जल पाये जाते हैं और दूसरे भागों में जल नहीं पाया जाता, बल्कि परदे में सूजन हो जाती है। प्रायः सब रोगियों में यह देखा जाता है कि फेफड़े के परदे पर पीले रंग के मोटे परदे के समान हो जाता है और परदे के भीतर से भी जल आने जाने लगता है। कमल के ऊपर के परदे में भी ऊपर लिखे मुताबिक रद्दो बदल होता है। सबसे प्रसिद्ध चिन्ह फेफड़े में देखा जाता है, वह यह कि दोनों फेफड़ों या एक फेफड़े में भारीपन आ जाता है, सूजन हो जाता है और सूजन वाले भाग स्वस्थ भागों से ऊँचे दीख पड़ते हैं। इस सूजन वाले स्थान को फाड़ने से साफ जल भूसे के रंग का बहुत गिरता है। यह रक्त के रंग से रंगा हुआ होता है, और कुछ देर के बाद जम जाता है। काटे हुये फेफड़ों को देखने में संगमर्मर पत्थर के समान देखने में आता है। यह फेफड़े के तन्तुओं के मोटा हो जाने के कारण मालूम पड़ता है। जो तन्तु स्वस्थ अवस्था में बहुत बारीक रहते हैं, और खाली

आँख से बहुत कम देखे जाते हैं, वे उसे भूसे के रंग वाले गले में भर जाने के कारण खूब फूल जाते हैं और मोटे हो जाते हैं। फेफड़े के तन्तुयें जो मोटे तन्तुओं से घिर जाते हैं, वे बहुत रंग के होते हैं, जैसे गुलाबी, नारंगी के रंग जैसा, चमकीला लाल, और गाढ़ा लाल करीब-करीब काला जैसा। इस प्रकार के रंग में रदो बदल सूजन के कारण होते हैं, और सूजन के पुराने होने से भी रंग में कुछ फरक हो जाता है। इसी रंग के फरक के कारण फेफड़े संगमर्मर के समान बोध होते हैं। ब्रौन्कीअल (Bronchial) की गिल्टियां अथवा फेफड़े और ब्रौंकीअल के बीच की गिल्टियां फूल जाती हैं जो मोलायम और जख्म के समान दिखते हैं।

पुराने रोगियों में वक्ष स्थल और फेफड़े के परदे सट जाते हैं। जल नहीं दीख पड़ता और फेफड़े का परदा मोटा को जाता है। मांस पेशियों में सूजन होने के कारण उसको काटने से कम जल गिरता है।

रोगियों में जख्म उन फेफड़ों के हिस्से में पाये जाते हैं जहां पर रोग के कारण सूजन हो जाती है तथा रक्त का संचार कीटाणुओं के पीब से रुक जाता है। ये जख्म कुछ पीले रंग के होते हैं जो एक परदे में बन्द के समान रहते हैं, और जिससे सीक्वेसटरा (Sequestra) तैयार होते हैं। चंगे हुये जानवरों में इन सीक्वेसटरों से दूसरे जानवरों को रोग होने का डर रहता है क्योंकि उसमें कीटाणु भरे होते हैं।

इस बीमारी में जो नीमोनीया होता है, वह कुरूपस के किस्म की होती है।

बीमारी के शुरू में इसका ठीक पता लगाना बहुत कठिन है, क्योंकि लक्षण सिर्फ पलुरो नीमोनीया के होते हैं।

बीमारी शीघ्र पहचान में नहीं आती है। अतः रोगी के मरने पर फाड़ने से रोग का पूरा पता लगता है। जब बीमारी शुरू हो जाय और पता लग जाय तो रोकने का उपाय करना चाहिये। यह रोग राज यक्ष्मा, कमल रोग और फेफड़े में सूजन (Pneumonia) के साथ गड़बड़ हो सकता है।

रोग को रोकने का उपाय :—अच्छे जानवरों को टीका (Vaccination) दिलावा देना चाहिये। टीका दो तरह से दी जाती है। एक टीका लीम्फ (Lymph) का और दूसरा सीरम का है।

बीमारी पशुओं को अलग रखना आवश्यक है, जैसा कि दूसरे रोग के सिलसीले बताया गया है।

छूत से फ़ैलने वाली (घोड़ों के फेफड़े की) बीमारी

स्वभाव :—यह रोग पहले घोड़ों के इनफुलेन्जा से गड़बड़ा जाया करता था। यह संक्रामक रोग फेफड़े के परदे पर, कमल और उसके ऊपर वाले हिस्से पर, कलेजे, आंत और गुर्दे में देखा जाता है।

कीटाणु और उसके नियम :—ईनफ्लुएन्जा के समान इसके कोई खास कीटाणुओं से होने का सबूत नहीं पाया जाता। किसी-किसी के मत के अनुसार पता चला है, कि यह बहुत छोटा कीटाणु जो खुर्दबीन में भी नहीं देखा जा सकता, जिसके साथ पासचुरेला (Pasteurella) और इस्ट्रेप्टोकोकाई (Streptococei) शामिल होते हैं इसके अलावा और बहुत से कारण हैं जैसे, जवानी, दुबलापन, ठण्ढा लगना, नाक से सर्दी या मुंह से खांसी का होना, तथा गन्दी हवा में बन्द रहना स्वच्छ हवा में आने से रूकावट, ज्यादा भीड़ में रहना, कम खाना, अधिक काम करना, थकावट, रेल द्वारा यात्रा भी हैं।

आंगन, अस्तबल, नाद, वाल्टी, लीद तथा कूड़ा से बीमारी फैलती है, कमजोर जानवर इसको कई एक हप्ते तक ढोते हैं।

यह बीमारी इनफ्लुएन्जा के बनिस्बत देर से फैलती है, और अस्तबल में कीटाणु अधिक होती है। इनके कीटाणु शरीर में पैठने के बाद ३ से १० रोज के भीतर रोग का लक्षण जाहीर करता है।

रोग के लक्षण :—नये जानवरों के आने से झुण्ड में बीमारी फैलती है। एक ही बार, या आगे पीछे जानवरों को बीमार पड़ने, या मरे हुये जानवरों को फाड़ने पर रोग का पता लगता है। नीमोनीया (Pneumonia) यानी सूजन दोनों फेफड़ों में होता है और खास कर फेफड़े के शुन्य हिस्सों में अधिक देखा जाता है। करकराहट की आवाज उन जगहों से आती है, जहां के फेफड़े में सूजन रहता है। कमल के हिस्सों का फूलना

(Pericarditis and Endocarditis) इस बीमारी में अधिकतर देखा जाता है और कमल की गति धीमी पायी जाती हैं।

नाक से पीले नजलों का गिरना, जो कि सुखकर पीले खरठी के समान नाक के कोने पर देखे जाते हैं, यह भी इस रोग का खास लक्षण हैं। आँख तथा मुख के भीतर के परदे रोग के शुरू होने पर पीले रंग के दीख पड़ते हैं, जो कभी-कभी नारंगी के रंग के भी रहते हैं।

पेशाब थोड़ा और पीले रंग का होता है और जिस समय रोग का खूब जोर होता है उस समय पेशाब गाढ़ा लसीला होता है। पैरों तथा और जगहों पर सूजन होना, यह प्रगट करता है कि जानवर को कलेजे का रोग है, जो अक्सर इस बीमारी में पाया जाता है। मरीज को फाड़ने पर यह देखा जाता है कि दोनों फेफड़ों में सूजन हैं, जो कि नीचले, किनारे और ऊपर वाले हिस्से में देखे जाते हैं। हरेक सूजन की जगहों पर मवाद भरे जख्म होते हैं, जो कि काले, लाल रंगों से घीरे दीख पड़ते हैं। ऐसी हालत में फेफड़े और उसके ऊपर के परदों में जल भर जाते हैं। कलेजे बड़े हो जाते हैं, जो कि तौल में ३० पौंड के लगभग होते हैं।

ऊपर के लक्षण मामूली फेफड़े की सूजन से तथा इनफूलूएन्जा से भिन्न हैं, जिसमें (Influenza) आंख की सूजन, तथा शीघ्र रोग का बढ़ना पाया जाता है।

मामूली तरह से यह रोग दो या तीन सप्ताह तक और कमजोरी चार सप्ताह तक रहती है।

मृत्यु १०० में १ से लेकर २० तक होती है। रोग से चंगा हो जाने पर खास ऐब जानवरों में देखे गये हैं जैसे, रोरींग (Roaring), दम्मा, कमल की कमजोरी, गांठ और नसों की कमजोरी और कलेजे की बीमारी।

बीमारी को रोकने का उपाय:—

१ बीमार जानवरों को अच्छे जानवरों से अलग रखना चाहिये। अगर हो सके तो, गाछ की छाया या छपर के नीचे रखना अच्छा होगा।

२ बीमार जानवरों के लिये आदमी अलग नियत करना चाहिये और खाने पीने का बर्त्तन अलग अलग रखना चाहिये।

३ जो जानवर मर गया हो उसको और उसके कपड़े इत्यादि को जला देना चाहिये।

४ जहाँ बीमार जानवर बांधे गये हों उस जगह को शुद्ध कर देना चाहिये, और बिछावन तथा घास इत्यादि जो हो उसको जला देना चाहिये। खाने के बाद तथा नाद के नजदीक की दीवाल, खाद्य, नाली और जल का स्थान और कोई भी चीज जो कि नाक के सर्दी से मिश्रित हुआ हो, उन सबको शुद्ध कर देना चाहिये। यदि बहुत से जानवर किसी एक जगह पर बीमार पड़ गये हों, तो उस जगह को खाली करके उस स्थान को शुद्ध कर देना चाहिये।

५ सब जानवरों को १० रोज तक ठिकाने से देखभाल, तथा बुखार देखना चाहिये। किसी में बीमारी का अगर शंका हो तो अलग करके इलाज करना चाहिये।

चिकित्सा:—बीमार जानवरों के लिये सेवा शुश्रुषा तथा स्वच्छ हवा और गर्म कपड़े का बन्दोवस्त होना चाहिये। स्वच्छ जल, जो बराबर बदला जाय ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये। तीसी का उबाला हुआ तथा जव का जल, प्यास बुझाने में बहुत लाभ दायक होता है। दूध से फेफड़े के परदे को सड़ने की संभावना नहीं रहती है। कारबोलिक एसीड को गर्म भाफ के द्वारा नाक में सुंघाना चाहिये, या और दूसरी दूसरी दवा जैसे एकलीपटस इत्यादि लाभप्रद हैं। सोडा सलीसीलेट (Salicylate of Soda) भीतर खाने के लिये प्राय: बड़े जानवरों को आधा औंस और छोटे को इसका आधा, दिन में दो बार दे सकते हैं। जोरदार बीमारी में गर्म जल में कम्बल का टुकड़ा भींगो कर छाती को सेंकना चाहिये, और जब फेफड़े के परदे सड़ने पर हो तो पोटास आएओडायड (Potassium iodide) दो ड्राम तक दिया जाता है। जानवर को स्वच्छ, साफ स्थान तथा हवा में रखना जरूरी है।

कमजोर जानवरों को तीन सप्ताह के भीतर अपने स्थान पर नहीं लाना चाहिये।

नये जानवर जो मेला वगैरह से खरीद कर लाये जाते हैं, वैसी जगहों से जहां कि बीमारी अक्सर होती हो, उन जानवरों को घर के जानवरों से एक महीना अलग रखना उचित है।

घोड़ों के गिल्टियों का फूलना
(EPIZOOTIC LYMPHANGITIS)

स्वभाव:—यह रोग बहुत खतरनाक घोड़ों की बीमारी है, जिसमें चमड़े के उपर रक्त तन्तु बढ़ तथा फूल जाते हैं और जिसपर छोटे फुन्सी के समान होते हैं जो पीछे फूट कर घाव हो जाते हैं।

किन किन जानवरों को यह रोग होता है:—यह रोग प्रायः घोड़े, खच्चर और गदहों को होता है, लेकिन जापान में यह बीमारी गाय बैलों में भी देखी गयी है।

कहां कहां यह रोग फैला हुआ है:—यह हिन्दुस्तान के अन्दर अक्सर होता है और जहां जहां से घोड़े मंगाये जाते हैं उन जगहों में इस बीमारी के होने का ज्ञान होना जरूरी है। यह रोग चीन देश, इटली, मिश्र, दक्षिणी फ्रांस और दक्षिणी अफ्रिका में होता है। ईंगलिस्तान, जर्मनी, अफ्रिका, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड में नहीं होता है।

कीटाणु और उनके शरीर में पैठने के नियम:—यह रोग क्रीपटोकोकस नामक कीटाणु के द्वारा होता है, जो कि घाव के पीव में पाये जाते हैं। पीव के एक सेल में १० से ३० कीटाणु तक पाये जाते हैं। यह कीटाणु प्रायः अन्न के रूप का होता है जिसकी मोटाई चौड़ाई ३ से ४ यू० तक होते हैं। जिसका एक



छोर नोकीला और दूसरा गोला होता है। यह बिना रंगे भी न० ३ या न० ४ के लेन्स से प्रकाश ठीक करके देखा जा सकता है। रंगे हुए कीटाणु भी उसी नम्बर से बहुत देखे जा सकते हैं। पीव को सीसे पर देकर स्प्रीट लैम्प की गर्मी से सुखाना चाहिये और तब उसको कारवलफूकसीन से रंगना चाहिये। अतएव जब तक भाफ न उठे गर्म करना चाहिये, और उसपर तीन या चार बार तक रंग देते रहना चाहिये, तब पानी से धोकर सुखा देना चाहिये, तब दो और तीन मिनट तक लुगल सोलुसन से फिर धोकर सुखा देना चाहिये, बाद एनीलीन तेल से रंग छोड़ाने के बाद खुर्दबीन में देकर देखना चाहिये। अगर रंग नहीं छूटा हो तो एनीलीन तेल के साथ जाइलौल मिलाकर रंग छूड़ा दें, और तब देखना चाहिये। यदि जरूरत हो तो मिथलीन बुलु या बिसर्माक वएडन से भी परीक्षा के पूर्व व्यवहार किया जा सकता है।

पशु के शरीर के बाहर इस कीटाणु की स्थिति रहती है या नहीं इसका ज्ञान बहुत कम है। जमीन पर इसके कीटाणु रह सकते हैं लेकिन दो महीने के बाद तथा वह स्थान निरापद हो जाती है। इसके कीटाणु भी मजबूत होते हैं। ५ प्रतिसत कार्बोलीक एसीड का पानी से इसपर कम असर होता है। इसका नाश यदि किसी से होता है तो गर्मी से या परकलोराईड औफ मरकरी (Perchloride cf murcury) १ में २५० हिस्से के पानी से।

इस कीटाणु को १-८ भाग लीद के पानी में और पेपटरोन १ भाग, गुलकोज ४ भाग हो, तो एक छोटी शीशी में रख उसको लीम्फ से ढांक देना चाहिये। इसपर कीटाणु सुखा और सिकुड़ा हुआ खरी के सदृश दीख पड़ता है। इस पर कीटाणु कीरीप्टोकोकाई (Cryptococci) फूल जाने से बढ़ा हुआ बोध होता है। उपर लिखे प्रबन्ध तीन पीढ़ियों के लिये आवश्यक है, उसके बाद मामूली पर भी अगर कीटाणु बढ़ता है, या शरीर के गर्मी इतना गर्मी होने से भी बढ़ता पाया जाता है।

यह रोग किसी जख्म होने के कारण, रोगी जानवरों के स्पर्श से, मिट्टी इत्यादि जख्म में पड़ जाने से, धूल, साज या जानवरों के ओढ़ना से, खरहरा से, बरूस से, घास से मक्खियों द्वारा, अशुद्ध हाथों से, कपड़ों से, अवजारों से, रूई से, पटुआ से, तथा पटी इत्यादि से प्रारम्भ होता है। जानवर के शरीर रगड़ने अथवा किसी बीमार जानवरों के काटने से भी हो सकता है।

नियम अनुसार घाव भर जाता है और बोध होता है कि आराम हो गया। कीटाणु शरीर में पैठने के बाद तीन, छव, या दस महीने तक (अधिकतर तीन महीने के अन्दर) में रोग फैलाते हैं। रोग का लक्षण सबसे पहले घाव पर देखने में आता है।

रोग के लक्षण :—पहले जहाँ जख्म रहता है, वहाँ पर छोटे २ दाने, मटर के समान हो जाते हैं ऊपर की गिल्टियों (Lymphatic) की रक्त नली मोटी हो जाती है, जो छूने से दर्द करता है। वही सब दाने फुट जाते हैं जिसे पीब गाढ़े और छाली के समान गिरते हैं, जो पीछे पीले और तेल के समान चीकना और जमा हुआ होता है।

रोग का स्थान प्राय: साधारणतः घावों की जगहों पर होते हैं जैसे, ठेहूना, मोजा, पैर के भीतरी भाग में, सिर पर, तंग की जगह पर, पीठ और मउर पर फूली हुई नली घावों से युक्त गिल्टियों की तरफ।

इस बीमारी में और कोई शिकायत नहीं पायी जाती है, और जानवर खाना नहीं छोड़ता है।

घाव ज्यादा भरा हुआ रहता है, और उसके मांस चमकीले लाल दीखते हैं।

पहले जो देखने में आता है वह यह है कि, जिस स्थान पर बीमारी शुरू होती है, वह स्थान फूला हुआ दीख पड़ता है, जिसे मालूम पड़ता है कि मामूली सूजन है।

किसी-किसी जानवरों में (१०० में १० या ७) नाक के भीतर जख्म देखने में आता है, जो की कण्ठ या हवा की नली के ऊपरले भाग तक फैल सकता है। ये छोटे-छोटे दाने के समान होते हैं जो फूट जाते हैं और जख्म के समान हो जाते हैं। जिसके कोर खड़े-खड़े होते हैं और घाव गढे के समान रहते हैं यदि सावधानी पूर्वक निरीक्षण नहीं किया जाय, तो यह बीमारी

घोड़ों के कण्ठासार यानी (Glanders) के साथ गड़बड़ा जा सकता है।

आँख के भीतरी भागों में यह रोग हो सकता है जिसमें कुछ दिनों तक कोई लक्षण नहीं देखे जाते हैं।

इस रोग की गति बहुत धीमी होती है जिसमें बहुत से जानवरों को इलाज करने का मौका मिलता है, जो कि एक से छः महीने तक में आराम होता है, लेकिन यह रोग एकदम अच्छा नहीं होता है। फिर भी हो सकता है, और जो पीब अन्दर रह जाते हैं उस कारण से फिर दूसरे जख्म निकल सकते हैं।

दूसरे रोगों से मिलान (लक्षण) :—इस रोग के लक्षण घोड़े के कण्ठासार (Glanders and Farcy) नामक रोग से कभी कभी गड़बड़ा सकता है। जिसके कुछ लक्षण का मिलान नीचे लिखा जाता है।

१ देखने में तन्दुरुस्त बोध होना है।
२ इस रोग में बुखार नहीं होता है।
३ जख्म का एक खास रूप जो अपने भर जाता है, और इलाज करने से शीघ्र भरता है।
४ पीबें उजली और गाढी छाली के समान होते हैं।
५ मेलीन (Mallein test) के इनजेक्सन पर कोई रद्दोबदल नहीं पाया जाता है, जिसके व्यवहार करने से कण्ठासार की बीमारी सिद्ध होती है।

६ क्रीपटोकोकस का पीव में पाया जाना ।

७ आलू के ऊपर कीटाणुओं को जाँच करने पर कोई फल नहीं ।

८ बिलायती नर चूहों में कीटाणुओं के इनजेक्सन करने पर ज्यादा नहीं फूलते हैं ।

६ जबड़े के नीचे की गिल्टियों का कम फूलना, जो कि कण्ठसार में नहीं फूटते और गर्म और कड़े होते हैं। कण्ठासार के जख्मों में इस प्रकार के मांस नहीं देखे जाते हैं। नाक से कम पोटा का गिरना ।

यह रोग मामूली पैरों का सूजना, या (Strangles) कण्ठ के नीचे गिल्टियों का फूलना और बरसाती से गड़बड़ा सकती है। मामूली पेट के सूजन में दर्द होता है और बुखार हो जाया करता है। तथा इसट्रैंगल्स (Strangles) यानी कण्ठ के नीचे की गिल्टियों के फूटने से उसमें इस्ट्रेपटोकोकाइ (Streptococci) नामक कीटाणु अधिकतर पाये जाते हैं। बरसाती में घाव कड़े और कंकड़ भरे रहते हैं। किसी तरह के शक में क्रोप्टीकोकाइ कीटाणु का पाया जाना सबको दूर कर देता है।

रोग से बचने का उपाय

१ फौरन बीमार जानवरों को या जिन जानवरों पर बीमारी का शक हो उनको हटा कर एक माइल दूर रखना चाहिये ।

२ जिन जानवरों में बीमारी की जांच ठीक निकली हो, उन जानवरों को मार डालना चाहिये, और लाश को बिना चमड़ा छोड़ाये हुए गाड़ या जला देना चाहिये ।

३ पीव इस बीमारी का अत्यन्त भयानक पदार्थ है, इस लिये जानवरों के रहने के स्थान, उनके बिछावन इत्यादि तथा अगल बगल के जानवरों के जख्म द्वारा रोग बढ़ सकता है, इसलिये बगल के जानवरों को जख्म के लिये देखभाल करनी चाहिये, यदि कोई जानवर उसी साइस के द्वारा मला गया हो और इसमें कोई घाव दीख पड़े तो वैसे जानवरों को तुरन्त हटा देना चाहिये ।

४ सावधानता पूर्वक सब जानवरों की देख भाल करनी चाहिये यदि कोई लक्षण दीख पड़े जैसे विशेष कर पेट के भीतर की तरफ; और उन जागहों पर जहां लात फेंकने की जगह हो, और जख्म की जगह हो जिसमें आँख के परदे को न छोड़ना चाहिये । दि हो सके तो इस प्रकार निरीक्षण प्रतिदिन करनी चाहिये।

५ जख्म जिन-जिन जानवरों को हो, उसका फिरिस्त करके रखना चाहिये। यदि कोई इस तरह का जानवर हो, तो उसपर छ: महीने तक निगरानी रखनी चाहिये। उन जानवरों को अलग हटाने की आवश्यकता नहीं, यदि उनके जख्म एक ही आदमी द्वारा धोया गया हो, और

एक ही बर्त्तन इस्तमाल किया हो, जो कि बीमार जानवरों के लिये था, उनको अलग रखकर छः महीने तक देखना चाहिये।

६ सब जानवरों को छः महीने तक अलग रखना चाहिये।

७ जानवरों को कई एक झुण्ड बना कर नहीं रखना चाहिये।

८ जानवरों को इस हिसाब से रखना चाहिये जिसमें लात चलाने का मौका न मिले। लतराह जानवरों को जिसमें चोट न लगे ऐसी जगह पर रखना चाहिये।

९ घाव धोने के तरीके को बदल देना चाहिये। इस्पौन्ज का व्यवहार जहाँ तक कम हो अच्छा है। हाथ से या पिचकारी से किसी घाव को छूना मना है। १ में ५०० पर क्लोराइड ऑफ मरकरी के पानी का व्यवहार करना चाहिये। रूई और पटुआ का व्यवहार जहाँ तक कम हो, तथा जख्म को पट्टी द्वारा ढक कर रखना चाहिये। हरेक घाव के लिये अलग-अलग रूई और पटुआ व्यवहार करना चाहिये। रूई जो पीब से भीगी हो तो उसको जला देना चाहिये। जो घाव खुला हुआ हो उस पर सूखी बुकनी लगा देनी चाहिये।

१० जख्म किसी डाक्टर के निरीक्षण में धोया जाना अच्छा है।

११ मक्खियां से जानवरों की रक्षा करनी चाहिए और जिसमें घाव पर न बैठें इस तरह का उपाय करना जरूरी है, इसलिए चीअरपाईन का तेल दिन में दो बार लगाना चाहिए, इससे मक्खी नहीं बैठती हैं।

१२ नियम पूर्वक जगहों को शुद्ध करना जरूरी है। आग और उसकी गर्मी का व्यवहार पूरा करना चाहिए। बिछावन, रबर इस्पोनज और कपड़ों को जला देना चाहिए। बीमार जानवरों के खड़े होने की जगह दिवाल को किसी प्रकार जलाना चाहिए, इस काम के लिए ब्रेजीरस का लालटेन बड़ा लाभदायक होता है। शुद्ध करने के नियमों के अनुसार शुद्ध करना चाहिए। शुद्ध करने वाली दवा का पानी तेज बनाकर इस्तेमाल करना चाहिए। कारबोलीक एसीड का असर इस रोग के कीटाणु पर कम होता है। खौलता हुआ जल, चूना का पानी जिसमें दो हिस्सा चूना पड़ा हो, और परक्लोराईड औफ मरकरी जिसकी बनावट १ में २५० का हो, काम में लाया जा सकता है। शुद्ध दो बार करना चाहिए। साइसों के कपड़े तथा जूते को न छोड़ना चाहिए। यदि मामूली हो तो जला देना चाहिए और नहीं तो उबाल देना अच्छा है। जानवरों के साज और जीन के ऊपर पूरा ध्यान रखना चाहिए, गर्म जल साबुन और परक्लोराईड औफ मरकरी का व्यवहार करना चाहिए। जोरदार बीमारी उठने

पर कपड़ों को उबाल देना, तथा घोड़े मलने के सामान को सभी जीन तथा बरतनों को तथा जानवरों को भी खूब साफ तरह से धो डालना चाहिए।

१३ जिस यंत्र के द्वारा जख्म वगैरह चीरा गया हो उस सब को उबाल देना चाहिए।

१४ बीमारी के स्थान सबसे पीछले रोग के बाद छः महीने तक रोग ग्रसित रहता है।

१५ बीमार जानवर जिनको जख्म इत्यादि हों उन पर E.C. (Epizootic in contact) का दाग दाहिने जंघे पर दे देना चाहिये।

खोरहा या भजहा (Foot and mouth disease)

इस रोग के तरह-तरह के नाम हैं :—इसको कहीं खोरहा कहीं भजहा कहीं लंगड़ा कहते हैं।

स्वभाव :—इस रोग में बहुत बुखार जो छूत से शीघ्र फैलने वाला होता है और केवल पागुर करने वाले जानवरों को होता है, जिसमें मुंह और खूर में फोड़े निकल जाते हैं।

कीटाणु का ज्ञान और रोग फैलने के नियम :—यह रोग प्रायः मवेशी (भैंस और बकरे इत्यादि को होता है)। शुकर (सुअर) घोड़े, मनुष्य तथा चिड़ियों को बीमार जानवरों का दूध पलाने से हो सकता है। यह रोग हिन्दुस्तान के प्रायः सभी प्रांतों में होता है। बिलायती चूहों को यह रोग सूई के द्वारा पीछले पाँव

के गद्दे से हो सकता है। इसलिये इन जानवरों पर रोग की परीक्षा या जांच की जाती है। इसका कीटाणु इतना छोटा होता है कि खुर्दबीन में भी नहीं देखा जाता है, फैलने वाले विषैले पदार्थ इसके फोड़े में पाये जाते हैं। मुंह से लार द्वारा, जो सड़क पर, चरागाह में, जल पीने के स्थान में गिरता है जिसके स्पर्श से रोग अच्छे जानवरों को होता है। खूर से अथवा खूर के बीच से भी जो रक्त इत्यादि गिरता है उससे भी दूसरे जानवरों को हो सकता है, और स्तन से फोड़े का पानी दूध में मिल जाने से बछड़े तथा मनुष्यों को होता है।

सब छूत से फैलने वाली बीमारियों में इस बीमारी के कीटाणु बहुत शीघ्रता से फैलते हैं। यह रोगी जानवरों द्वारा फैलता है। लेकिन यह कुत्तों, चिड़ियों और मनुष्यों द्वारा उनके पैर से फैलते हैं। बीमारी चूहों द्वारा भी होता है, जब चूहा बीमार जगहों से लाया जाता है। नये खरीदे हुये जानवरों द्वारा भी बीमारी गांव में फैलती है। यह बीमारी अधिकतर बसंत ऋतु में होती है।

एक बार बीमार पड़ने से जानवरों को कुछ महीनों तक बीमारी नहीं हो सकती है, इसलिये जानवरों को कई एक बार बीमारी हो सकती है फोड़े के रस २४ घन्टे तक धूप में सूखने के बाद शक्तिहीन हो जाते हैं। १५८° तक की गर्मी इन कीटाणुओं को मार सकती है। ठण्ढे से कीटाणु सुरक्षित रहते हैं। घाव से लिये हुये रस शीशी में बर्फ के साथ रखने

पर देखा गया है कि १४ रोज के बाद तक भी जीवित रहते हैं और तीन सप्ताह के बाद शक्तिहीन हो जाते हैं। कभी-कभी ८ या ६ सप्ताह के बाद भी शक्तिहीन हो जाते हैं, जो कि सुई अधिक मात्रा में देने पर बोध होता है। ऊपर कही हुई बात लैबोरेटरी की परीक्षा रूप प्राप्त हुये हैं।

साधारणतः—देखा गया है कि कीटाणु शरीर से बाहर १८ रोज तक जीवित रहते हैं। फ्रांस के विशेषज्ञों ने बताया है कि जिस स्थान पर धूप नहीं लगी हो, चाहे कोई दवा द्वारा मकान शुद्ध नहीं किया गया हो तो, कुछ महीने तक ये कीटाणु शक्तिपूर्वक रहते हैं।

हिन्दुस्तान में इनके कीटाणु १८ रोज से कम ही जीवित रहते हैं, यद्यपि भूस्सा में कुछ रोज बेसी रहते हैं।

कीटाणु नाशक औषधियों के सामने बहुत कम ठहरते हैं। हमलोगों को इसके कीटाणुओं का ज्ञान पूरा होना चाहिये और नहीं तो बीमारी को रोकने में हमलोग सफल नहीं होंगे। क्योंकि कुछ भी कीटाणुओं का अंश इस बीमारी को उत्पन्न कर सकता है और विशेषकर मवेशियों में।

नीचे लिखे कारणों द्वारा बीमारी हो सकती है :—

(१) खाने द्वारा :—जैसे चारा या पानी से यह रोग अधिक होता है।

(२) सुई द्वारा :—जैसे किसी चीज के स्पर्श जिसमें रोगी जानवर भीड़ा हो, मुंह और खुर में हो सकता है। स्तन में ग्वालों के हाथ द्वारा होता है।

शरीर में कीटाणु पैठने के बाद २४ घन्टे से लेकर तीन या चार रोज तक अधिकतर ३६ घन्टे तक में रोग का लक्षण जाहिर होता है । यह जाड़े से गर्मी में कम समय लेता है।

रोग के लक्षणः—पहले पहल जानवर को ताप यानी बोखार आता है जो कि १०३° तक या अधिक हो सकता है । मुख, सींग तथा जोड़ इत्यादि गर्म हो जाते हैं और मुख से लार चलता है। खुर के बीच में देखने पर नर्म मालूम पड़ता है, और चलने पर जानवर पैर झाड़ कर चलता है । कभी-कभी पहले चलने में लंग देता है दूसरे दिन मुख में दाने निकल आते हैं, जो कि १।.३" से १" तक में होते हैं। जीभ में भी दाने हो जाते हैं। और तालु, मसूड़े तथा गाल के भीतर भी दाने देखे जाते हैं। ये दाने निकलने के साथ ही फूट जाते हैं और लाल जखम गोलाकार देखने में आता है ।

गायों में छोटे-छोटे दाने स्तन में दीख पड़ते हैं और यदि दूहने वालों द्वारा न फोड़े जांय तब ३६ से ४८ घन्टे तक में अपने ही फूट जाते हैं और ठीक मुख के जखम के समान दीख पड़ते हैं।

उसी प्रकार छोटे-छोटे दाने गसों में तथा खुर के बीच में जहां पर चमड़ा और खुर मिलता है, हो जाते हैं ।

जैसे जैसे रोग बढ़ता , वैसे वैसे लार अधिक गिरता है और लंगड़ापन देखने में आता है । कभी कभी मुख अथवा पैर में या दोनो में दाने निकलते हैं।

यदि रोगी जानवरों की ठेकाने से खबरगिरी लिया जाय तो बोखार के सभी लक्षण तीन या चार रोज में अच्छे हो जाते हैं और जानवर १० या१५ रोज में चंगा हो जाता है, सिर्फ कुछ दुबला रहता है। खबरगीरी करने से जानवर शायद ही कभी मरता है। खबरगीरी न की जाय, तथा इसी तरह रोगी को छोड़ दिया जाय तो पैर के घाव बढ़ जाते हैं, और खुर गिर पड़ता है, पैर बहुत फूल जाता है और उसमें फोड़े निकल जाते हैं और तब १० से १२ रोज तक में मृत्यु हो जाती है।

भेड़ों में ठीक ऊपर बताये मुताबिक लक्षण होते हैं, लेकिन खुर में अधिक होता है, और जानवर बेशी दुबला हो जाता है। सुअरों में भी अधिक पैर ही में जखम पाया जाता है, जिससे उनको बहुत दुःख होता है।

मनुष्यों में भी इसी प्रकार है, हाथों में दूध दुहने से मुंह में दूध पीने से तथा बीमार जानवर का मक्खन खाने से हो सकता है, बच्चों में खास कर के इसका बहुत खतरा है, जो सिर्फ दूध ही पीकर रहते हैं। उन में पेट की गड़बड़ी और मुंह में दाने निकल आते हैं।

दूसरे रोगों से मिलान:—कभी कभी खोरहे तथा चेचक में पहचान करना कठिन हो जाता है। खोरहा बीमारी में हिन्दुस्तान में छेरा या पेट का चलना नहीं देखा जाता है। चेचक में पतला दस्त और आँव का पड़ना विशेष लक्षण है और चेचक में खुर में कोई रोग नहीं होता है।

रोग को रोकने का उपाय :—

(१) भयंकर संक्रामकता का ख्याल रखना चाहिये, और जहाँ तक शीघ्र हो सके रोगी जानवरों को अलग रखना चाहिये। बीमार जानवरों को जहाँ तक हो सके तन्दुरुस्त जानवरों से दूर रखना चाहिये, जो किसी हालत में सड़क के निकट नहीं हों।

(२) बीमार जानवरों के निकट से सभी आमद रफ्त निरोग जानवरों का बन्द कर देना चाहिये। बीमार जानवरों के लिये आदमी अलग रहना चाहिये, और उन लोगों को ऐसी आज्ञा रहे कि जब तक बीमारी अच्छी न हो जाय, तब तक वहां से दूसरी जगह न जाँय, बीमार जानवरों की जगह को बाँस इत्यादि से घेर देना चाहिये, जिससे दूसरे जानवर उसमें प्रवेश न कर पावें। जानवरों या मनुष्यों के लिये जो चारा और खाना आवे उसे हाथों द्वारा लाना चाहिये, और यदि गाड़ी द्वारा लाया जाय तो घोड़े या खच्चर गाड़ी पर लाना चाहिये। फालतू मनुष्यों को वहाँ नहीं जाने देना चाहिये। यदि डाक्टर वगैरह जाँय तो वहाँ से निकलने के पहले हाथ और जूता को फेनाईल के पानी से धो लेना चाहिये, और छड़ी इत्यादि कुछ हाथ में हो, तो बाहर रख देना चाहिये, क्योंकि छड़ी के नोक से भी बीमारी के कीटाणु दूसरी जगह जा सकते हैं। दाना वगैरह जमीन पर छींट कर नहीं

रखना चाहिये क्योंकि चिड़ियाँ आकर खायेंगी और फिर दूसरी जगह जाकर भी बीमारी फैला सकती हैं।

(३) रोगी जानवरों के अगल बगल के जानवरों को सैकड़े २°/॰ के हिसाब कारबोलिक एसीड के पानी से धो देना चाहिये, खासकर माथा, पैर और खुर वगैरह जो लार से (बीमारी के) सटे हों उनको खूब धो देना चाहिये। उसके बाद सुखा देना चाहिये। ज्यादा कड़ी दवा के पानी से बदन नहीं धोना चाहिये नहीं तो तमाम फून्सी निकलने का डर रहता है। दूध देने वाली गायों के स्तन को सैकड़े ४ °/॰ के हिसाब से बोरीक एसीड के पानी से धोना चाहिये। जो आदमी वहाँ पर रहे उसको यह बात समझा देना चाहिये।

(४) सब जानवरों की देख भाल करना चाहिये, किसी में कुछ लक्षण दीख पड़े तो थरमामेटर द्वारा जांच करना चाहिये, और किसी तरह का शक हो तो, उसे तुरत अलग कर देना चाहिये।

(५) ऊपर लिखे जांच के खतम हो जाने पर, जानवरों के जगह को अच्छी तरह शुद्ध कर देना चाहिये। जानवरों के पांव धोकर दूसरे स्थान में जाने देना चाहिये, पांच सैकड़े कारबोलिक एसीड के जल से अथवा कड़ा फेनाईल के पानी से धोना चाहिये। एक

बड़ा काठ या टीन का बरतन बनाना चाहिये जो चार फीट लम्बा, एक फीट गढ़ा और दो फीट चौड़ा हो, उसी में बीमार जानवरों को पार करना चाहिये, जो बरतन फेनाईल या दूसरी दवा के पानी से भरा हुआ हो। बाद में उस पानी से जानवरों के रहने के स्थान को भी धो सकते हैं।

(६) दिन में दो बार जानवरों को देखना चाहिये। यदि किसी जानवर में कोई लक्षण देखने में आवे तो उसको अलग कर देना चाहिये।

(७) पीने के जल की जगह बदल देनी चाहिये, जहां बीमार जानवर जल पीते हों वहां अच्छे जानवरों को न ले जाना चाहिये।

(८) बीमारी का आरम्भ कहां से हुआ है; इसका पता लगाना चाहिये, यदि कहीं से भूसा लाने के कारण हो तो, भूसा लाना बन्द कर देना चाहिये और कहीं से जानवर बराबर गाड़ी द्वारा आया जाया करते हों जिनसे बिमारी उत्पन्न होने की सम्भावना हो तो रोक देना चाहिये।

(९) रोगी जानवरों के रहने के स्थान को शुद्ध करने के नियमों के अनुसार शुद्ध करना चाहिये। जिसमें खास ध्यान रहे जमीन या गच, नाद, दिवाल, पानी का बरतन, गोबर, रस्सी इत्यादि, जो रोगी जानवरों द्वारा

इस्तैमाल में लाये गये हों, उनको शुद्ध करना। चारा जो रोगी जानवरों के द्वारा खाया गया हो और जो कुछ बचा हो उसे जला देना चाहिये।

चिकित्सा (इलाज) :— रोगी जानवरों की सेवा और सफाई पर ध्यान देने से जानवर जल्द चंगे होते हैं। जिस जमीन पर रोगी खड़ा हो वह स्थान खूब सूखा हुआ और साफ होना चाहिये, और नहीं तो पैर के घाव अधिक बढ़ जायेंगे। सूखे दिनों में मैदान में जानवरों को रखना अच्छा होता है। लेकिन वर्षा-काल में कहीं छाया में रखना उचित है। रोगी के स्थानों पर बराबर फेनाईल का पानी छींटना चाहिये, जिससे मक्खी न रहें।

पैर के जखमों को गर्म पानी में फेनाईल मिलाकर (यानी एक बालटी पानी में एक चौठी) पैर को धोना चाहिये और धोने के बाद अलकतरा और तुतिया का मलहम (१ में १२ भाग) लगा कर पट्टी बान्ध देनी चाहिये।

स्तन को गर्म पानी से धोकर बोरीक मलहम (१ में १०) भाग मिलाकर लगाना चाहिये। दूध दुहने के समय बहुत साव-धानी से दुहना चाहिये।

मुंह धोने के लिये फीटकिरी का पानी १००-१ के हिसाब से या पोटास परमैंगनेट भी उसी वजन से देकर दिन में दो बार धोना चाहिये।

ज्वर के समय जानवरों को सोरा, पानी में १२ औंस मिलाकर दिन में दो बार देना चाहिये।

लुगल सौल्युसन (Lugal Solution) भी इन्टराभेनस दिया जा सकता है, हप्ते में दो बार तक।

चारा बहुत मुलायम देना चाहिये, जैसे दूब या लुसरन घास हो। भात की कांजी जिसमें २ या तीन औंस गुड़ मिलाकर खाने के लिये देना चाहिये, जिसको गेहुं के चोकर से कभी कभी बदल कर थोड़ा नमक मिलाकर देना चाहिये।

पांव में जखम बढ़ जाने पर उसकी इलाज प्रति दिन करनी चाहिये और उसको पट्टी से बांध कर रखना चाहिये।

कोई जानवर मर गया हो तो उसके चमडा को कई एक जगह काट कर गाड़ने के स्थान पर ले जाना चाहिये तथा मुंह और पांव फेनाईल के जल से धो देना चाहिये और सिर को इस प्रकार बान्ध कर ले जाना चाहिये जिसमें मुंह से लार इत्यादि कुछ नहीं गिरे। यदि गाड़ी पर मरीज को लेजाना हो तो घोड़ों या खच्चरों की गाड़ी होन चाहिये।

जब बिमारी खतम हो जाय और रोगी जानवरों के अपने स्थान पर लौटने के पहले, अच्छे हुए जानवरों को, साबुन और पानी से जिसमें कारबोलिक एसिड एक गैलन में १ औंस मिला हो धो देना चाहिये। उनके खुर में ऊपर तक अलकतरा लगाना चाहिये। वहां पर रहने वाले आदमी हाथ पैर दवा के पानी से खूब धोलें और उन्हें कपड़ा साफ करने के लिये दो रोज की छुट्टी देनी चाहिये।

जानवरों के मूल, वालटी इत्यादि शुद्ध करने के नियमों के अनुसार शुद्ध कर लेना चाहिये।

रोगी जानवरों का दूध इस्तेमाल में नहीं लाना चाहिये क्योंकि दुषित होते हैं और खास कर बच्चों को देना मना है ।

१५ दिनों के बाद दूध पीने लायक होता है आखरी बीमार पड़े जानवर के ८ रोज बाद सब जानवरों को अपने स्थान पर लौटा देना चाहिये, और जो अच्छे हालत में हों उनसे काम लेना चाहिये ।

(१) नये खरीद किये हुए जानवरों को तीन सप्ताह तक अलग रखना चाहिये और उनके खुर को बराबर दवा के पानी से धोते रहना चाहिये ।

(२) जब जानवर खरीदे जांय तो जहां पर बीमारी हो वहां के जानवरों को न खरीदें ।

(३) जब जानवर ले जांय तो कोई गांव में न रखें, जहां कुछ बिमारी का शक हो ।

(४) खुर के ऊपर अलकतरा लगा देना चाहिये, जब कहीं पर बिमारी वाले स्थान से जाना हो ।

(५) जब बीमारी गांव में हो जाय तो तुरत जानवरों को अलग हटा देना चाहिये ।

घोड़ों का कण्ठासार (Glanders and Farcy)

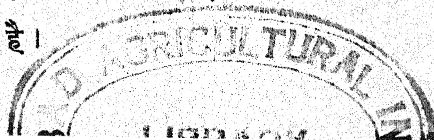
रोग की प्रकृति :— घोड़ों की कण्ठासार भयानक छूत से फैलने वाली रोग है जो गीलटियों में (LiymPhatic System Bacillus Mallai) मेलीआई कीटाणुओं द्वारा होती है;

जिसमें यह गुलठा के तरह का हो जाता है और फेफड़े में भी रोग उत्पन्न करता है, गुलठों के तरह और चमड़ों पर भी गुलठे देखने में आते हैं। जब चमड़े पर गुलठे होते हैं तब उसको फारसी कहते हैं। लेकिन दोनों रोग एक ही कारण से होते हैं।

किन किन जानवरों को यह रोग होता है :— यह बीमारी घोड़े, खच्चर तथा गदहों को होती है, मवेशी, मुर्गो, चूहे को यह रोग नहीं होता है। मनुष्यों को यह रोग सुई द्वारा होता है। बकरे, भेड़ें, बिल्ली और कुत्ते को यह रोग हो सकता है, लेकिन उन जानवरों में यह रोग नहीं देखा जाता है।

बिलायती चूहे तथा खरगोशों में सुई देने से यह रोग हो सकता है जिसमें बिलायती चूहे द्वारा रोग की जांच के लिये इस्तेमाल में लाया जाता है।

कहां कहां यह रोग होता है :— यह हिन्दुस्तान में उतना नहीं होता है जितना पहले होता था। जिसके लिए मेलीन (Mallein) बड़ा धन्यवाद-पात्र है, जिसके द्वारा लक्षण जाहिर होने के कबल बीमारी का पता लगा लिया जाता है। यह रोग बड़े बड़े शहरों जैसे कलकत्ता, बम्बई इत्यादि नगरों में देखा जाता है। १८५७ ई० के सिपाही विद्रोह के पहले यह रोग हिन्दुस्तान में नहीं था। यह रोग अधिकतर बड़ी-बड़ी लड़ाईयों में देखा जाता है, जिसमें विशेष काम रहने के कारण जानवर दुबले हो जाते हैं, और बहुत से जानवरों को एक साथ फिरने से इस रोग के फैलने की सम्भावना अधिक रहती है।



(६४)

आस्ट्रेलिया, टासमानीया और न्यूजीलैंड में अब तक यह बीमारी नहीं देखी गयी है। इस बात के लिए याद रखना चाहिए जब घोड़े इन देशों से मंगाया जाय।

कीटाणु और उसके नियम :—इस बीमारी के कीटाणु को बैसीलस मेलीआई (Bacillus mallai) कहते हैं। जो छोटा पतला डण्टे के समान होता है और जिसकी लम्बाई चौड़ाई खून के कौरपसल (Corpuscle) के १।३ या २।३ के नाप का होता है, और जो राजयक्ष्मा के कीटाणु से मिलता जुलता है लेकिन उससे कुछ मोटा होता है। ये कीटाणु स्पोर पैदा नहीं करते हैं। बहुत आसान दवाओं तथा प्राकृतिक वस्तुओं के द्वारा नष्ट किया जा सकता है। यह १३१° तक गर्म जल द्वारा १० मिनट में और २१२° तक गर्म जल से दो मिनट में नष्ट होता है। कौरोसीभ सब लीमेट १ में ५००० तथा सैकड़े ५ के हिसाब से कारबोलिक एसीड का पानी या सैकड़े १ के हिसाब से पोटास परमैंगनेट द्वारा नष्ट किया जाता है।

नाक से गाढ़े गिरे हुए सर्दी में इसके कीटाणु सूखे हवा तथा मामूली सूर्य के प्रकाश में दो महीने तक जीवित रहते हैं, और पतली सर्दी में ४ से १५ रोज तक। पानी के समान पतले सर्दी में ३ रोज तक जीवित रहते हैं, जल में इस के कीटाणु १५ से २० रोज तक जीवित रहते हैं और १४ से २४ रोज तक यह सड़ नहीं सकता है। बन्द स्तबल में यह तीन या चार महीने तक जीवित रहता है। घास, पुआल या लीद पर बढ़ने का इनका स्वभाव नहीं है।

नीचे लिखे तीन प्रकार से रोग फैलता है।

१ सुई द्वारा।
२ स्वांस द्वारा।
३ चारा द्वारा।

पहला तरीका जो बतलाया गया है वह मनुष्यों में देखा गया है, इसलिए रोगी (बीमार) जानवरों को बहुत सावधानी से छूना चाहिए और जानवरों के फाड़ने तथा लैबोरेटरी में जांच के समय हाथ वगैरह में कहीं कटा हुआ हो, तो हो जाने का डर रहता है।

घोड़ों खच्चरों तथा गदहों में बीमारी स्वांस द्वारा फैलती है जिस स्तबल में इस रोग के किटाणु रहते हैं वहां पर जानवरों को रखने से यह रोग होता है। लेकिन रोग होने का इस से भी अधिक डर चारा तथा जल द्वारा रहता है। जो चारा बीमार जानवरों द्वारा स्पर्श हुआ हो या बीमार जानवरों के बर्त्तन जैसे बालटी इत्यादि के इस्तेमाल से भी रोग बढ़ते हैं।

शरीर में कीटाणु पैठने के बाद सुई द्वारा रोग में उसे ५ रोज में बीमारी का लक्षण देखा जाता है। चारा द्वारा १ से ३ महीने में लक्षण जाहिर होता है। बहुत से दृष्टान्त हैं जिनमें कई महीने से बीमारी फेफड़े में वर्त्तमान रहती है। कमजोरी या किसी और बीमारी के कारण लक्षण शीघ्र देखने

आते हैं। बीमारी धीरे-धीरे होती है और बहुत से जानवर
स रोग के प्रति सहनशक्ति दिखलाते हैं।

जब तक लक्षण प्रगट न हो तब तक रोग से कोई खतरा
हीं होता है।

रोग के लक्षण

१ कण्ठासार :—(Glanders form) एक या दोनों नथनों से सर्दी का गिरना जो कि तेल के स मान चिकना चमकीला और लसलसा हो, सांस के साथ छीक होता हो, नाक में दाने-दाने के समान जख्म होता है तथा जबड़े के नीचे की गिल्टी कड़ी होती है और फूल जाती है। गिल्टी का सूजन उसी तरफ देखा जाता है जिधर के नाक में जख्म रहता है। शरीर में ताप या बोखार रहता है।

खचरों का समूचा चेहरा फूल जाता है, और स्वांस में घरघराहट का शब्द सुन पड़ता है।

२ फारसी (Farcy form) पैर की तथा, गर्दन, सिर या और दूसरे हिस्सों की गीलिटयां (Lyphatic glands and vessels) फूल जाती हैं और देखने में कड़ी दीख पड़ती है, जिनमें बीच-बीच में छोटे-छोटे फोड़े होते हैं जो फूट कर घाव हो जाते हैं और जिससे पीले किसीम के पीब निकलते हैं और यह जख्म भरते जाते हैं।

बीमारी का लक्षण नया या पुराना होने से फरक होता है। कण्ठासार (Glanders) और फारसी (Farcy) एक ही जानवर में हो सकता है। नये रोगी में दोनों नथनों में फोड़े हो जाते हैं, फोड़े छोटे भूरे गुले के समान होते हैं जिसमें लाल रंग के मांस दीख पड़ते हैं, जो फोड़े पसर जाते हैं और उसमें से लाल रक्त के समान पीब गिरते हैं और नथने इतने फूल जाते हैं कि उसके भीतर देखना कठिन हो जाता है, भीतर के मांस बेसी, बहुत लाल और कभी-कभी काले रंग का होता है, खास कर दोनों नथनों के बीच में इसी रंग का पाया जाता है। दोनों नथने के बीच का भाग एक लगातार जख्म द्वारा पीड़ित होता है जिससे नथने में छेद भी हो जाते हैं, छींक अधिक होता है और बोखार भी पूरा रहता है और फारसी भी मौजूद रहता है। सर्दी सिर्फ एक ही नाक से गिरती है।

घोड़ों से अधिक खच्चर या गदहों में इस प्रकार के लक्षण अधिक होते हैं रोग होने के समय बहुत से जानवरों में किसी एक जोड़ में दर्द या कुड़कुड़ी के समान दर्द बहुत रोज तक रहता है।

कण्ठासार के रोगी जानवर बहुत अस्वस्थ और दुबले देखने में लगते हैं।

दूसरे रोगों से मिलान :— यद्यपि कण्ठासार रोग का लक्षण एक बार देख लेने पर भूलता नहीं है तथापि नाक के दूसरे रोगों से फर्क देखना जरूरी है दृष्टान्त के लिये सर्दी या सर्दी के साथ जो

बोखार होता है उससे भी कभी कभी जखम नाक में देखा जाता है लेकिन उस प्रकार के कड़े फोड़े नहीं होते हैं और कण्ठासार के समान इसमें जबड़े के नीचे गिलटी नहीं फूलती हैं।

साईनस की सर्दी में लार, बीमारी वाले दांत या नथने के साईनस से आता है। बीमारी हड्डियों से एक बुरा गन्ध आता है। पुराने बीमारियों में बीमारी की जगह ऊँची हो जाती है।

फारसी, कभी गीलटियों का फूलना (Epizootic Lymphangitis) हर शक वाले बीमारी में मेलीन टेस्ट द्वारा परीक्षा करने पर ठीक पता चल जाता है जिसमें कण्ठासार (Glanders and Farcy) में बोखार इत्यादि होता है और दूसरी बीमारी में नहीं होता है।

विलायती नर खरगोश में इसके कीटाणु का सुई देने से बहुत जोर पोते में सुजन दो या तीन रोज में होता है।

आलू के ऊपर इसके कीटाणु बहुत तेजी से बढ़ते हैं। दो तीन रोज के बाद मधु के बुंदों के समान फैलते हैं जो पीछे भूरे रंग के हो जाते हैं। पर आलू में कोई रंग नहीं आता है। जखम की पीब या नाक की सर्दी में कोई जरूरी नहीं कि कीटाणु मिलें, कभी कभी कुछ मिलते हैं। सलाईड तथा सीसे पर रक्त के निरीक्षण के लिये मिथलीन वुलू से रंगना चाहिये, उसके बाद सैकड़े ४ या ५°/ₒ एसीटीक कुछ सेकेन्डों तक देने से अनु (Cell) इत्यादि को हटा देता है और कीटाणु रंग जाते हैं। ८०० ठोस शक्ति वाली खुर्दबीन इसके लिये आवश्यक है। यदि फाड़ कर

बीमारी से मरे जानवरों की जाँच करनी हो तो, नथनों या फेफड़े को चीर कर देखना चाहिये पहले वाले (नथने) में हर किस्म के जखम, हर अवस्था में पाये जाते हैं पहले दूध के सदृश जो बालू के कणों के समान, फिर मटर के दाने के समान, जाल लूकोसाइट (Lucocytes) का जो पीछे जखम हो जाते हैं, वे जखम चौड़ाई और गहराई में बढ़ते हैं। जखम से नथनों के हड्डियों (बीच वाले) में छेद हो जाते हैं। पुरानी बीमारियों में फेफड़ों में जखम जो गुटके के समान रहते हैं देखने में बड़े बड़े मालूम पड़ते हैं।

फेफड़े में जो दाने देखे जाते हैं पहले बहुत छोटे लाल रंग के शुरू होते हैं जो आगे चल कर दाने के मध्य में भूरे रंग के छोटे मांसपीन्ड के समान दीख पड़ते हैं और फिर आगे बहुत पीले रंग के हो जाते हैं, छाली के समान समूचे गुटके पर दीख पड़ते हैं। कभी कभी फेफड़े में कोई जखम नहीं पाये जाते हैं। ये उन जानवरों में जो मेलीन टेस्ट के निरीक्षण के बाद मारे जाते हैं मिलते हैं। लेकिन सावधानी से खोजने पर गीलटियों में सूजन पाये जाते हैं। गुटके तिल्ली पर भी पाये जाते हैं।

किस प्रकार रोग से बचा जाय:—

(१) सब रोगी जानवरों को मार देना चाहिये। ऐसा कहा जाता है कि ऊँचे स्थान जैसे पहाड़ी स्थान जैसे यूनाईटेड स्टेट ऑफ अमेरिका में जहां पर यह रोग साधारण रूप से रहता है, अच्छा हो जाता है। लेकिन यह रोग हर हालत में लाईलाज है, खास कर

हिन्दुस्तान में जहां पर अधिक गर्मी के कारण कीटाणु शीघ्रता से बढ़ते हैं। इसलिये बीमार जानवरों को मार देना चाहिये। बीमारी को पूरा जानने के लिये मेलीन टेस्ट द्वारा निरीक्षण करना चाहिये।

(२) मरे हुए जानवरों को जला या गाड़ देना चाहिये।

(३) जिनमें बीमारी का शक हो उनको बीमार जानवर के नजदीक नहीं रखना चाहिये।

(४) बीमारी के स्थान को खाली कर देना चाहिये और उस-को शुद्ध करना चाहिये।

(५) पानी के बर्त्तन को अलग रखना चाहिये और देखना चाहिये कि कौन कौन जानवर उसमें पानी पीये हैं।

(६) सब जानवरों को जो वहां पर हों नाक मोलाहज़ा करना चाहिये और जबड़े के नीचे की गिलटी को सूजन के लिये देखना चाहिये। शरीर को खास करके पांव के नीचे, कड़े रस्सी के समान फोड़े यदि हों निरीक्षण करना चाहिये। पहले स्वस्थ जानवरों को उस के बाद उन जानवरों को जिनमें बीमारी हुई हो, और सबसे पीछे तुरत पकड़े जाने वाले जानवरों को देखना चाहिये। नथनों की जांच करने के लिये शीशे को धूप में चमका कर उसी रोशनी से देखने से साफ मालूम पड़ता है। एक बड़े शीशे द्वारा दूसरे मनुष्य से दिखाये जाने पर बहुत जानवरों की परीक्षा सुविधापूर्वक शीघ्र

हो सकती है। ऊंगली और हाथ को सैकड़े ५°।₀ कारबोलिक एसिड के पानी से हर चार जानवरों को देखने के बाद धो लेना चाहिये, और यदि शक वाला हो तो हरेक जानवर के बाद धोना चाहिये।

(७) मेलीन टेस्ट द्वारा जांच:—(क) इसका व्यवहार सब जानवरों में बीमारी के स्थान पर करना चाहिये। (ख) १४ रोज के बाद फिर दुहराया जा सकता है। पहले सुई से पता चल जाता है कि और कोई बीमार जानवर है या नहीं। दूसरे सुई में यदि कोई शक वाला रहा तो बीमारी उभड़ पड़ती है।

मैलीन:—मैलीन एक ऐसा पदार्थ है जो कण्ठासार के कीटाणुओं को फीलटर करने के बाद बनाया जाता है और जिसको कण्ठासार से बीमार पड़े जानवरों को चमड़े के नीचे सुई द्वारा देने से, सुई की जगह पर सूजन और शरीर में ताप का चढ़ जाना देखा जाता है। जो जानवर बीमार नहीं हैं उनमें कुछ नहीं पाया जाता है।

हिन्दुस्तान के लिये मेलीन टेस्ट के कुछ नियम:—एक खौलते हुए पानी में उबाला हुआ सुई देने वाली पीचकारी से सुई देनी चाहिये। जिसको (पिचकारी) सुई देने के पहले और बाद भी उबाल देना चाहिये। सुई ६ से ८ बजे तक शाम में देना

चाहिये, जब दिन की गर्मी खतम हो जाय। सुई देने के पहले बोखार देखना चाहिये और उसको लिख कर रखना चाहिये। सिर और चेरु के बीच गर्दन पर से पाँचे इंच दाहिने तरफ बाल कैंची से छाँट देने पर, बुरुस द्वारा झाड़ देना चाहिये, तब उस स्थान को हलके फेनाईल या कारबोलीक एसीड के पानी से धो देना चाहिये, जिससे अधिक चमड़ा भींगे नहीं। उसके बाद १८ बून्द यानी एक खुराक उस बाल छाँटे हुये स्थान के बीच में सुई द्वारा देना चाहिये, ख्याल रहना चाहिये कि सुई ठीक चमड़े के नीचे पड़े, किसी हालत में चमड़े में या मांस में सुई नहीं पड़ना चाहिये। फिर ६ से ८ बजे तक भोर में बुखार देखना चाहिये और उसको लिख कर रखना चाहिये, कोई सूजन सुई के जगह में हो तो निरीक्षण करना चाहिये। फिर शाम को ६ से ८ बजे तक इसी कार्य को करना चाहिये। फिर सबेरे और शाम को सूजन देखना और बोखार देखना चाहिये। ४८ घण्टे उपरान्त यह निरीक्षण खतम होता है। खच्चरों में इस की मात्रा दुगना देना चाहिये।

(१) कण्ठासार के रोगियों में मेलीन देने से २४ घण्टे के अन्दर सुई के स्थान पर सूजन हो जाता है जो ३६ घण्टे तक बढ़ता है तथा तीन या चार रोज तक सुई देने के बाद रहता है। सूजन कड़ा जिसका किनारा उठा हुआ होता है जो छूने में दुखदायी और जिसकी लम्बाई चौड़ाई ५ इंच से १० इंच तक होती है। इसके अलावा १०४° तक बुखार होता है।

२) एक बड़ी दुखदायक सूजन जो धीरे-धीरे कम होती जाती है और जिसमें बुखार नहीं भी हो और यदि १०४° तक रहे, तो इससे रोग रहने का सन्देह समझना चाहिये।

(३) जिस जानवर में यह रोग नहीं होता है, उसमें सूजन नहीं होता है और यदि सूजन हो भी तो छोटा होता है, जो २४ घण्टे में कम हो जाता है और नहीं तो ३६ घण्टे में तो जरूर कम हो जाता है।

जिन जानवरों में पहले नियम के मोताबिक सूजन और ताप हो उनको मार देना चाहिये। जिनमें थोड़ा सूजन या बुखार १०४° तक हो, उनको दूसरे (इनजेक्सन) सुई के लिये रखना चाहिये। फिर १४ रोज के बाद दूसरी सुई द्वारा जांच करनी चाहिये। यदि ऊपर लिखे (१) नियम के अनुसार सूजन इत्यादि हो तो मार डालना चाहिये। यदि दूसरे बार भी शक वाला सूजन हो तो, फिर १४ रोज बाद सुई द्वारा जांच करनी चाहिये। यदि तीसरे सुई में भी शक हो तो, जानवर को मार डालना चाहिये, यदि कोई सूजन न हो तो अपने पुराने स्थान पर लौटा देना चाहिये। कभी-कभी शक वाले रोगियों में अपनी तजुरबा द्वारा काम किया जा सकता है। दोबारे तेबारे सुई देने पर शक वाले जानवरों को छोड़ना नहीं चाहिये बल्कि मार देना चाहिये। शक वाले जानवरों में दुगना खुराक ईस्तेमाल करना चाहिये और खास कर खच्चरों में।

दूसरा तरीका जो बहुत आसान और ठीक है, वह है आँख के पर्दे में सुई देना (Intra derma-palpebral method) इस नियम में दो या तीन बून्द खास किस्म का बना हुआ मेलीन आंख के नीचले परदे में आधा ईञ्च से कम भीतर वाले आँख के कोने के तरफ देना चाहिये। इसके देने के बाद यदि आँख की ढक्कन फूल जाय जो, ४ से ६ घण्टे तक में होता है और कद में भी कुछ बड़ा होता जाता है, ४८ घण्टे तक या कुछ दिनों तक रहता है। इसके अलावे आँख के अगल बगल में सूजन हो जाता है जिससे आँख बन्द हो जाती है और आँख से खास कर भीतर वाले कोने से कीची आता है, और आंख के भीतर सूजन हो जाता है।

उन जानवरों में जिन में कण्ठासार रोग नहीं होता है, उनमें कुछ नहीं होता है। कभी कभी किसी किसी में नीचले ढक्कन में सूजन होता है सूई देने के कुछ ही घण्टों के अन्दर यह देखने में आता है जो बिल्कुल २४ घण्टे के भीतर गायब हो जाता है, इसमें आँख से कीची इत्यादि नहीं आता है।

यदि किसी जानवर में कुछ शुभा हो तो उसको चमड़े के नीचे सूई द्वारा जांच करनी चाहिये। ऊपर बताया हुआ तरीका बहुत आसान है और इसमें २४ घण्टे के बाद बीमारी होने या न होने का पता लग जाता है। जहां बहुत से जानवरों को देखना हो वहां इस तरीके से आसानी होती है।

एक तीसरा तरीका और है, जिसको चक्षु नियम (Opthalmic method) कहते हैं। जिसमें मेलीन आँख के ऊपर

वाले परदे पर दिया जाता है इसमें भी ऊपर बताये मोताबिक असर होता है, लेकिन यह नियम ठीक नहीं है।

एगलुटीनेसन और कोमपलीमेन्ट फीकसेसन टेस्ट द्वारा इस बीमारी की जांच की जा सकती है।

शुद्ध करनाः—शुद्ध करने के नियमों में बताये गये अनुसार शुद्ध करना चाहिये। इसके शुद्ध करने में पूरा ध्यान इन वस्तुओं पर देना चाहिये जैसे नाद, तोवड़ा, नोखता, रस्सी, गच्च या जमीन, बीछावन, बालटी या जल रखने के स्थान को या और भी जो वस्तु नाक के सर्दी या जखम के पीब से मिश्रित हुआ हो। इसके कीटाणु स्पोर पैदा नहीं करते इसलिये यदि एक बार अच्छी तरह शुद्ध किया जाय, तो फिर जरुरत नहीं होता है।

कोई चारा या घास नाद में हो या बीछावन, जो बीमार जानवर द्वारा इस्तेमाल में लाया गया हो और जानवर, जो अगल बगल में हों उनके बीछावन इत्यादि को जला देना चाहिये। नादों को एकदम उखाड़ देना चाहिये और नहीं तो उसको ठिकाने से खखोर कर खौलते हुये जल से धो देना चाहिये उसके बाद शुद्ध करने वाली दवा का पानी इस्तेमाल करना चाहिये। दीवाल और पायों को भी उसी प्रकार शुद्ध करनी चाहिये।

तोवड़ा, नोखता, रस्सी, कपड़े और कोई भी वैसी चीज जो रोगी के इस्तेमाल में रहा हो उसको भी जला देना उचित है। अगल बगल के जानवरों के कपड़े को भी शुद्ध कर देना चाहिये और किसी तरह की शंका हो तो जला देना चाहिये।

शुद्ध करने के बाद उस स्थान क १४ रोज तक खोल कर छोड़ देना चाहिये फिर उसके बाद उसमें जानवर को लाना चाहिये। साइस और उसके कपड़े को शुद्ध करने में भूलना नहीं चाहिये।

पीने के स्थान को शुद्ध करना चाहिये और शुद्ध करने के बाद धूप में छोड़ देना चाहिये (१४ रोज) उन १४ रोज में उसको खाली रखना चाहिये और पानी से भरना नहीं चाहिये।

कब बीमारी की समाप्ति समझनी चाहिये:—बगैर मेलीन के उस जगह को रोग से रहित कदापि न समझना चाहिये। क्योंकि कई एक महीनों बाद भी यह रोग होने का डर रहता है। सब जानवरों तथा शंकावाले जानवरों में जब मेलीन पड़ गया, फिर दुबारा सुई दिया गया और बीमारी नहीं ठहरी तब बीमारी का अन्त समझना चाहिये। जानवरों का काम दो रोज तक बन्द कर देना चाहिये।

रोग रोकने के नियम:—कुल घोड़े या खच्चर जो दूसरे देशों से आये हों जहाँ इस प्रकार की बीमारी फैलती हो, वैसे जानवरों को अलग रख कर मेलीन की सुई से परीक्षा करनी चाहिये।

लड़ाई (War) के दिनों में इस रोग के होने का डर अधिक रहता है, इसलिये जो डाक्टर उस समय लड़ाई के कामों में हों उनको इसके लिये पूरी निगरानी रखनी चाहिये।

गरगटीया या कण्ठा

(Hacmorrhagic Septicaemia)

इसके भिन्न-भिन्न नाम हैं :—इसको गरगटीया, या गिरगीटीया कहीं कण्ठा, कहीं कण्ठासार, कहीं घोट्ट और कहीं गलघोट्ट कहते हैं।

स्वभाव :—यह खून की बीमारी है जो कोक्को बैसीलस के द्वारा होता है तथा अचानक और बहुत शीघ्र फैलने वाला होता है और रोगी जानवर बहुत जल्द मरते हैं। इसमें बहुत बोखार रहता है, और कण्ठ, जीभ, चमड़ा, मांस पेसियों में, फेफड़ा, फेफड़े के परदा कमल, पेट और आँत बहुत फूल जाता है।

कहां-कहां और किन-किन जानवरों को यह बीमारी होती है :—यह रोग अधिकतर भैंस को और मवेशियों को होता है। यह खास कर भैंस को होता है और गाय बैल को कम होता है। घोड़ों में यह रोग शायद ही कभी देखा जाता है। ज्यादा, बच्चे जानवरों को होता है, हालांकि बड़े जानवरों को भी यह बीमारी होती है। भैंस, गाय, बैल, घोड़े, भेंड़, बकरे, शुकर, ऊँट, बिलायती खरगोश, बिलायती चूहे, देशी चूहे तथा कबूतरों में भी यह रोग सुई द्वारा होता है। भेंड़ और बकरे को इस रोग के प्रति बहुत सहनशक्ति होती है। कुत्ते, मुर्गी और मनुष्यों को यह रोग नहीं होता है।

यह बीमारी अधिक नीचे भूमि में होती है। यह बीमारी खासकर वर्षा के दिनों तथा वर्षा के बाद तथा जाड़े के दिनों में वर्षा होने से भी उत्पन्न होती है।

कीटाणु और उसके स्वभाव :—इसका कीटाणु छोटा मोटा, गोलाकार, पासचुरेला के ऐसा होता है। यह प्रायः २ यू० लम्बा और ४ से ५ यू० चौड़ा होता है। यह बीमार जानवरों के हरेक भीतरी अंगों में तथा उन अंगों के रसों में पाया जाता है। खून में कभी अकेला और कभी जोड़ा भी पाया जाता है। हरेक कीटाणु एक परदे द्वारा ढंका हुआ रहता है। हर प्रकार के एनीलीन रंग से बहुत शीघ्र रंगा जाता है जिसमें रंग इसके किनारे पर मालूम होता है और बीच में साफ दिखता है। लीडफर का बनाया हुआ मीथलीन बुलु का पानी या सैकड़े १ के हिसाब से कारबलफूकसीन का सुसुम पानी या लीसमन मिला हुआ रहने से वाईपोलर रंग शीघ्र चढ़ता है।

जांच के बाद यह मालूम हुआ है कि इस रोग के कीटाणु शरीर के बाहर बहुत थोड़ी देर तक ठहरते हैं। मामूली शुद्ध करने वाली दवा से इसका बहुत शीघ्र नाश होता है। यह सुखाने से बहुत आसानी से मरता है। सूर्य के प्रकाश से यह आधे घण्टे में नष्ट हो जाता है और १५८° की गर्मी इसको १० मिनट में नष्ट करती है।

जब यह कीटाणु शरीरमें पैठता है तो बहुत शीघ्रता से बढ़ता है, और भयानक विष पैदा करता है। बहुत से कीटाणु बीमार जानवर के पेशाब द्वारा बाहर होते हैं।

किस प्रकार यह बीमारी होती है :— यह ठीक मालूम नहीं है कि इस रोग के कीटाणु शरीर में किस प्रकार जाते हैं। लेकिन जहां तक समझा जाता है इस रोग के कीटाणु धरती, पानी और घासों में रहते हैं। इसलिये बोध होता है कि चारा के द्वारा यह रोग हो सकता है। दूसरा जरिया जो कीटाणुओं के पैठने का है, वह सुई द्वारा है, मक्खियों के काटने से यह अधिक सम्भव हो सकता है।

बर्षा के बाद जब मक्खियां बहुत होती हैं, उसी समय यह रोग अधिक होता है।

रोग के चिन्ह या लक्षण :— पहले पहल देखने में आता है कि जानवर मरा पड़ा है। एक ब एक बीमार पड़ना और कुछ घण्टों के बाद मर जाना इस रोग का प्रधान लक्षण है।

नीचे लिखे हुये लक्षण भैंसों में पाये जाते हैं :—बुखार १०७° से लेकर ११०° तक होता है, जानवर बहुत सुस्त रहता है गर्म दुखदायक कड़ा सूजन, जानवर के लोर या झालर में या कण्ठ के ऊपर या दोनों जबड़ों के बीच में पाया जाता है। यह सूजन छोटा बड़ा सब प्रकार का होता है लेकिन अधिकतर बड़ा होता है और दबाने से दबता नहीं है। मुंह से लार औ नाक से झोझा गिरता है। मसूड़े या नाक के परदे देखने मे गाढ़े लाल रंग के होते हैं। नाड़ी की गति तेज होती है स्वांस में कठिनाई होती है और स्वांस रुकने का डर होता है

नथने फैले हुए रहते हैं, पेट में दर्द होता है और किसी-किसी में पतला दस्त भी होता है पाखाने के समय जानवर अधिक कूंखता है। जानवर कमजोरी से जमीन पर पड़ा रहता है और अपने माथे को कभी-कभी पेट के तरफ घुमाता है और २४ घण्टे में मृत्यु हो जाती है।

जानवरों को फाड़ने पर नीचे लिखे लक्षण पाये जाते हैं:—चमड़े के नीचे पानी के समान तथा जमे हुये रक्त के सदृश पाये जाते हैं, जिसका रंग कभी-कभी रक्त के सदृश होता है। जानवर का चौथा पेट और आंत में बहुत सूजन होता है जिसमें मांस पेशियों का रंग भुरापन लाल होता है और उसी रंग के चकते बहुत से वहाँ देखने में आते हैं और किसी-किसी जगह वे चकते छुटे हुये होते हैं जहाँ बड़े-बड़े घाव देखने में आते हैं। उनके भीतर रक्त देखने में आता है और शायद ही कभी उसमें चारा पाया जाता है। मैसन्ट्रीक गरनथीया (Mesentric glands) कुछ बड़े हो जाते हैं और पेट के नीचले परदे में जल का भाग अधिक पाया जाता है। तील्ली और रक्त इत्यादि में कोई रद्द बदल नहीं होती है। मूत्रासय कुछ बड़ा हो जाता है और पेशाब का रंग कुछ गाढ़ा पीला होता है।

कमल के ऊपर का तीसरा परदा का फूल जाना एक प्रधान लक्षणों में से है, दूसरा परदा भी फूला हुआ पाया जाता है, और पहले परदे के अन्दर कुछ विशेष जल देखने में आता है।

फेफड़े साधारणत वैसे ही होते हैं जैसा होना चाहिये। ठीक इसी रोग की भाँति घोड़े और खच्चरों में भी पाया जाता है जिसके लक्षण १०५° F. बुखार का होना, सुस्त रहना, आँख लाल रहना, स्वांस में शीघ्रता होना, नाड़ी बहुत कमजोर चलना, नाक से खून के रंग का पानी आना, पेट में दर्द होना, और शीघ्र मृत्यु होना पाया गया है।

जानवरों को फाड़ने पर नीचे लिखे लक्षण देखे गये हैं:—फेफड़े के ऊपर का परदा अथवा पेट के ऊपर के परदे में सूजन हो जाती है और उस पर खून जमा हुआ दीख पड़ता है। बड़ी आंत में सूजन हो जाती है, और कुछ रक्त भी देखने में आता है।

किन किन बीमारियों से इसका मिलान होता है:—पील्ही बीमारी के कीटाणु के सीरे कटे हुये होते हैं, तील्ली इसमें बड़े होते हैं, और रक्त इसमें काला हो जाता है, जो गिरगीटीया में नहीं पाया जाता है।

डेंगहा में सूजन अजीब तरह का होता है, जो ठण्ढा, दुखहीन और करकर आवाज करता है।

चेचक की बीमारी में कण्ठ का फूलना नहीं होता है तथा मुंह का जख्म गीरगीटीया में नहीं होता है।

किसी हालत में खून का खुर्दबीन द्वारा जाँच आवश्यक है, जिसमें बाईपोलार इस्टेनींग (Bipolar staining) के कीटाणु अधिक पाये जाते हैं।

रोग के निश्चय के लिये, खरगोशों में सुई देने उनमें हवा की नली में सूजन हो जाता है, और बहुत शीघ्र मृत्यु हो जाती है।

इस बीमारी से बचने का उपाय:—१० दिनों के बाद रोग का अन्त समझना चाहिये। इस बीमारी से प्रायः १००-८०°।० से १००°।०तक की मृत्यु होती है, जो बीमारी से पकड़े जाते हैं।

१ इस बीमारी से मरे जानवरों को गाड़ या जला देना चाहिये।

२ यदि जानवरों की हालत हटाने लायक हो तो जितनी जल्दी हो सके अलग हटा देना चाहिये।

३ और जो जानवर उस स्थान पर हो सबों को अलग हटा देना जाहिये।

४ बीमारी के स्थान को तुरन्त बदल देना चाहिये, नये बीमार पड़ जाने पर जगह को बदलते रहना चाहिये।

५ जानवरों के चारा को, जहां पर बीमार जानवर मरा हो उस स्थान को, ठिकाने से शुद्ध करने के नियमों के अनुसार शुद्ध कर देना चाहिये। जमीन और गच के ऊपर पूरा ध्यान देना चाहिये और इस बात का ख्याल रखना चाहिये कि पेशाब और गोबर इसके संक्रामक होते हैं। रोगी जानवरों के गोबर, बीछावन और बचे हुये चारा को जला देना चाहिये। नाद और दूसरे खाने के बर्त्तनों को भी न छोड़ना चाहिये। दीवाल या कच्चे जमीन को भी शुद्ध कर देना चाहिये।

६ बीमारी के समय जानवरों को सीरम द्वारा टीका लगाना चाहिये, जिसका असर १५ दिनों तक रहता है। जिसकी मात्रा १५ सी. सी. है और इस सीरम (Hacmorrhagic septaecimia Serum) को बीमार जानवर को भी देने से फायदा करता है जिसकी मात्रा ५० से ६० सी.सी. है। गीरगीटीया का भैकसीन (Haemorrhagic septacmia Vaccine) गांव में बीमारी होने के एक महीना कबल देने से इसका असर एक मौसम तक रहता है।

७ चिकित्सा :—बीमार जानवर कभी-कभी इतनी जल्दी मर जाता है कि इलाज करने का मौका नहीं मिलता है। यदि बीमारी होते के साथ इलाज शुरू किया जाय तो नीचे लिखी औषधियों का प्रयोग किया जा सकता है।

कारबोलिक एसीड भीतर खाने के लिये एक ड्राम तक बड़े जानवरों को सत्तू में मिलाकर दिया जा सकता है।

साईलीन आधा औंस से एक औंस तक आधा बोतल सुसुम जल में मिलाकर चार-चार घण्टे पर देना चाहिये।

पोटास परमैंगनेट एक ड्राम और कपूर दो ड्राम से आधा औंस तक छोआ गुड़ में मिलाकर दिन में दो बार देने से फायदा होता है।

लुगल सल्युसन (Lugal Solution) १० सी.सी. खून की नली में सुई द्वारा देने से लाभ होता है। फूले हुये स्थानोंको खूब गर्म पानी से कम्बल के टुकड़े द्वारा सेंकना चाहिये। (I. C. I. Company) Sulphameza Thine Sodium Solution 33⅓%. 15 C.C. Per C.W.T. Body weight injection, 1st day Followed by ½ this quantity daily for not more than 5 days.

८ किसी किसी चारागाह में चरने से यह रोग हो जाया करता है, इसलिये जहां शंका हो उस चारागाह को बदल देना चाहिये।

९ प्रायः दस रोज के बाद बीमारी खतम हो जाती है, लेकिन जिस स्थान पर बीमारी हुई हो उसको एक महीने तक खाली रखना चाहिये।

M.B.693 one grain per pound body weight गुड़ के साथ दिन में दो बार या एक बार रोग की प्रकृति अनुसार दी जाती है।

सर्दी (INFLUENZA)

इसके कई एक नाम हैं:—इसको कहीं सर्दी, कहीं सुर्ख आँख, कहीं स्तबल की बुखार कहते हैं।

स्वभावः—सर्दी बहुत शीघ्रता से फैलने वाला संक्रामक बुखार है जो खासकर घोड़ों को होता है। जिसमें बहुतों कमजोरी होती है और बीमारी के प्रभाव अधिक फेफड़े और अमाशय तथा आँखों और चमड़े के नीचे जोड़ों तथा रोग के जड़ में पाया जाता है।

कीटाणु और उनके शरीर में पैठने के नियमः—बहुत से कीटाणुओं को इस रोग का जिम्मेवार कई एक बार लगाया गया है। जिसमें एक पासचुरेला का परिवार भी है। लेकिन कोई भी इसमें से ठीक नहीं जंचा कि किस के वजह से यह रोग होता है। लेकिन अब यह मालूम हो गया है कि इस बीमारी के कीटाणु बीमार जानबरों के रक्त में तथा दूसरे शरीर के रसों में पाये जाते हैं।

यह रोग एक जानवर से दूसरे जानवरों को होता है और बीमार जानवरों के स्पर्श से जो जल या चारा दुषित हो जाते हैं उन्हीं से यह रोग होता है। किसी स्तबल में नये खरीद किये हुये जानवरों के द्वारा भी यह रोग फैलता है। यह बीमारी गावों के बजाय शहरों में अधिक पायी जाती है। घोड़े के सौदागरों के स्तबल शायद ही कभी इस रोग से वंचित रहते हैं। बच्चे जानवरों को यह रोग अधिक होता है हालांकि बड़े जानवर भी बीमारी के समय इस रोग से वंचित नहीं रह सकते हैं।

कीटाणु शरीर में पैठने पर १ से ३ रोज के अन्दर रोग के लक्षण प्रगट करते हैं।

रोग के लक्षणः—एक ब एक जानवर अधिक संख्या में बीमार पड़ने लगते हैं, कमजोरी अधिक हो जाती है। बोखार अधिक हो जाता है, आँखों के ढक्कन फूल जाते हैं, और आँख से आँसू गिरता हैं, आँख के परदे तथा देखे जाने लायक परदे भूरे लाल रंग के मालूम पड़ते हैं, नाक से सर्दी गिरती है, जो पहले जल के समान होती है, और पीछे गाढ़ी हो जाती है। कुछ पेट की भी गड़बड़ी हो जाती है और पेशाब थोड़ा और हल्दी के रंग का होता है।

बीमारी में हरेक भीतरी अंगों पर नीचे लिखे लक्षण दिखायी देते हैं:—

(क) सर्दी का होना। (ख) छाती के 'अन्दर रोग का होना, जिसमें फेफड़े का सूजन तथा फेफड़े के परदे का सूजन कमल का सूजन, फेफड़े का सूजन जो नीचले सीरे में होता है। (ग) अमाशयों के अन्दर जिसमें आँखों में हवा यानी गैस का भर जाना, लीद कम और कड़ा करना, पेट में दर्द रहना, और कभी-कभी पतला दस्त होना। (घ) रगों के अन्दर रोगों का होना जिसमें बहुत कमजोरी रहती है और चलने में तलमलाहट रहती है। (ङ) आंखों में सूजन होना और आंसुओं का लगातार गिरना और आँख के परदे का कुछ बाहर दीखना। (च) पैरों या छाती या पेटों के अन्दर सूजन पाया जाना। (छ) मांसों, जोड़ों के अन्दर बात रोग जाहिर होना। इस प्रकार के लक्षण एक-एक जानवरों में भिन्न-भिन्न तरह के देखने में आवेंगे।

यह रोग बहुत साधारण है इससे मृत्यु कम होती है। गन्दगी से बीमारी जल्दी आराम नहीं होती है।

बीमारी से बचने का उपाय :—

१ (क) अच्छे और बीमार जानवरों को अलग-अलग रखना चाहिये। बीमार जानवरों के लिये एक स्थान अलग नियत करना चाहिये। रोगियों को खुले मैदान या गाछों के नीचे भी रख सकते हैं।

(ख) बीमार जानवरों के लिये अलग-अलग मनुष्य रखना चाहिये, जो कभी अच्छे जानवरों के पास न आवें।

(ग) सब कूड़ों को जला देना चाहिये। घोड़ों के लिये कम से कम एक महीने तक आराम हो जाने के बाद तक के कूड़े को जला देना चाहिये।

(घ) यदि बीमार जानवरों के स्थान गन्दे हो गये हों, तो तीन हफ्ते के बाद उस जगह को बदल देना चाहिये।

(ङ) स्तबलों को उनके दीवाल और पायों को शुद्ध करने के नियमों के अनुसार शुद्ध कर देना चाहिये। पानी का बर्तन और खाने के बर्तन को भी शुद्ध कर देना चाहिये। बीमार जानवरों के कपड़े को भी शुद्ध करना भूलना नहीं चाहिये।

२ इसके कीटाणु मजबूत होते हैं और चंगे हुये जानवर बहुत दिन तक बीमारी के कीटाणुओं को ढोते हैं। सफाई से बीमारी शीघ्र आराम होती है और जानवर का नुकसान नहीं होता है।

चिकित्साः—यह बीमारी स्वभावतः अच्छी होती जाती है। इसमें दवा के बनिस्बत सफाई तथा खाने पर अधिक ध्यान की आवश्यकता है। जानवरों को पूरा आराम देना चाहिये और साफ हवा बहुत जरुरी है। जानवरों को छांह में रखना बहुत जरुरी है। जानवरों को कपड़ों से ढककर गर्म रखना चाहिये और खाना दस्तावर देना चाहिये। ठण्ढा पानी जितना दरकार हो देना चाहिये जिसमें सोरा कभ कभी मिलाकर देना चाहिये। दस्त की दवा कम देनी चाहिये, और कड़ी दस्तावर दवा नहीं देनी चाहिये और पाखाने में कुछ कब्जीयत हो, तो मैगसलफ चार औंस के अन्दाज सबेरे शाम को या आधा बोतल तीसी के तेल देना चाहिये। बोखार की दवा से कम लाभ देखा जाता है। जहां भूख खूब मन्दा हो गया हो वहां दूध देना चाहिये, और लुसरन, गजरा और जई को गर्म पानी में धोकर देना चाहिये। सेवा शुश्रुसा इस रोग में अधिक लाभदायक होता है। बच्चे हुए दाने को जला देना चाहिये और जहां पर जानवर खड़ा रहता हो उस स्थान को नित्य फेनाईल के पानी से धो देना चाहिये।

इस रोग से बीमार पड़े जानवर शीघ्र तन्दुरुस्त नहीं होते हैं इसलिये इनको कामों में अति शीघ्र न लगाना चाहिये। यदि तन्दुरुस्त होने के कबल इनको काम में लगाया जाय तो रोरींग (Roaring) होने की अधिक सम्भावना है।

नये जानवरों द्वारा यह रोग अस्तबल में फैलता है इस लिये अच्छा हो कि नये जानवरों को कम से कम एक मास पुराने जानवरों से अलग रखना चाहिये।

अब तक कोई सीरम या भैकसीन कोई ऐसा अच्छा नहीं निकला है जिसके द्वारा लाभ हो। पीने के जल में कोलोरीन अथवा पोटासीयम परमागनेट अच्छे जानवरों को महामारी के समय देने से बीमारी होने की सम्भावना नहीं रहती है।

झूलींग (JHOOLING)

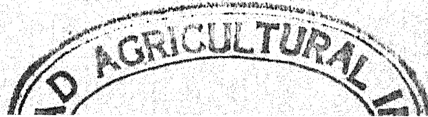
इनके कई एक नाम हैं:—झूलक, झूलना।

रोग के स्वभाव:—झूलींग एक संक्रामक ऊंटों की बीमारी है जिससे चमड़े और चमड़े के नीचले परदों पर,बतौरा हो जाता है, जो पक कर फूट जाता है, और बदन पर कच्चे चकते, जखम के समान हो जाते हैं।

किन किन जानवरों को यह रोग होता है:—यह रोग खासकर ऊंटों को होता है। स्वस्थ जानवर बीमार जानवरों के निकट रहने से बीमार पड़ते हैं। बीमार जानवर अपने जखम को जब स्वस्थ जानवरों के कटे या छीले अंगों पर रगड़ते हैं तो यह बीमारी उन जानवरों में उत्पन्न होती है।

किन किन जगहों में होती है:—यह बीमारी साधारणत: हिन्दुस्तान में होती है, और अधिकतर पंजाब में होती है, और ठण्ढे में अधिक होती है।

कीटाणु और उसके ढंग:—इसके कीटाणु का अभी पता नहीं लगा है, जखम से पीब लेकर देखने से पीब के कीटाणु



(Strepto Cocei) पाये जाते हैं, यह कीटाणु जखम के उपरले परदे पर अधिक पाये जाते हैं। स्वभावतः यह रोग सुई द्वारा फैलता है।

रोग का लक्षण:—इस रोग का पहला लक्षण यह है कि, गर्म, कड़ा और दुखदायक सूजन होता है जो १" से ५" ईंच तक की लम्बाई चौड़ाई का होता है जो शरीर के किसी अंगों में हो सकता है लेकिन अधिक गर्दन पर, चूतर पर, और पेट पर होता है, कुछ रोज के बाद सूजन में कुछ कलकलाहट पैदा होता है, और ऊँट उसको दांत से नोच डालता है, जिससे चौड़ा जखम हो जाता है। उसके बाद पक जाता है और फिर जखम भर जाता है जिस तरह का जखम होता है उतना ही समय उसको अच्छा होने में लगता है। जखम का दाग एक उजला चकते की तरह रह जाता है, जो पाँच छः महीने में आराम होता है। जखम बहुत से होते हैं जिससे जानवर बहुत कमजोर हो जाता है। इस रोग के जखम सिर्फ बाहर ही देखने में आते हैं, और भीतर में जखम नहीं पाये जाते हैं।

रोग की चिकित्सा:—इस रोग की कोई खाश दवा नहीं है। जो जखम जैसा हो, उसके साथ वैसा ही इलाज होना चाहिये। पके जखमों को चिर देना चाहिये।

नीचे लिखे मोताबिक इलाज करनी चाहिये:—लाल मलहम [Beniodide of mercury] फोड़े पर लगा देना चाहिये। फिर तीन रोज के बाद उसको साबुन पानी से धो डालना चाहिये।

जखम को उस समय चीरना नहीं चाहिये तथा उसपर पोटास परमैगनेट की सफूफ करके घाव पर रगड़ देना चाहिये। इस तरह से चार चार रोज बाद करके तीन वार लगाना चाहिये।

दूसरी इलाज यह है कि घाव को चीर कर उसमें कच्चा फेनाइल या कारबोलीक एसीड लगाना चाहिये। उसके दूसरे रोज घाव को अच्छी तरह से धो कर ब्लैकवास (Blackwash) जिसमें ३० ग्रेन कैलोमेल १।२ औंस गलेसरीन और १।४ औंस ट्रैगाकैन्थ और चूने का पानी १० औंस मिलाकर लोसन बना लेना चाहिये।

बीमारी को रोकने का उपाय:—बीमारी वाले जानवर को अलग हटा देना चाहिये। स्वस्थ्य जानवरों को ठिकाने से मोलाहजा करना चाहिये, अगर किसी में बिमारी का शक हो तो उसे हटा देना चाहिये।

रहने के स्थानों को, पत्तान इत्यादि सबों को शुद्ध कर देना चाहिये। बचे हुए चारों को जला देना चाहिये और बीमार जानवर और उसके उटवान को भी अलग कर देना चाहिये। बीमारी वाले जानवर का जखम एकदम अलग धोना चाहिये, घाव की रूई और पीब इत्यादि को जला देनी चाहिये। जखम धोने वाला पुरुष अपना हाथ ठिकाने से धो ले, नहीं तो उससे दूसरे जानवरों को भी बीमारी हो सकती है। नये जानवरों को ठीक से देखभाल कर पुराने जानवरों के साथ रखना चाहिये।

आंत की पुरानी सूजन (Johne's Disease)

रोग का स्वभाव:—यह रोग पुरानी संग्रहणी है, जो खासकर पशुओं में देखा जाता है। लेकिन भेंड़, बकरे और हिरणों में भी

पाया जाता है। इसके कीटाणु तेजाब (Acid fast Bacillus) द्वारा रंगे जाते हैं, जो राजयक्ष्मा रोग के कीटाणु से मिलते हैं।

यह रोग कहाँ कहाँ पर होता है:—यह रोग सारे संसार में होता है। हाल में यह बीमारी उत्तरी और दक्षिणी हिन्दुस्तान के गौशाले में पायी गयी है। विलायत में यह बीमारी अधिक होती है। राजयक्ष्मा रोग के बाद इसी को भयंकर माना जाता है।

कीटाणु और उसके स्वभाव:—यह बीमारी पहले पहल जोन फरोथीन्गहम साहब द्वारा १८६५ ई० में पहचानी गयी। इसके कीटाणु डण्डे के आकार के होते हैं, जो ५ यू० लम्बे और १ यू० चौड़े होते हैं। ये कीटाणु चढ़ाव उतराव और थोड़े टेढ़े डण्टे के समान होते हैं। इन्हें राजयक्ष्मा के कीटाणु के समान तेजाब (Acid Fast Bacillus) द्वारा रंगा जाता है।

रोगियों के गोबर द्वारा स्पर्श तथा रोगियों द्वारा स्पर्श हुए चारा के खाने से यह बीमारी होती है। इस कीटाणु के रहने के स्थान आँतों के पर्दों में होता है और गोबर के साथ ये बहुत बाहर गिरते हैं, जिसके कारण जमीन संक्रामक हो जाता है।

रोग के लक्षण:—यह बीमारी बहुत धीरे धीरे बढ़ती है। बीमार जानवर अपना बल बहुत दिन तक बनाये रखता है और कोई लक्षण जाहिर नहीं करता है। इसी कारण से जब बहुत जानवर इस रोग से ग्रसित हो जाते हैं, तब बीमारी का पता लगता है।

पहला लक्षण जो देखने में आता है वह है जानवरों का बहुत दुबला हो जाना, दुबलापन बढ़ते जाना और दूध देने वाली गायों में दूध कम जाना। बुखार २° और ३° साधारण बुखार से अधिक रहता है। जैसे जैसे बीमारी बढ़ती है, वैसे वैसे पतला दस्त होता है और गोबर में बुलबुले का हो जाना इस रोग का खास लक्षण है। जो जानवर ऊपर बताये लक्षण जाहिर करते हैं वे शायद ही अच्छे होते पाये जाते हैं। किसी प्रकार का रोग जो जानवर को दुबला बनाता है, वे इस बीमारी के अधिक शिकार होते हैं।

बीमारी का निश्चय :—बीमार जानवरों की कथा पूछ कर या उसका लक्षण देखने से बीमारी का निश्चय हो सकता है। इस बीमारी की जांच के लिये, गुदा मार्ग से थोड़ा मांस काट कर, कीटाणु की जांच की जाती है। एनटी-फोरमीन (Antiformin) गोबर में पहले ही डाल कर जांच किया जा सकता है। इसके कीटाणु शीघ्र नहीं मिलते हैं इससे यह न समझना चाहिये कि जोन्स डीजीज (John's Disease) नहीं है। एक पदार्थ जो इस कीटाणु द्वारा तैयार किया जाता है, उसको जोनीन कहते हैं, जिसके देने से बुखार बेसी हो जाती है। लेकिन यह भी विश्वासप्रद वस्तु नहीं कही जा सकती है।

दूसरा पदार्थ जो जाँच में लाया जा सकता है वह है एभीयन टुबरक्वीलीन (Avian Tuberculin) जो चमड़े के नीचे या चमड़े के परदे के नीचे सुई द्वारा दिया जाता है।

पहले जानवर की बोभाईन टुबरक्वीलीन (Bovine Tuberculin) द्वारा जाँच करनी चाहिये यदि इससे जाँच ठीक नहीं निकले तो (Avian Tuebrculin) द्वारा जांच करनी चाहिये। टेपसीन नामक पदार्थ जो मीलहील और डनकीन साहबों द्वारा निकाला गया है, उसके द्वारा कुछ सफलता बीमारी पहचानने में मिली है। बीमारी का पता लगाने के लिये टुबरक्वीलीन बांयें तरफ और दाहिने तरफ टेपसीन देनी चाहिये।

बीमार जानवर के मरने पर फाड़ने से बीमारी का पता ठीक मालूम होता है। यह रोग आँत की (पुरानी) सूजन कहलाती है। छोटी आँत विशेष कर इलीयम नामक आँत अधिक ग्रसित रहती है। पूरी बीमारी में आँत की मांस खूब कड़ी हो जाती है और आँत के परदे पर झींगुराहट या ऊँचे खबड़े देखे जाते हैं, जो इलीयम के आखरी हिस्से में अधिक देखे जाते हैं, बड़े आँतों का परदा कम मोटा देखा जाता है। आँतों में किसी किसीम का घाव या रक्तस्राव नहीं देखा जाता है। आँत की गिल्टियाँ फूल जाती हैं। जहाँ पर रोग का प्रभाव हो वहाँ आँत के कुछ हिस्सों में बहुत कीटाणु मिलते हैं,

रोग के प्रति कर्त्तव्य :—दवा इसमें कोई काम नहीं करता है। इसलिए लक्षणों के मोताबिक दवा करनी चाहिये। पतला दस्त को अफीम इत्यादि देकर रोकना चाहिये, जैसे अफीम $\frac{1}{4}$ तोला, खरी एक तोला कथ एक तोला, तीनों को एक साथ मिलाकर

दिन में दो बार माँड़ में देनी चाहिये। पुस्टई और अच्छे खाद्य पदार्थ देनी चाहिये।

बीमारी रोकने का उपाय :—बीमार पड़ जाने पर जानवरों को अलग कर देना चाहिये, समूचे झुण्ड को टेस्ट द्वारा जाँच करनी चाहिये। जिन पर बीमारी की शंका हो उनको अलग कर देनी चाहिये। टेस्ट बीच-बीच में बराबर जारी रखना चाहिये। बीमार जानवरों के मल-मूत्र को कोड़कर गाड़ देना चाहिये, और उस स्थान पर आग जला देना चाहिए। भेंड़ और बकरे में भी यह कारण होता है, इसलिये उनको भी अलग रखना चाहिये। चारागाह जिसमें बीमार जानवर मरे हों, उसको हल से जोतवा देना चाहिये।

(MANGE) खूजली या खउरा।

इसके भिन्न-भिन्न नाम हैं:—इसको कहीं खुजली, कहीं खउरा और कहीं बरसाती कहते हैं।

स्वभाव :—खुजली बहुत छूत से फैलने वाली बीमारियों में से है, जो एकरी (Acari) या जानवरों के कीटाणु (Animal parasites) के एरकानीडी या स्पाइडर खानदान की होती है। यह सब जानवरों और मनुष्यों को होती है।

किन-किन जानवरों को यह बीमारी होती है :—हिन्दुस्तान में यह बीमारी अधिकतर घोड़ों, खच्चरों, गदहों, पशुओं, ऊँटों और कुत्तों में होती है।

जानवरों की पूरी देखभाल नहीं करने से तथा गन्दे स्थानों में रखने से यह रोग होता है। ऊँटों में कमजोरी से भी यह रोग होता है।

जो जानवर ठिकाने से देखे, धोए और मले जाते हैं उनमें यह रोग बहुत कम देखने में आता है।

कीटाणु और उसके नियम :—

कई एक प्रकार के एकरी होते हैं, जिनके द्वारा खुजली फैलती है। इनकी चार जातियाँ हैं, जैसे :—

(क) सारकौप्टस (Sarcoptes)

(ख) सोरोप्टस (Psoroptes)

(ग) सीमवोयाटस या कोरीऔप्टस (Symvoites or Chorioptes)

(घ) डेमोडेक्स (Demodex)

घोड़ों और खच्चरों में नीचे लिखे कीटाणुओं द्वारा अधिक होता है।

(क) सारकौपटीक :-जो जल्दी आराम नहीं होता है।

(ख) सोरोपटीक :-जो अधिकतर पाया जाता है।

(ग) सीमवायटिक और कोरीओपटीक :-जो कभी-कभी होता है और बहुत कम हानि पहुँचाता है।

ऊँटों में :—सारकौपटीक होता है।

पशुओं में :—सोरौपटीक बहुत कम होता है।

भेंड़ों में जो खुजली द्वारा बहुत नुकसानी देखा जाता है वह सौरौपटीक द्वारा अधिक होता है। सारकौपटीक द्वारा खुजली सिर्फ भेड़ों के सिर में पायी जाती है और जहां पर उन या रोंआ होता है वहां पर इसके द्वारा रोग नहीं होता है। सुअरों में सारकौपटीक द्वारा पायी जाती है। कुत्तों में जो खुजली देखी जाती है वह सारकौपटीक द्वारा होती है। कुत्तों को फोलीकुलर मेनज (Follicular mange) यानी खउरा होता है वह दूसरे जाति द्वारा होता है जिसको डेमोडेक्स फौलीकीउलोरम (Demodex Follicularum) कहते हैं। बिल्ली में जो होती है वह सारकौपटीक है। कुत्ते और बिल्ली दोनों जातियों में सीमबोयपटीक द्वारा होती है जो कानों के पास देखी जाती है।

एक कीटाणु को दूसरे कीटाणुओं से पहचाननाः—जितने सोरीइक एकरी [Psoric acari] हैं सब गोल और अण्डाकार होते हैं, जो देखने में सफेद होते हैं जिनकी लम्बाई, चौड़ाई १।२५ से १।३२ ई० तक होती है। जिसमें पेट या वक्ष स्थल कोई ठिकाना नहीं होता है उनके चार जोड़े पांव होते हैं, दो जोड़े पीछे और दो जोड़े आगे के तरफ देखे जाते हैं जो लम्बे कांटे के समान होते हैं जिसको सकर यानी चुसने वाला कहा जाता है। इनके मुख देखने में साफ नजर आते हैं। उनके आंख नहीं होते, स्वांस चर्म छिद्रों द्वारा होता है। नर मादे की पहचान साफ मालूम होती है। मादीन नरों से बड़ी होती है और अधिक पायी जाती है। सारकौपटीक में नर

सैंकड़े ५ या ६ पाये जाते हैं। सारकौपटीक भी अण्डाकार होता है, जिसमें छोटे मजबूत शरीर रहते हैं, छोटे और मोटे पाँव होते हैं। पीछले पांव सामने से देखने पर नजर नहीं आते हैं। रस चूसने वाले कांटे लम्बे और एक ही होते हैं। यह कीटाणु सिर्फ खुर्दबीन द्वारा देखा जाता है।

सौरौपटस, सारकौपटस से कुछ बड़े और आकार में अण्डाकार होते हैं, उनका शरीर लम्बा होता है और उसमें गाल नहीं होते, इनके पांव लम्बे होते हैं और सामने से सब नजर आते हैं। इनके रस चूसने के कांटे लम्बे तीन गांठ वाले होते हैं। ये कीटाणु खाली आँख या मोटे सीसे से काले कागज पर रख कर देखे जा सकते हैं।

सीमबोयाटस (Symvoites) या कोरीऔपटस (Chorio-optes) अण्डाकार होते हैं और उनके शरीर जितने चौड़े उतने लम्बे होते हैं, सब पांव सामने से नजर आते हैं, और उनके रस चूसनी चौड़ी और छोटी होती है।

सौरोपट और सीमबोयाटस जल्दी मिल जाते हैं, लेकिन सारकौपटस और डेमोडेक्स बहुत कठिनाई से मिलते हैं।

कीटाणुओं की जीवनी:—अच्छे धूप और हवा में बहुत शीघ्रता से बढ़ते हैं, मादा कीटाणु २० से २४ तक अण्डा देती हैं जो अण्डाकार होते हैं और सीसे की तरह आर पार चमकते हैं। जानवरों के शरीर पर २४ घण्टे से ७ दिन में तैयार हो जाते हैं, जो मौसम पर तथा कीटाणुओं की मजबूती पर निर्भर

करता है। हरेक अण्डे से बच्चे निकलते हैं, जो कुछ दिनों के बाद लीम्फ होते हैं और १५ दिनों में कीटाणु अण्डे देने के काबिल हो जाते हैं। शरीर के बाहर कितने दिनों तक अण्डा देती हैं सो ठीक नहीं पता चला है। लेकिन यह जरूरी है कि, कम्बल, चमड़े तथा साज के अन्दर या स्तबल के लकड़ियों में बहुत दिन तक जीवित रहते हैं जिसकी वजह से बीमारी बहुत दिनों तक रहती है। किसी किसी जानवरों में कुछ दिनों तक कीटाणुओं के अण्डे रहते हैं।

सादा सारकौपटीक चमड़े के भीतर घुस जाती है, और वहां पर घर के ऐसा बना लेती है और अण्डा देती है, इस प्रकार मनुष्यों में देखे जाते हैं, जानवरों का चमड़ा मोटा होने के कारण नहीं दीख पड़ते हैं, जो $\frac{१}{५}$ से $\frac{४}{५}$ ईन्च तक लम्बे होते हैं, बहुत जल्दी १५ या २० मिनट के अन्दर तैयार हो जाते हैं। यही कारण है कि बहुत दिक्कत से आराम होता है और फिर आराम होकर भी हो जाता है।

सौरोपटस चमड़े के ऊपर होता है, जो भीतर से रस खींचता है और बहुत चलता है।

सीमवोयाटस या कोरीऔपटस चमड़े के ऊपर रहते हैं, जो चमड़े के भीतर के इस्केल खाकर रहते हैं और अपनी जगह से दूसरी जगह जाने की चेष्टा कम करते हैं, ये घोड़ों के पांव में या बैलों के पूंछ के जड़ में अधिक पाये जाते हैं।

किस प्रकार रोग होता है:—मैले चमड़े, कमजोरी, कम मलाई, कम खबरगिरी करना, कम खोराक, इन सब कारणों से सोरोपटीक खुजली होने की अधिक सम्भावना रहती है। एक बैठे हुए घोड़े को बीमारी शीघ्र हो सकती है बनिस्बत एक काम करते हुये घोड़े से, उसका कारण यह है कि उसका चमड़ा मैला होता है। साफ घोड़े भी सारकौपटीक खुजली से बचे नहीं रह सकते हैं।

कम्बल, जीन, साज या खरहरे इत्यादि बीछावन, स्तबल के खूंटे इत्यादि में रगड़ने से होता है।

सोरौपटीक खुजली बहुत शीघ्रता से बढ़ती है जानवरों को एक साथ बांधने से, जैसे रेल के डब्बे में या जहाज पर या भेंड़ों के झुण्ड में अधिक होती है। बीछावन से बीमारी अधिक फैलती है। सारकौपटीक खुजली धीरे धीरे बढ़ती है।

हर तरह के जानवरों को अलग-अलग खुजली की बीमारी होती है जिसके कीड़े दूसरे दूसरे होते हैं। जिससे एक से दूसरे तरह के जानवर को खुजली नहीं हो सकती है और न कीड़े एक जानवर से दूसरे तरह के जानवर पर ठहर ही सकते हैं। जैसे मनुष्यों की खुजली के कीड़े घोड़े पर कम रोज तक ठहरते हैं, और घोड़े के सरकौपट आदमी पर जा सकते हैं लेकिन १५ रोज से ६ हफ्ते के अन्दर मर जाते हैं, और मामूली इलाज से खुजली आराम हो जाती है। घोड़े का सरकौपट गायों पर नहीं ठहर सकता। ऊँटवानों में सारकौपटीक खुजली ऊँटों से होती

हुई देखी गयी है। इस तरह भी पाया गया है कि कुत्ते और बिल्लियों से घोड़े और मनुष्यों में सारकौपटीक खुजली हो जाती है।

सोरौपटीक मेनज एक प्रकार के जानवर से दूसरे तरह के जानवरों को नहीं होता है, और यही बात सीमबोंयाटीक खुजली की भी है।

रोग के लक्षण :—सब प्रकार की खुजली में बहुत जोर का खुजलाहट रहना एक प्रधान लक्षणों में से है। वहाँ का चमड़ा जिस स्थान पर यह रोग होता है देखने में भद्दा या रूखरा हो जाता है। खुजलाहट एक जहरीला पदार्थ द्वारा होता है, जो कीड़े द्वारा जमा किया जाता है और सोरौपटीक प्रकार में और भी अधिक खुजली होती है। खुजली रात में दिन की अपेक्षा अधिक होती है और धूप में जाड़े से अधिक होती है, स्तबल में अधिक खुजलाहट रहती है, कपड़े ओढ़ाये रखने पर कम, बिना कपड़े के खुजलाहट अधिक होती है जानवर को खुजलाने में आनन्द मालूम होता है। कीड़ा मिलने पर बीमारी का पता ठीक चल जाता है। तरह-तरह की खुजली शरीर के खास खास जगहों पर पायी जाती है।

घोड़ों में सारकौपटीक प्रकार की खुजली मउर पर और खूब अधिक होने से पैर छोड़ कर सारे शरीर में हो जाती है। चमड़े को देखने से पता चलता है कि किनारे-किनारे छोटे-छोटे

फुन्सी के ऐसे ऊँचे मालूम पड़ते हैं। बाल गिर पड़ते हैं और छोटे-छोटे खट्ठी के समान पड़ जाते हैं जो छूटने पर सुखे हुए बड़े-बड़े चकते हो जाते हैं। पीछे चमड़ा मोटा हो जाता है और उस पर झींगुराहट पड़ जाती है और सुखे हुए खुट्ठी सफूफ हो कर छूट जाते हैं।

कीड़े का पता लगाने के लिये, किनारे से थोड़ा खुट्ठी छोड़ कर, जहाँ पर नयी बीमारी शुरू हुई हो, रगड़ते-रगड़ते जब तक खून न आ जाय, जानवर को धूप में रख कर खुट्ठी छोड़ाना चाहिये। उस खुट्ठी को एक टेस्ट टयूब में जिसमें १०० में १० के हिसाब से कौसटीक पोटास या सोडा में देकर बुनसेन के ताव पर गर्म कर लेना चाहिये।

ऊँटों में खुजली :—यह सारकोपटीक कीड़े से होता है, और घोड़ों की अपेक्षा ऊँटों में ये कीड़े शीघ्र पाये जाते हैं और बड़े होते हैं, जो मोटे शीशे से शीघ्र देखे जा सकते हैं।

घोड़ों के लक्षणों से इसमें कुछ अन्तर पाया जाता है, क्योंकि पहले ये जाँघ, पोते और पेट के करीब पाये जाते हैं, लेकिन खूब जोर से खुजली होने से ये सारे शरीर में पाये जाते हैं। ये कभी-कभी वैसी बीमारियों के साथ-साथ होते हैं जिनसे जानवर कमजोर होता जाता है, जैसे सारा (Surra), जानवर दिन पर दिन दुबला होता जाता है। इसमें खुजलाहट अधिक होती है, जानवर एक पैर से दूसरे पैर को रगड़ता है और गाछ में

रगड़ता है, कभी जमीन में भी और कभी अपने साथियों के बदन में भी रगड़ता है।

दाना वगैरह नहीं मिलने के कारण, ऊँटों को खउरा हो जाता है और बाल उड़ जाते हैं और वैसी हालत में गर्दन, चेरु, मउर और कूब पर ही यह देखने में आता है और कोई कीड़े नहीं पाये जाते हैं।

पशुओं के अन्दर खुजली:—पशुओं में अधिक यह रोग नहीं पाया जाता है और यदि उनमें होता भी है तो सोरौपटीक के ऐसा होता है और गर्दन के उपरले भाग और मउर पर होता है और इलाज से आराम हो आता है। बसन्त ऋतु में जो जानवर रोआं बदलते हैं, उसे इस खुजली से नहीं गड़बड़ाना चाहिये।

सीमत्रोयाटीक किसीम की खुजली जो कि दुम के नड़ में कभी-कभी होती है इलाज से शीघ्र आराम हो जाती है।

बीमारी से बचने का उपाय:—खुजली बहुत दिक्कत से आराम होती है और खासकर के जो सारकौपटीक किसीम की है वह अच्छी होकर भी फिर हो जाती है। इसलिये आधी कारवाई नहीं, पूरी कारवाई करनी चाहिये।

१ बीमार जानवर तथा बीमारी के शंका वाले जानवर को अलग हटा देना चाहिये।

२ सब जानवरों का निरीक्षण प्रति दिन करना चाहिये।

३ जानवरों को तीन हिस्से में करना चाहिये, (क) जिन को बीमारी हो गयी हो, (ख) जिन पर शुभा हो, (ग) जिनको नहीं हुआ हो। शंकावाले जानवरों में वे जानवर भी शामिल हैं, जो बीमार जानवर के साथ रहे हों, या वे जानवर जो एक ही खरहरे इत्यादि से मले गये हों,या वे जानवर जिनके लिए एक ही बिछावन इस्तेमाल में लाये गये हों, उनको शंकावाले जानवरों में शामिल कर देना चाहिये।

४ ऊपर लिखे के बारे में पूरी तहकीकात करना।

५ स्तबल या जगह को खाली कर देना चाहिये और उस स्थान को शुद्ध कर देना चाहिये।

६ बीमारी वाले स्तबल के सब जानवरों का बाल छांट देना चाहिये। छांटे हुये बालों को जला देना चाहिये और बाल काटने वाले कल को हर जानवर के बाल छांटने के बाद पैराफीन तेल (Paraffin Oil) में डाल देना चाहिये। यदि बीमारी बहुत से स्तबलों में हो जाय, तो सबों का बाल छांट देना चाहिये।

७ बिछावन जो बीमारियों के द्वारा इस्तेमाल हुआ हो, उसको जला देना चाहिये।

८ घास या नेरुवे के बिछावन का इस्तेमाल नहीं करना चाहिये, बल्कि बालू बिछावन की जगह में इस्तेमाल किया जाय। जो बिछावन पेशाब या लींद वगैरह से भींग गया हो उसको ऊपर से फेंक देना चाहिये।

९ आग से उस स्थान को जहां पर बीमारी हुई हो जला देना चाहिये और सभी दीवाल, पाया, नाद जहां बीमारी या शंकावाले जानवर बांधे गये हों, उनको खूब चूना से पोत कर कारबोलिक एसीड के पानी से पीछे धो देना चाहिये। फिर दुहरा देना चाहिये।

१० बीमार जानवरों के कपड़े को जला देना चाहिये, अच्छा हो जाने के तीन महीने बाद फिर नया कपड़ा इस्तेमाल करना चाहिये।

११ शंकावाले बीमार जानवरों के कपड़े को नियम में दिए मुताबिक शुद्ध कर लेना चाहिये और कपड़े को तब तक नहीं देना चाहिये, जब तक यह निश्चय न हो जाय कि जानवर बीमार नहीं है।

१२ खरहरा और दूसरे बर्तन इत्यादि बीमार जानवरों तथा बीमारी के शक वाले जानवरों का जमा करके ऊपर बताये गये नियम के अनुसार शुद्ध कर लेना चाहिये और बीमार जानवर जब तक अच्छे न हो जांय तब तक उनको कपड़ा नहीं देना चाहिये। जानवरों के मलने

की जगह जो इलाज के समय धोये जाते हैं काफी होता है और यदि मलने की आवश्यकता हो तो नरुआ का लूंड़ा बना कर मलना चाहिये और मलने के बाद नरुआ को जला देना चाहिये। अच्छे हो जाने के बाद बुरुस और खरहरा देना चाहिये, जो हर जानवर के लिये अलग अलग होना चाहिये और जिसे फेनाईल के पानी में एक घण्टा धोने के बाद काम में लाना चाहिये।

शंकावाले जानवरों को तब तक खरहरा इत्यादि नहीं देना चाहियें जब तक पूरा मालूम न हो कि इन जानवरों को बीमारी नहीं है। जानवरों को नरुआ के लूंड़े से मलना चाहिये, हर जानवर का लूंड़ा अलग अलग होना चाहिये।

१३ साज और जीन इत्यादि जो बीमार जानवरों के हों, उनको शुद्ध करने के नियमों के अनुसार शुद्ध कर लेना चाहिये। साज या जीन या पलाम के कपड़ों को जला देना चाहिये।

१४ बीमारी हुए स्थान की वस्तु का हेर फेर तीन महीने तक नहीं करना चाहिये।

१५ जितनी जल्दी हो सके अच्छे जानवरों के सामान जैसे साज जीन इत्यादि और बदन मलने की चीजों को अलग अलग शुद्ध करना चाहिये। मलने के सामान के लिये

एक बाल्टी में कुछ दवा का पानी मिलाकर रखना चाहिये, जिसमें बुरुस इत्यादि सामानों को मलने के बाद एक घन्टे तक डाल देना चाहिये।

१६ जितना कम कपड़ा हो इस्तेमाल करना चाहिये।

१७ बीमार तथा बीमारी के शंकावाले जानवरों का इलाज :—याद रहे कि अधिक इलाज या अधिक लगने वाली औषधियों का प्रयोग नहीं करनी चाहिये। तीसी की तेल मिली हुई दवा, खासकर गर्मी के दिनों में नहीं लगानी चाहिये। जिससे जख्म हो जाने का डर रहता है, और अधिकतर रोंए और चमड़े पर चिकना वारनीस के ऐसा बैठ जाता है, जो शीघ्र नहीं हटाया जा सकता है। जिस पर शक हो उसे शुरू करना चाहिये। समूचे बदन के रोंवें को पैर से लेकर सिर तक छाँट देना चाहिये, और उसे जला देना चाहिये, चमड़े को खूब रगड़ कर मुलायम साबुन और गर्म जल से धो डालना चाहिये, उसके बाद पानी गिरा कर बदन को सुखा देना चाहिये। तब जहाँ बीमारी का दाग हो वहाँ पर मामूली खुजली की दवा लगा देनी चाहिये। बाल काटने की मशीन को हरेक जानवर के बाल काटने के बाद पैराफीन के तेल में डाल देनी चाहिये। जानवरों की सावधानी से देखभाल करनी चाहिये।

इसके बाद बीमार जानवरों के ऊपर बताये हुए अनुसार बाल छाँट देना चाहिये बाल काटने की मशीन को शुद्ध कर

लेना चाहिये। सारे शरीर में मुलायम साबुन लगा देना चाहिये। बीमारी हुए स्थानों को खूब गर्म पानी देकर रगड़ कर खुठी को मुलायम होने देना चाहिये, तब फिर आधा घन्टा से एक घन्टा तक खूब फूलने देना चाहिये, तब फिर खूब रगड़ कर धो देना चाहिये तब देसी साबुन को धो डालना चाहिये। तब उसके ऊपर खुजली की दवा लगानी चाहिये, इस प्रकार की दवा के बहुत से नुसखे हैं। जिसमें कीड़े पर इसका असर हो इसलिये सारे शरीर में एक ही बार पहले ही लगाना चाहिये। जिस दवा में तेल मिला हुआ हो उसको एक ही बार में सारे शरीर में नहीं लगानी चाहिये, क्योंकि एक ब एक रोम छिद्र के बन्द होने से कुछ जानवरों पर खराबी आ सकती है। इनके लिये आधा शरीर एक बार और आधे में एक बार ४८ घन्टे के बाद लगाना चाहिये, जहाँ पर अधिक हो वहाँ पहले लगाना चाहिये।

तेल में बनायी हुई दवा अच्छी होती है, जो कभी-कभी लगानी चाहिये। गन्धक और अलकतरा मिली हुई दवा इस बीमारी के कीड़ों के मारने की अचूक औषधि है।

पैराफीन तेल एक पाइन्ट, मुलायम साबुन एक पौंड और पानी एक गैलन मिला कर खुजली पर लगाने से बहुत फायदा करता है।

चूना १ पौंड, गन्धक २ पौंड २ गैलन पानी में मिलाकर उबालने से और चलाकर एक कर देने से बहुत अच्छी दवा

बनती है और जिसको एक ही बार तमाम लगाया जा सकता है। इस औषधि को गर्म लगाना चाहिये।

नीचे लिखी औषधि लाभदायक है और इस्तेमाल की जा सकती हैं। गन्धक २ औंस, कीरीओजोट १ औंस, चरबी आठ औंस। चरबी की जगह तेल भी इस्तेमाल कर सकते हैं।

गन्धक २ औंस पाराका मलहम $\frac{1}{2}$ औंस और चरबी आठ औंस। गन्धक एक भाग, अलकतरा के तेल एक भाग पोटास कारब एक भाग, चरबी या तेल १० या १२ भाग।

गन्धक एक भाग, अलकतरा या अलकतरे का तेल एक भाग मुलायम साबुन या चर्बी हरेक दो भाग।

अलकतरा एक या दो भाग, भेसलीन, चर्बी या शराब १० भाग।

क्रीओजीट १ औंस, मेथीलेटेड स्प्रीट १५ औंस पानी ४० औंस।

गन्धक और तेल खूब पतला खलकर भी लगाया जा सकता है।

तारमेरा का तेल, केवल या गन्धक के साथ मिलाकर लगाना चाहिये।

नीचे वाला तीनों नुसखा ऊँटों के हक में अच्छा है। जितनी खुजली की दवा बताई गई है, शरीर पर कई एक रोज

तक लगाना चाहिये और हाथ द्वारा धीरे-धीरे रगड़ कर लगाना चाहिये। उसके बाद साबुन और पानी द्वारा उसको धो देना चाहिये और फिर लगाना चाहिए, जहां पर अधिक हो वह अधिक और जल्दी नहीं लगाना चाहिये, क्योंकि अधिक लगाने से कोई विशेष लाभ नहीं देखा गया है। दो या तीन बार लगाने से सोरौपटीक खुजली आराम हो जाती है। सारकौपटीक खुजली में प्रायः तीन हफ्ते तक दवा लगानी चाहिये, और उसकी बीमारी का निरीक्षण करना चाहिये।

रोग अच्छा हो जाने पर, खूब रगड़ कर धो देना चाहिये। जानवर को ऐसी हालत में टहलाना और दौड़ाना चाहिये, जिसमें चमड़े का काम ठीक चले। खाने के लिए अच्छा दाना इत्यादि देना चाहिए।

सब जानवरों के लिए प्राय: यही इलाज है। पारा मिली हुई दवा मवेशियों को नहीं लगानी चाहिये, क्योंकि उन सबों की चाटने की आदत होती है। जल्दी-जल्दी पारा का इस्तेमाल करने से बिष लगने का डर रहता है। तेल में बनी हुई दवा अधिक स्थान में लगाने से भेंड़ों में मृत्यु का डर रहता है। संखीया मिली हुई दवा (संखीया १ पौंड, पोटास कारब १ पौंड जल २० गैलन) भेंड़ों को इस जल में डुबा कर चारागाह में तुरत नहीं जाने देना चाहिये, पानी सब गिर जाने पर चरने देना चाहिये। भेंड़ों की इन औषधि को (Sheep Dip) कहते हैं।

चंगे हुए जानवरों को भी तीन महीने तक अच्छे जानवरों में नहीं मिलना चाहिये।

नीचे लिखी औषधियों का प्रयोग किया जा सकता है :—

गन्धक १ औंस, कपूर २ ड्राम, देवदार का तेल ४ औंस, नारीयल का तेल ४ औंस, बाल छाँटकर हरेक चौथे दिन लगाना चाहिये।

खरास में नीचे लिखी औषधि का प्रयोग किया जा सकता है।

जींक सलफ १ औंस, कपूर १ ड्राम, देवदार का तेल १ औंस भेसलीन ४ औंस मिलाकर उस स्थान में लगाना चाहिये।

जानवरों के पेट तथा आतों के कीड़े या जोंक

पेट के जोकों के किसीम या भाग :—

प्राय: पहले जोकों के दो भाग किये जा सकते हैं।

चौड़े जोंक (Flat worm or platyhelminthes)

१ सेभेटोडस—फूलूकस।

२ सेसटोडस—चौड़े जोंक, कछुआ (Tape worms) गोले जोंक (Coclhelminthes)

१ Nemahel minthes चिकने बदन में गोल कीड़े या जोंक।

Nema todes :—

(क) एसक्रीडी (Ascaridae).

(ख) फाईलेरीडी (Filaride).

(ग) इसट्रोगजीलेडी (Strongylidae).

(घ) ओकसयूरीडी (Oxyuridae).

(ङ) हेटरालीडी (Hetralidae).

(च) इस्ट्रोनजीलीडी (Eustrongylidae).

(छ) ट्राईचीनेलीडी (Traichinelidae).

२ एकैन्थो (Acantho caphela).

३ एनीलीडा कैफला-Aneelida (Segmented round worms). हीरूडीनी–Hirudinee (जोंक) ।

वलैरी हैलभींजश्रस

१ ट्रमेटोडस:—नीचे लिखे प्रधान जोंक घोड़ों को हुए हैं ।

(क) गस्ट्रोडीसकस रोइनीयरी कस ।

(ख) गेंस्ट्रोडीसकस सेकेनडस ।

ऊपर लिखे जोंक हिन्दुस्तान में बहुत पाये जाते हैं । ये सब छोटी आंत में और कभी कभी घोड़ों के लीद में दवा देने के बाद पाये जाते हैं । ये जोंक पेट में रह कर कोई अधिक बुराई नहीं करते हैं । लीद में मांस के दाने के समान $\frac{3}{4}$ से १ इंच तक लम्बे और $\frac{1}{2}$ इंच चौड़े होते हैं ।

२ सेसटोडस (Sestodes):—तीन प्रकार के कद्दुदाना घोड़े में पाये जाते हैं, जैसेः—(क) एनापलो केफला परफोलीएटा, (ख) एनापलो केफला मैमीलना और (ग) एनापलो केफला पलाईकेटा।

इनमें पहला अधिक पाया जाता है। ये जोंक सब आंत में चीपटते नहीं हैं और आंत में पाये जाते हैं।

किन किन स्थानों में मिलते हैं:—छोटे आंतों में, सीकम में कोलज में एनापलोकेफेला मैमीलाना, पेट में साफ पाया जाता है।

लक्षणः—इन जोकों के कारण कोई विशेष लक्षण नहीं पाया जाता है।

नीचे लिखे जोंक घोड़े में पाये जाते हैं

सिर मेंः—सीनीवरस सेरीबरेलीस(Coenurus Cerebralis) कुत्तों के जोंक के किसीम का है।

उदर मेंः—सीसटीसरकस टनुकोलीस (Cysticercues tunicollis) कुत्तों के हाईडाटीज (Taeniahydatiga) की जाति का है।

फेफड़ा और कलेजाः—एकाइनोकोकस ग्रैनुलोसस (Echinococcusgranulosus) जो कुत्ते और बिल्लियों के एकाइनोकोकस के किसीम का है।

१ कोयलहेलमीनथेश [Coelhalminthis]

(क) नेमाटोडस (Nematodes)

एसकेरीडी (Ascaridae)—यही एक जोंक के किसीम का है जो घोड़ों के आंत में पाया जाता है, जिसको एसकेरीया इकवाई (Ascariaequi) कहते हैं।

एसकेरीडी की जीवनी—प्रायः सभी एसकेरीडी की जीवनी एक ही है।

शरीर के बाहर बढ़ना:—अन्डे जो दिये जाते हैं, वे प्रायः कटे कटे नहीं होते हैं। अन्डे प्रायः चार सप्ताह में २५० सी: की गर्मी में तैयार हो जाते हैं और वे शरीर के बाहर नहीं होते हैं।

शरीर के अन्दर बढ़ना:—अन्डे जब पाचन शक्ति द्वारा डिओडिनम या पाईलोरस में रहते हैं और आंतों की दीवालों को छेद कर कलेजे में चलते चलते पहुँचते हैं, या पाटल रक्त तन्तुओं द्वारा कलेजे में पहुँचते हैं तब वे वहाँ से फेफड़े में पहुंचते हैं और फेफड़े से, फेफड़े के वायु स्नायुओं में जाते हैं। फिर वहां से, ब्रौंकीओल, ब्रोनकाई, ट्रेकीया (हवा की नली) और फिर वहां से कन्ठ के करीब फैरीन्गस में आ जाते हैं। कन्ठ के नजदीक घोंटने पर, छोटे आंत में चले जाते हैं, और फिर वहां से कुछ बाहर भी चले जाते हैं और कुछ रह कर वहां पर बड़े होते हैं।

लक्षण:—इस प्रकार के जोंक के अधिक रहने से, फेफड़ों में सूजन होती है जो पुरानी हो जाती है, और जानवर दुबला होता

जाता है। इस प्रकार का लक्षण अधिक सुअर के बच्चों में पाया जाता है, और यह समझा जाता है कि जब घोड़े के बच्चे गन्दे जगहों में रखे जाते हैं और बराबर घर में बन्द रहते हैं, तो इस प्रकार का लक्षण देखने में आता है।

जब जोंक का आक्रमण होता है तब कुछ विष के लगने के समान देखा जाता है।

कीड़े का आकार:—मादीन प्राय: १५-३० सी० एम० लम्बा होती है, और नर छोटा होता है। जोंक प्राय: बड़े और मोटे होने के कारण पहचान में आते हैं।

अन्डे का आकार:—एसकिरीडी के अन्डे, अन्डाकार और मोटे छीलके से ढंके रहते हैं। ताजे गोबर में इसके टुकड़े नहीं होते। कभी कभी इसके छिलके लच्छेदार होते हैं।

बीमारी की पहचान:— घोड़ों में अकसर पुराने जोंक लीद के साथ निकलते हैं, इस लिये यह नहीं समझना चाहिये कि इन जानवरों में अधिक जोंक हैं। यदि इस तरह का शक हो तो दवा के द्वारा तथा लीद को खुर्दबीन द्वारा अन्डों के लिये जांच करनी चाहिये।

इलाज या चिकित्सा:—चीनापोडियम का तेल एसकैरीडि के लिये बहुत अच्छी औषधि है। इसकी मात्रा ४ ड्राम तक जानवरों के कद के मोताबिक जैसे ४ ड्राम बड़े घोड़ों को और २ से ३ ड्राम छोटे टटुओं को देना चाहिये।

जानवर को २४ से ३६ घन्टे तक भूखे रख कर यह दवा दी जाती है। इस दवा को एक ही मरतबे देनी चाहिये, और बार बार कम मात्रा में नहीं देनी चाहिये। इसको या तो तीसी के तेल में मिला कर या इस दवा को पिलाने के बाद १ से २ पाइन्ट तक तीसी का तेल पिलाना चाहिए। इस प्रकार विष लगने का डर नहीं रहता है। कारबन बाईसलफाईड भी इस रोग यानी एसकैरीडि के लिये बहुत अच्छी है। इसको कोई कैपसेल में देना चाहिये, इसका खोराक ६ ड्राम के करीब है। यदि इच्छा हो तो दो खोराक में ४ ड्राम देना चाहिये या तीन खोराक में तीन ड्राम हरेक घन्टे पर देना चाहिये। बार बार दवा देना इसमें एक खोराक देने के बनिस्पत बहुत लाभदायक है। जुलाब कई एक घन्टों के बाद देना चाहिये।

फाईलेरीडी (FILARIDAE)

पेट की हेबरोबीमीयेसीस (Gastric Habromiasis) इसमें कीड़े की प्रधानता अधिक है, क्योंकि इसके कारण जानवरों में दुबलापना अधिक, हिन्दुस्तान और आस्ट्रेलिया के घोड़ों में पाया जाता है। तीन प्रकार के कीड़े इस जाति के पाये जाते हैं। जैसे हैवरोनेमा मैगसटोमा (Habronema Magastoma) हैबरोनीमा माईकरोसटीमा (Habronema Microstima) और हैवरोनीमा मुसी, (Habronema Muscae).

हैवरोनीमा मेगसटोमा:—इसकी मादीन १३ मी० मे० लम्बी और नर ७-१० मी० मे० लम्बा होता है। रंग इसका उजला

होता है। इनका स्थान पेट के मांस पिन्डों में तथा पाइलोरीक नामक पेट के हिस्से में अधिक पाया जाता है, और इनकी पहचान अन्डेकार तथा गोल पदार्थों के समान होती है, जो मांस पीन्ड इन बतौरों को ढांके रखती हैं, बिसके ऊपर छेद होते हैं जो नीचे की मांसपेसियो से मिला होता है, जिनमें कीड़े भरे होते हैं, जो दबाने से पीब के साथ साथ बाहर निकलते हैं। अधिक बीमारी वाले जानवरों में ये दाने नारंगी से लेकर नारीयल के बराबर तक होते हैं और जिनमें दूध के छाली के समान पीब होते हैं और हैबरोनीमा मैगसटोमा के जाल रहते हैं। कभी-कभी पेट की दीवाल को छेदकर उसमें सूजन तथा तिल्ली में घाव हो जाता है।

हेबरोनीमा माईक्रसटोमा और हैबरोनीमा मुसी:—बड़ी मादीन करीब १२-२७ मी० मे० लम्बी और नर करीब १०-२० मी० मे० लम्बा होता है। पहले कीड़े के मुताबिक ये दोगुना होते हैं। ये कीड़े पेट के मांस पिन्डों के ऊपरी भागों पर इसी प्रकार पाए जाते हैं। ये उन पिन्डों के भीतर घुसने की कोई कोशिश नहीं करते। जानवरों के फाड़ने पर ये कीड़े पाये जाते हैं। यदि पेट की चीजों को निकाल कर देखा जाय तो उसमें ये पाये जाते हैं। सिर्फ धोने से ये बाहर नहीं निकलते हैं, इनको चक्कू से रगड़ कर निकालने से तब मांस पेसियों से बाहर निकलते हैं।

जीवनी:—इन तीनो कीड़ों के अन्डे जानवरों के गोबर द्वारा बाहर आते हैं और मक्खियों द्वारा खाने पर बढ़ते हैं।

माईक्रौसटमा को खाने वाली स्तबल की मक्खियां हैं। दूसरे कीड़ों को घर की मक्खियां खाती हैं। फिर छोटे बच्चे बड़ी मक्खियों के द्वारा घोड़े के चमड़े पर आ जाते हैं और फिर मुंह द्वारा रगड़ कर निगल जाते हैं फिर इसके बाद घोड़े के पेट में बढ़ते हैं। कभी-कभी बच्चे मक्खियों से छूट जाते हैं जब के चमड़े पर वे सटे होते हैं। माईक्रोसटोमा चमड़े में स्तबल के मक्खियों के द्वारा सट जाते हैं। इसी प्रकार गर्मी के जख्म, बतौरा, बरसाती और आँखों का सूजन इनके द्वारा बढ़ते हैं।

किन-किन जानवरों को यह रोग होता है :—अस्ट्रेलिया के घोड़ों में यह रोग अधिक देखा जाता है और जो घोड़े अस्ट्रेलिया से हिन्दुस्तान आते हैं उनमें पाया जाता है। तीनों तरह के कीड़े एक ही जानवर में पाये जा सकते हैं।

लक्षण :—चूंके इन कीड़ों द्वारा भारी जख्म हो जाता है पेट के मांस पेसियों में वे छेद कर देते हैं जिसके कारण सूजन हो जाता है। फिर जख्म और दर्द इतना अधिक होता है जिससे जानवरों की तनदुरुस्ती बहुत खराब हो जाती है।

दुबला होने का पता बहुत रोज में मिलता है, दुबलापन और अच्छे खाते पीते रहने पर भी, तनदुरुस्ती खराब होती जाती है, पीछे बहुत कमजोरी और शरीर में रक्त कम हो जाता है। पेट का दर्द बढ़ जाता है और पेट फट जाता है। पैखाना वगैरह सब ठीक होता है और गोबर देखने से मालूम होता है कि जानवर बीमार है।

बीमारी का निश्चय :—घोड़ों को मेलीनटेस्ट द्वारा जांच कर लेना चाहिये। माईक्रोसटोमा और मुसी पेट को धोकर उसको जाँच करने पर पता लगता है। इसके लिये घोड़े को ३६ घन्टे तक भूखा रखना चाहिये और फिर पेट में ३ या ४ गैलन पानी देकर, जो पानी के बदन के गर्मी इतना गर्म हो भर देना चाहिये। तब फिर उस पानी को खींच कर फीलटर के कागज में छान कर जो बच जाय उसको दोनों कीड़ों के लिये जाँच करनी चाहिये। हैवरोनीमा मैगसटोमा इस प्रकार से देखा नहीं जा सकता है क्योंकि यह पेट के मांसपेसियों के बत्तौरे में घुसा रहता है। लेकिन अधिकतर तीनों एक साथ पाये जाते हैं। गोबर में देखने से छोटे-छोटे अन्डे पाये जाते हैं। हैवरोनीमा के अन्डे, अन्डाकार होते हैं जिसमें मोटे छाले रहते हैं।

चिकित्सा :—अधिक बढ़े हुए रोग में, चिकित्सा या इलाज कोई काम की नहीं होती है। नीचे लिखी औषधियों से कुछ लाभ पाया गया है :—

फोरमेलीन—१ से २ औंस।
तारपीन के तेल—२ से ३ औंस।
मोसवर—३ ड्राम।
नमक—६ औंस।
त सी का तेल—१॥ पाइनेट।

सब को एक बाल्टी में मिलाकर, और उसको दो गैलन गर्म पानी में मिला देना चाहिये। घोड़े को ३६ घन्टे उपवास करा कर तब पेट में पम्प द्वारा पम्प कर देना चाहिये।

ऊपर लिखी दवा देने के बाद जितना जल जानवर पी सके पिला देना चाहिये। दस्त करीब १२ घन्टे के बाद शुरू होता है और दो रोज तक ठहरता है। फिर तीसरे दिन पहले के समान हो जाता है। जानवर को तीन रोज तक चोकर खिला कर रखना चाहिये। अगर जरूरत हो तो दो से तीन हफ्ते में दवा फिर देना चाहिये। जरूरत पड़ने पर ६ बार तक दवा दी जा सकती है।

ऊपर लिखी दवा के साथ आरसनीक धीरे धीरे खुराक बढ़ा कर देना चाहिये।

इससे बचने का उपाय:—मक्खियों का बढ़ना जहां तक हो सके रोकना चाहिये। खाद्य या मान इत्यादि जहां तक हो सके स्तबल के निकट नहीं फेंकना चाहिये बल्कि गाड़ देना चाहिए मक्खियों के रहने की जगह जैसे गोबर के थाक इत्यादि परध्यान रखना चाहिये।

(iii) इस्ट्रोनजीलीडी।

इनमें (क) ट्राईकोनोमा (ख) ट्राइूडोनरोफीरस (ग) हूसाफेगरोडोनरस, और स्ट्रौनजाईलस मशहूर हैं।

ट्राईकोनोमा के अन्दर बहुत से जोंक ऐसे हैं जो बड़े होने पर खून चूसते हैं और छोटे रहने पर कभी आंत के भीतर और कभी बाहर रहते हैं।

इस जोंक के लगने पर जो हालत बदल जाती है, उसको ईस्कलरौस रोमीयेसीस या इस्ट्रौनजीलेसीस कहते हैं।

अन्डे की विचित्रता:—इनके अन्डे एक दूसरे से पहचाने नहीं जाते हैं, जो अन्डाकार होते हैं और जिनके ऊपर पतला छिलका होता है और बीच में दानेदार होता है, जो पीछे इमब्रीय के रूप में बंट जाते हैं।

(क) जेनस ट्राइकोनेमा:—इसमें ३८ प्रकार के जोंक होते हैं, जिसमें सीलीकोसटोमा ट्रेटराकैनथम सबसे बड़ा होता है, जिसको पहले इस्ट्रोनजाईलस टेट्राकैनथम कहते हैं।

इनके रहने का स्थान:—ये आंत (बड़े) में रहते हैं।

इनकी जीवनी :— गोबर के द्वारा बाहर आते हैं और उससे बच्चे बाहर आते हैं और दो बार आते, सट जाते हैं। तीसरी बार जब बच्चे उठते हैं तब उनके ऊपर का छिलका मजबूत होता है जिससे इनकी रक्षा होती है। तीसरी अवस्था में ये बच्चे घास के पत्तों पर चढ़ जाते हैं या रात या बादल के दिनों में कड़ी वस्तुओं पर चढ़ जाते हैं। सूर्य की रोशनी से फिर ये जमीन पर चले आते हैं।

इस अवस्था में बच्चे इतने मजबूत होते हैं कि वगैर आहार के कई एक दिन तक रह जाते हैं।

इनके खाने से तीसरी अवस्था वाली बीमारी होती है, जो सीकम या बड़े आंत में जाने से आंत के पर्दे में लीपट जाते हैं और वे जब तक बड़े नहीं होते इसी में पड़े रहते हैं और फिर पर्दे से बाहर होकर जोंक के रूप में हो जाते हैं। जब इनका घात जोरों से होता है तब उस हिस्से के आँत बेकाम हो जाते हैं। केवल ऊपर के जोंक के पर्दे जो खाली रहते हैं, मरे हुए जानवरों के अत धोने पर मिलते हैं और वह स्थान ऐसा मालूम होता है मानो काली मिर्च छींटे हुए हैं।

बड़े जोंक जो ठीक पर्दे के निकट पड़े रहते हैं लेकिन खून नहीं पीते हैं इनके द्वारा भूरे रंग का लसदार रस निकलता है, जिससे इनका रंग लाल हो जाता है चूंके इस रस में वे भींगे रहते हैं।

इनका कद :—मादीन सी० टेटराकैनथस १० से १८ मी० तक लम्बी और नर ८ से १२ मी० तक लम्बा होता है। इनका रंग लाल होता है चूके आँत में ये सटे होते हैं।

लक्षण :—किसी उम्र का जानवर जो इस तरह के वस्तु जोंक के द्वारा ग्रसित होता है, वह दुबला हो जाता है और कोई कड़ा काम नहीं कर सकता है। इस तरह के जानवर को कभी-कभी पतला दस्त होता है, पहले कुछ रोज तक रहता है फिर उसके बाद १५ रोज के बाद होता है, और पीछे अधिक दस्त होने लगता है। जानवर के खून में कमी

आ जाती है और कमर के मांस सूख जाते हैं। इससे पेट में भी कभी-कभी दर्द होता है। इस तरह के जानवर सूख कर पतला दस्त होने के कारण मर जाते हैं, और जोंक विष द्वारा भी नष्ट होते हैं।

इलाज या चिकित्सा :—चीनापोडीयम का तेल एक औंस करीब बड़े जानवरों में तीसी का तेल १ पाईन्ट मिलाकर या तारपीन का तेल १ औंस से २ औंस तक १ पाइन्ट में मिलाकर देना चाहिये, फिर एक महीने के बाद दुहराना चाहिये और फिर तीसरे महीने में भी देना चाहिये।

इस रोग से बचने का उपाय:—सर्द चारागाहों में जानवरों को चरने न देना चाहिये। बच्चे और कमजोर जानवरों को खाने के लिये काफी देना चाहिये। यह शंका की बात है कि इसके कीड़े पानी द्वारा फैलते हैं। जोंक के बच्चे पानी में नहीं तैर सकते हैं। इनको हवा की इतनी जरुरत रहती है कि वे ६ इंच से अधिक पानी में नहीं रह सकते।

जेनस ट्राईएपोडौनटोफोरस (Genus Triopodntc-phorus) :—चार प्रकार के कीड़े इस जाति के पाये जाते हैं।

टी. सीरेटस (T. serratus):—जो मिश्र, हिन्दुस्तान, पूर्वी अफ्रिका और मेसोपोटामीया में पाये जाते हैं।

टी. माइनर. (T. minor) — जो मिस्र, हिन्दुस्तान और पश्चिमी अफ्रिका में पाये जाते हैं।

टी. इन्टरमीडीयसः—जो अस्ट्रेलिया, हिन्दुस्तान, पश्चिमी अफ्रिका और यूरोप में पाये जाते हैं।

टी. टेनीवकोलीसः—जो विलायत में पाये जाते हैं।

उनके रहने के स्थानः – शरीर में बड़े आंत में पाये जाते हैं।

जीवनीः – टी, टेनीवकोलीस की जीवनी नीचे दी जाती है:—

अन्डे जो मल द्वारा बाहर निकलते हैं। वे तीन घन्टे में ठीक होते हैं, उससे जो छोटे बच्चे निकलते हैं खाना शुरू कर देते हैं। उनका छिलका छूटता है और पिछली बार में वे अपने छोड़े हुए चमड़े के साथ में रहते हैं और ऐसी हालत में बीमारी पैदा करते हैं। ऐसी हालत चार रोज में होती है, यदि २६° सी० में रखा जाय। इन कीड़ों के बच्चे घास पर चढ़ जाते हैं जो शीघ्र नहीं सूखते और ८° सी० से ६०° सी० तक गर्मी सहन कर सकते हैं। ये चमड़े में घुस नहीं सकते हैं और घास खिलाने मे बीमारी होती है। जब आंत में पहुँच जाते हैं तब वहाँ बढ़ना शुरू करते हैं, जिनके मुख भी होते हैं, जो बड़े कीड़े के समान ही होते हैं। जो पीछे चल कर तैयार हो जाते हैं। दूसरे कीड़े जो इस जाति के हैं उनकी भी जीवनी प्रायः ऐसी ही होती है।

कद—टी, टेनीवकोलीस की मादीन १६·१६ एमः लम्बी और नर १३-५ से १६ मी० मे० लम्बे होते हैं। दूसरे कीड़े इस जाति के प्रायः इतने ही लम्बे होते हैं।

इनके द्वारा रोगः—टी,टैनीवकोलीस के बड़े होने पर घोड़ों के बड़े आंत में घाव हो जाते है। जखम पीठ के नीचे वाले आंत में पाये जाते हैं। ये जखम बड़े या छोटे बहुत से दाने की तरह के होते हैं। जो डोरसज सीलीअक खून की नली के किनारे २ होते हैं। इन्हें भी रक्त चूसने की आदत होती है। बहुत से कीड़े इसके जखम में पाये जाते हैं यहां तक कि करीब ५०० कीड़े एक जखम में पाये गये हैं।

लक्षणः—इसके लक्षण का कोई ठिकाना नहीं है,लेकिन बहुत से बड़े कीड़े घोड़ों में पाये गये हैं,जो कुड़कुड़ी के लक्षण से मरते हैं।

इलाज या चिकित्साः—इसका कोई सन्तोष जनक इलाज नहीं है।

(ग) जेनस इसोफैगोनरसः—इस जाति के एक तरह के कीड़े घोड़ों में पाये जाते हैं जिसको इसोफैगोडोनरस ऐक्सरस कहते हैं। ये जोंक घोड़े और खच्चरों में बिलायत, अमेरिका और हिन्दुस्तान में पाये जाते हैं।

रहने का स्थानः—बड़ी आंत और सीकम (पानी के आंत) में दूसरे जोंक के साथ रहते हैं। इनकी जीवनी का हाल मालूम नहीं है।

कद और रंग —इनके शरीर मजबूत होते हैं जो आगे की तरफ कुछ नोकीले देखने में होते हैं। जीवितावस्था में ये जोंक भूरे रंग के और आँत गहरे रंग से रंगे मालूम होते हैं, जो जोंक

के बदन से आरपार देखे जा सकते हैं। मादीन १६ से २० मी० लम्बी होती हैं और नर १५-१६ मी० तक लम्बे होते हैं।

लक्षण —ये जोंक दूसरे जोंक (strongilidae) के साथ हिन्दुस्तान के घोड़े और खच्चरों में पाये जाते हैं और इसमें कोई शक नहीं कि इन्हीं जोंकों के कारण स्कोलरौसटोमीएसीस (Sclerostomiasis) के लक्षण इस देश के जानवरों में पाये जाते हैं।

इलाज —जैसा सीलीकौसटोमस और इ ट्रे.नजाईल के लिये बताया गया है।

(घ) जेनस इस्ट्रोनजाईलस —तीन प्रकार के जेनस इस्ट्रोन-जाईलस की जातियों को देखना जरूरी है।

इस्ट्रोनजाईलस भलगेरीस (Strongylus vulgaris)
इस्ट्रोनजाईलस इकवाईनस (Strongylus equinus or dramatus).
इस्ट्रोनजाईलस एडेनटेटस (Strongylus edentatus)

रहने के स्थान :—बड़े जोंक सीकम और कोलन में पाये जाते हैं।

जीवनी :—इसकी जीवनी शरीर के बाहर सीलीकौसटोमस के समान होती है। यह शरीर में मुख के द्वारा या कटे हुए

चमड़े के द्वारा पैठते हैं। जो जहाँ तक आँत में पहुँच है पहुँच जाते हैं।

इसट्रो: रोडन्टेटस —यह जोंक पेट के नीचले हिस्से (Peritonial cavity) में पैठ जाता है, जो टीयूनीका भेजाईनलीस नामक पर्दे में अखता करने के समय पूरे आकार का पाया जाता है और कभी-कभी पेट के हिस्से में पाया जाता है।

इस्ट्रोनः इक्वाइनस :—यह जोंक भी आँत के भीतर होकर जाता है और पेट के नीचले हिस्से में घूमता है और वहाँ कभी कभी कलेजा, (Liver) फेफड़ा (Lungs) और पैन्करीयस (Pancreas) में देखा जाता है।

इस्ट्: भलगेरीस—यह जोंक आँत होकर जाता है और मैसेंट्रीक के खून की नलियों में प्रवेश करता है और वहीं बढ़ता है, जिसका परिणाम खून के नालियों का बन्द होजाना होता है।

अन्त में ये तीनों प्रकार के जोंक आँत में लौट आते हैं। आँत के परदों में सट जाते हैं और खून चूसते हैं। ये दूसरे जोंक की तरह भूरे खून नहीं निकालते हैं। यदि वे धोये जाते हैं, तो उनके रंग उजले और आंत के रंग भूरे या काले होते हैं। तब वे बड़े हो जाते हैं और अन्डे देते हैं।

कद —एस: भलगेरीस मादीन २४ मी० मे० और नर १५ मी० मे० लम्बा होता है। एस: इकवाइनस मादीन २०-२५ मी० मे० और नर १८-३५ मी० मे० लम्बा होता है।

एस: ऐडनेटेटस मादीन ३३-३६ मी० मे० और नर २३-२५ मी० मे० लम्बा होता है ।

लक्षण :—सबसे बुरा लक्षण देखने में तब आता है जब एस: भलगेरीस आँत के रक्त नलियों में प्रवेश करता है ।

अचानक पेट का दर्द शुरू होता है, जो कुछ ही देर तक ठहरता है। इस प्रकार के पेट दर्द में मृत्यु का डर अधिक रहता है। इसमें पतला दस्त नहीं होता है, जब तक इसके साथ सीलीकौसटोम नहीं मिल जांय। रक्त चूसने के कारण जो लक्षण प्रगट होते हैं, वे सदा नहीं देखे जाते। एस: ऐडेनटेटस दाहिनी तरफ के बड़े आँत में अधिकतर पाये जाते हैं, जिसकी वजह से आँत को मांस पेशियों में बहुत नुकसानी पहुँचती है। एस: इक्वाईनस अधिकतर इस स्थान पर नहीं पाया जाता है लेकिन थोड़ा-थोड़ा पाया जाता है। एस: भलगेरीस अधिकतर सीकम में पाया जाता है ।

इलाज या चिकित्सा :—वोनापोडीयम का तेल इसमें दिया जाता है ।

कारबन टटेरा कलोराइड भी बहुत लाभदायक औषधि है । जिसकी खोराक २५ से ५० सी० सी० तक है इस दवा के देते समय या देने के बाद कोई जुलाब नहीं देना चाहिये ।

(४) ऑक्स यूरीडी।

बहुत प्रकार के जोंक जो घोड़ों में पाये जाते हैं, उन में से एक ऑक्सी यूरस इक्वाई भी है इसके सामने के शरीर का शकल गोलाई लिये हुए होता है और मादीन के अन्त का छोर चाबूक के समान होता है।

इसके रहने का स्थान :—बड़े जोंक बड़े आँत (Caecum and colon) में पाये जाते हैं।

इसकी जीवनी :—मादीन जब बड़े आँत को छोड़ती है तब अन्डे देती है और बाहर आ जाती है। जिनमें बहुत सी गुदा मार्ग के निकट ठहर जाती हैं, जो पूँछ द्वारा दबाये जाते हैं अन्डे लसलसे पिन्ड के समान पूँछ के नीचे देखे जाते हैं। मादीन तब मर कर सूख जाती हैं। अन्डे अधिकतर गर्म चमड़े पर बढ़ते हैं। ४८ घन्टे के अन्दर वे एक ढकन से ढक जाते हैं और चार से आठ दिन के बाद अन्डे चमड़े से नीचे गिर जाते हैं और खाद्य के साथ दूसरे-दूसरे स्थानों पर फैल जाते हैं इन अंडों के बढ़ने के लिये कोई आवश्यक पदार्थ नहीं हैं। लेकिन हवा (Oxygen) बहुत आवश्यक है। अन्डे खाये जाने पर छोटी आँत में जमा हो जाते हैं और फिर बढ़ते बढ़ते सीकम में जा कर स्थायी हो जाते हैं। अन्डे जब तक हवा में नहीं पहुँचते, नहीं बढ़ सकते हैं और इसी वजह से अधिक रोग फैलता है।

कीड़े का कद—मादीन ४० से १५० मी० मे० और नर १० मी० मे० लम्बे होते हैं। मादीन का कद कोई ठीक नहीं होता है।

लक्षण—गुदामार्ग का भींगा रहना, खुजलाहट और दुम का रगड़ना। कीड़े कुछ जानवरों को दुबला कर देते हैं जब ये बड़े आंत के पीछले हिस्से में गर्भावस्था में फिरते हैं तब एक विषविषाहट पैदा करते हैं। ये बच्चे बहुत रक्त चूसते हैं। जिसके कारण अधिक नुकसानी पहुंचा सकते हैं।

इलाज या चिकित्सा:—चीनापोडीयम का तेल मुख द्वारा खिलाने से अधिक लाभ देखा जाता है। गुदामार्ग से दवा नहीं देने से कोई लाभ नहीं होता है क्योंकि गर्भवती कीड़े तक दवा नहीं पहुँच सकती। रोग ग्रसित जानवरों के लीद को उठा कर गाड़ देना चाहिये।

५ हेटारा कीड़ी (Hetra Kidae).

इस प्रकार के कीड़े मुर्गी के चेंगने के आंत में पाये जाते हैं।

६ इस्ट रौनजीलीडी (Eustrongylidae)

इस प्रकार के कीड़े कुत्तों के गुर्दे में तथा दूसरे जानवरों में पाये जाते हैं। ये कीड़े एक मीटर तक लम्बे होते हैं।

७ ट्राईकैनेलीडी (Trychinellidae).

इस प्रकार के कीड़े की जाति को ट्राईचीनेला इसपाइरेलीस (Trychinella Spirallis) कहते हैं। यह छोटी अवस्था में सुअरों के मासों में पाये जाते हैं। मनुष्यों को भी कभी कभी ये कीड़े इन जानवरों के मांस खाने से हो जाते हैं।

(ख) एकैनाथोकेफला

इस जाति का प्रधान कीड़ा एकाईनीरीकंस जाइगस है जो सुअर के बच्चों में पाया जाता है।

रहने का स्थानः—छोटी आंतों में।

२ एनीलीडा

(क) हीमोपीस सेनगबीसुगा—घोड़ों के जोंक।

(ख) हीरुडो मेडीशीनैलीस—दवाखनाने के जोंक।

ये खून चुसने वाले होते हैं और शरीर के जिस भाग को पकड़ते हैं उस भाग पर जखम कर देते हैं। ये पानी में रहते हैं, बच्चे जोंक, पानी के सतह पर तैरते हुए देखे जाते हैं, जो बड़े होने पर कादों में गड़ जाते हैं।

वे जानवरों के मुंह नाक और घोड़ों के पैर में लग जाते हैं जब घोड़े गढ़े इत्यादि में जिनमें जोंक रहते हैं, चरते हैं।

इलाज :—जोंक जो शरीर में लग जाते हैं, उनको चूंटे द्वारा खींच लेना चाहिये और वे जो शरीर को नहीं छोड़ते हैं उनको कड़े नमक के पानी से स्पोनज में बोथ कर छुलाने से शीघ्र छोड़ देते हैं।

जोंक की बीमारी और जोंक द्वारा ग्रसित जानवर:—

१०० में ६५ जानवर जोंक से ग्रसित होते हैं। इनकी जाँच के लिये लीद को खुर्दबीन में देखना चाहिये। जोंक के

अन्डे अथवा जोंक की खोज करनी चाहिये। हरेक जोंक के अन्डे अनेक प्रकार के होते हैं, और इनको पहचानने के लिये इनको जानना बहुत आवश्यक है।

जोंक को देखने की विधि

पेट से जोंक निकालने के लिये नीची लिखी औषधि व्यवहार की जा सकती है।

जानवर को ३६ घण्टे तक उपवास करा कर इस औषधि को पिलानी चाहिये।

अजवाईन का सत (Thymol) १$\frac{1}{2}$ औंस
कोलोरोफौरम (Chloroform) ३ ,,
तारपीन का तेल (Oil. terbin) २ ,,
तीसी का तेल (Oil. Line) २ पाईन्ट।

कीड़े के अण्डे को किस प्रकार देखा जाता है।

१ तरीका (नियम) :—सब से आसान तरीका यह है थोड़ा गोबर लेकर एक शीशे पर फैला देना चाहिये, उसके कवल गोबर को थोड़े पानी या नमक के पानी में मिलाकर तब खुर्दबीन में देखना चाहिये।

२ नियम :—दो ग्राम ताजा गोबर १६ सी० सी० साफ पानी में मिलाकर, चलनी से जिसके छिद्र बहुत बारिक हों छान देनी चाहिये।

छाने हुए पदार्थ दो शीशी में कर देनी चाहिये और उसमें उसी के बराबर चीनी का पानी मिला देना चाहिये। इस तरह का सल्युसन (Solution) १ पौन्ड चीनी और १५ औंस पानी में मिला देना चहिये।

तब उस शीशी को २०० मीनट चक्कर मारने वाली हाथ मशीन पर सेन्टरीफीउज करना चाहिये।

एक पलासटरसीन पेंसिल के आकार का उसको ढाँपा हुआ शीशे के डिब्बे में दाब कर रखना चाहिये जिसका आकार सेन्ट्रीफ्यूज के नल से कम न होना चाहिये तब डिब्बे को उठा कर नल में देना चाहिये जिससे नल के भीतर रखा हुआ पदार्थ उसके साथ लग जाय। तब दोनों को हटा कर शीशे के सलाइड पर देना चाहिये।

तब उसको खुर्दबीन में देकर जाँच करनी चाहिये। यदि इच्छा हो तो अण्डे को गिन लिया जा सकता है।

इस प्रकार इन जोंको का जानवरों के शरीर में पैठना बोध होता है। जिससे घोड़ों में हर दर १ से ३ अण्डे तक एक एक शीशे में पाये जाते हैं, और जिन जानवरों में अधिक जोंक होते हैं वे प्रायः ६ अण्डे तक देखे जाते हैं।

इस्ट्रोनजाइलस के अण्डे से सीलीकौसटोम के अण्डे शीघ्र पहचान में आ जाते हैं। लेकिन इनके शरीर में पैठने के नियम एक ही हैं। दोनों की चिकित्सा करीब करीब एक ही है।

४ नियम—एक बीमार जानवर का गोबर अल्प मात्रा में एक शीशे के जार में जिसका ढक्कन पेचीला हो लेकर उसे भूरे कागज में लपेट देना चाहिये और उसको अन्धेरे और गर्म स्थान में कुछ रोज तक रख देना चाहिये तब उस जार को खोल देना चाहिये, और गोबर को छूरी से लेकर सलाईड पर लगा देना चाहिये, जो पहले से गर्म पानी से भींगा हो। जाँच करने पर जोंक के बच्चे पाये जाते हैं। इन बच्चों को पहचानना आसान नहीं है।

चिकित्सा—माइक्रोफाइलेरीया नामक जोंक जो कुत्तों में पाया जाता है उसको हटाने के लिये Normal Saline Solution १ सी. सी. १० पौन्ड शरीर के वजन के हिसाब से, माँस पेसियों में सुई देने से विशेष लाभदायक होता है।

घोड़ों के कमल रोग (Piroplasmosis equine)

नाम—इसको कमल रोग, या बीलीयरी बोखार (Biliary fever) भी कहते हैं।

स्वभाव—यह रोग घोड़ों, खच्चरों और गदहों को होता है, इसके कीटाणु प्रोटोजूअन पैरासाईट (Protozoan parasite) कहलाते हैं, वे रक्त के लाल अणुओं (Red cropuscles) को नाश करते हैं, जिसके कारण रक्त बदल जाता है और भयानक कमल रोग बोखार के साथ उत्पन्न

होता है। यह हिन्दुस्तान में अधिकतर पाया जाता है जिससे अधिक हानि देखी गयी है। नियमानुसार खास खास जानवर ही इस रोग से ग्रसित होते हैं लेकिन कभी-कभी बहुत जानवरों में भी यह पाया गया है, खास कर जहाँ पर अधिक घोड़े इत्यादि रहते हैं।

किन किन स्थानों पर किन किन जानवरों को और कब कब यह रोग होता है:—गर्म या शुष्क देशों में यह रोग अधिक देखा गया है। यह चैत महीने से लेकर भादो तक, यानी वर्षा ऋतु के तुरत पहले या वर्षा के समय में अधिक होता है। साल के दूसरे दिनों में भी यह बीमारी हो सकती है, लेकिन कम होती है।

बाहर से लाये गये घोड़े जैसे अंग्रेजी और अस्ट्रेलियन घोड़े इस बीमारी से अधिक ग्रसित होते हैं और देश में लाने के थोड़े ही दिनों के बाद बीमारी उनमें हो सकती है, ये जानवर इस रोग को कम सहन करते हैं। अरबी घोड़ों में यह रोग कम होता है और देशी घोड़ों में अधिकतर नहीं होता है। घोड़ों को यह रोग अधिक सताता है, गदहों को उस से कम और खच्चरों को बहुत कम होता है।

जानवरों की तन्दुरुस्ती का इस रोग से कोई मतलब नहीं है, यह मोटे ताजे घोड़ों को भी उसी तरह हो सकता है जिस तरह

दुबले तथा बैठे हुए और काम में लगे हुए जानवरों को भी हो सकता है।

कीटाणु और उसके नियमः—यह रोग दो भिन्न भिन्न कीटाणुओं द्वारा उत्पन्न हो सकता है, जैसे (१) पाइरोपलाजमा या बैबेसिया (Piroplasma or Babesia) कैबेली (Caballi) और (२) नीवरेलीआ इक्वाई (Nurrellia Equi) पाईरो-पलाजम इक्वाई जो मवेशियों के कीटाणु पाइरोपलाजमा बाईजमीनम (Piroplsma Bigeminum) से बहुत मिलता जुलता है। यह एक बड़ा गोलाकर नासपाति के सदृश होता है, दुहरा नासपाति के आकार का अकसर देखा जाता है, और हरेक की लम्बाई ३ यू॰ ४म॰ तक होती है, लेकिन आकार उसी प्रकार का होता है। कुछ दिनों के बाद दूसरा आकार पाया जाता हैं, जिससे अजीब किस्म का पदार्थ बनता है। एक लाल रक्त अणु में चार बच्चे कीटाणु इस प्रकार पाये जाते हैं, जिनके देखने से × इस प्रकार का शक्ल नजर आता है। हरेक कीटाणु पाइरोपलाजमा कैबेली से कहीं छोटे होते हैं।

कीटाणु आसानी से खून में नहीं पाये जाते हैं, जब कि बीमारी का प्रथम ताप कम हो जाता है। किसी एक प्रकार के कीटाणुओं के द्वारा रोग एक स्थान पर हो सकता है और घोड़ों में दोनों कीटाणु पाये जा सकते हैं। नीवटेलिया इक्वाई के

बनिस्बत कैबेलीया से रोग साल के प्रारम्भ में हो सकता है। साल के हर समय में रोग होने की वजह यह भी है कि कीटाणु कई प्रकार के चमोकनों द्वारा उत्पन्न किये जाते हैं।

जब कीटाणु शरीर में प्रवेश करता है, तब वह रक्त के लाल अणुओं में प्रवेश करता है, और उनका नाश करना प्रारम्भ करता है। रक्त के लाल अणुओं को चूर कर दिया जाता है, और उनकी संख्या असली रुप से बहुत कम हा जाती है और किसी किसी में १।२ हिस्सा कम हो जाती है और उसके लौह अणु (Haemoglobin) रक्त-रस में बहते फिरते हैं। रक्त पतला और जल के समान हो जाता है और अधिक लौह अणु जीगर अर्थात कलेजे द्वारा पीत्त के रुप में बदल जाते हैं, इस कारण कमल रोग के लक्षण देखने में आते हैं और अधिक लौह अणु से मांस पीन्ड रंग जाते हैं।

इस रोग से प्रायः सैकड़े २० अणुओं की क्षति पहुँचाई जाती है और कभी इस से भी अधिक हो सकता है जब रोग का प्रकोप अधिक हो। कुत्ते और मवेशियों को इस रोग से सैकड़े ६० अणुओं की क्षति पहुँचाई जाती है और कुत्तों के अन्तिम अवस्था में प्रायः सब अणुओं में क्षति पायी जाती है।

इस के कीटाणु बीमारी के प्रथम चरण में पाये जाते हैं, लेकिन रोग के पूरे समय में कीटाणुओं का पाया जाना कोई जरूरी नहीं है। ऐसा देखा गया है कि बीमारी के लक्षण देखकर

रोग को पहचाना जा सकता है लेकिन कोई जरूरी नहीं है कि इसके कीटाणु रक्त जांच करने पर पाये जांय।

कीटाणु किस प्रकार अधिक संख्या में होते हैं इसका पता अब तक नहीं लगा है।

इसके कीटाणु वगैर रंगे हुए $\frac{१}{१२}$ लेन्स वाले खुर्दबीन में देखे जाते हैं, लेकिन एनीलीन रंग से रंग देने पर और साफ नजर आते हैं। बीमारी की ठीक जांच के लिये १-१०० मीथलीन बुलू के रंग से तथा १-१००० इओजीन (Eosin) से रंगना चाहिये। ५ सी० सी० इवोजीन के रंग को १ सी० सी० मीथलीन बुलू के रंग में मिलाना चाहिये। शराब (Alcohal) से ५ या १० मिनट तक भींगाने के बाद इस रंग से २० से ३० मिनट तक रंगना चाहिये। या इससे भी अच्छा रंग रोमन-वासकी (Romanowski) या लीसमैन (Leishman's) या जीसमा का (Gesma's) होता है।

रोग का प्रभाव—प्राकृतिक नियम जो इस रोग के फैलने का है, वह चमोकनों द्वारा होता है। जो दक्षिणी अफ्रिका में सिद्ध हो चुका है। लेकिन यह काटने से एक जानवर से दूसरे जानवर में जाता है, इसलिये चमोकनों को छोड़, इसका असली वजह काटने वाले कीड़ों तथा मक्खियों और मच्छड़ों द्वारा होता है, क्योंकि जिन दिनों में मच्छड़ और मक्खियां अधिक रहती हैं

उन्हीं दिनों में यह अधिक देखा जाता है, जैसे बरसात के कबल या बरसात में अधिक होते हैं। क्योंकि अच्छे स्तबलों तथा हर रोज मले जाने वाले जानवरों में चमोकन नहीं रहते हैं। इसलिये जिस प्रकार मनुष्यों में मलेरिया बुखार होता है, ठीक उसी प्रकार यह रोग भी होता है।

इस रोग में एक आक्रमण दूसरे आक्रमण से कुछ छुटकारा देता है, इस पर भी रोग की आशंका बनी ही रहती है। जानवर इस रोग से दूसरी बार बीमार पड़ सकता है, लेकिन बीमारी मामूली तरह की होती है। रक्त सदा दुषित रहता है और दूसरे जानवरों में देने से तुरत रोग उत्पन्न कर सकता है।

चमोकन द्वारा रोग १५ से १६ दिनों में शुरू होता है, और सुई द्वारा ५ या ६ रोज में आरम्भ होता है।

लक्षण और पहचान:— अधिक ताप होना इस रोग का प्रधान लक्षण है, पलक और मुख के भीतरी परदे इत्यादि का पीला हो जाना। आँख के परदों में हलदी के समान पीलापन का हो जाना, जो धीरे धीरे गाढ़ा होता जाता है और कुछ ही दिनों में नारंगी के रंग का हो जाता है। लाल लाल छींटे की तरह दाग आंख के भीतरी परदों में हो जाते हैं, जो धीरे धीरे बढ़ते हैं और आखिर में बड़े बड़े लाल धब्बे के समान हो जाते हैं। कुड़ कुड़ी का हो जाना इस रोग के विशेष लक्षण हैं।

इस रोग में बिराम ज्वर होते हैं, ज्वर का आक्रमण प्रथमावस्था में बड़े जोरों का होता है, जो १०५° से १०६° फ० तक होता है। पहले कुछ दिनों में ज्वर कम हो जाता है, यदि रोग साधारण हुआ तो ६ या १० दिनों में ताप ठीक हो जाता है। असाध्य रोग में कभी कभी बुखार कम हो जाता है और १४ से २१ रोज तक ज्वर ठीक नहीं हो सकता है।

पेशाब पीले रंग का होता है और कभी कभी बहुत पीला होता है, क्योंकि पीत के अंश मिश्रित रहते हैं।

पहले कब्जीयत रहती है, लीद भूरे रंग की आँव से मिश्रित रहती है तथा कभी कभी पेट में ममोर भी होता है।

नाड़ी ६० से ८० प्रति मिनट के हिसाब से चलती है, जो कमजोर, अनियमित और बारीक होती है। शरीर में पीती और पैरों में सूजन देखने में आती है।

जब रोगी प्रथमावस्था को पार कर जाता है और धीरे धीरे चंगा होने लगता है तब जानवर का शरीर बिना रक्त का मालूम पड़ता है और भीतरी परदों का रंग उसी प्रकार कुछ दिनों तक रहता है।

इस रोग के होने का कोई निश्चित समय नहीं है, यह कभी कभी अचानक हो जाता है, और कभी कभी दूसरे ज्वर

के बीमारियों के साथ भी होता है। इस प्रकार यह कभी साधारण प्रकार का होता है, जो कम दिनों तक ठहरता है और जिससे जानवर बहुत दुबला हो जाता है। दूसरी अवस्था जो इस रोग की है वह बहुत खतरनाक होती है, जैसे सरेसाम (Pneumonia) फेफड़े के परदे सहित फूल जाना, तथा अधिक दूर तक फेफड़े के ऊपर सूज जाना और जल प्रतीत होना। प्रत्येक दशा में दूसरे कीटाणुओं द्वारा ग्रसित होने से यह अवस्था होती है।

यदि चिकित्सा समय पर की जाय तो चंगा होने की अधिक सम्भावना है और कमजोरी अधिक नहीं होगी। बिना चिकित्सा के जानवर अधिक कमजोर हो जाता है और दूसरे रोग से भी ग्रसित हो सकता है।

मरे हुए जानवरों को फाड़ने से, मांस पेसियों का पीत्त द्वारा रंग जाना, रक्त का पतला जल सदृश हो जाना, भीतरी परदे पर दाग का दीखना और परदों में पीले या हलका लाली लिये हुए रंग का जल द्वारा भर जाना, कलेजे का बड़ा हो जाना, फूला हुआ दीखना, पीत्त द्वारा रंग जाना तथा तिल्ली का बड़ा और मोलायम हो जाना दीख पड़ता है। जोरदार बीमारी होने से दोनों फेफड़ों का सूजन दीखना तथा फेफड़े के परदे का सूजन का बोध होना, और उसमें दुर्गन्ध द्वारा भरा रहना दीख पड़ता हैं। किसी कसी रोग में कमल का सूजन बोध होता है।

इस रोग की जांच के लिये जो एक तरीका निकाला गया है वह इरीथरोसाइटस (Erythrocytes) जो इस रोग में होता है उसको खतम कर देता है।

नीचे लिखे नियमों को काम में लाया जा सकता है:-दो बराबर शीशी (Tube) जिसमें काग लगा हुआ हो और जिसमें १५ सी० सी० तक दवा रह सकती हो लेनी चाहिये, सैकड़े ५ के हिसाब का बना हुआ सोडियम साईट्रेट का लोसन २ सी० सी० के अन्दाज एक ट्यूब में ढांक देनी चाहिये। तब जगुलर भेन (Jugular vein) में सुई घुसाना चाहिये, जिस प्रकार की सुई दी जाती है, उस सुई में रबर ट्यूब लगी रहे और वह रबर ट्यूब शीशे की ट्यूब से मिली रहे, जब रक्त चलना शुरु हो जाय तो १० सी० सी० रक्त आने देना चाहिये, फिर रबर ट्यूब को दबा कर बन्द कर देनी चाहिये।

अब उस टीयुब में १२ .सी० सी० तरल पदार्थ है, जिसमें २ सी० सी० साईट्रेट का सलुसन है और १० सी० सी० रक्त है। अंगूठे को टीयुब के मुंह पर रख कर दो तीन बार टीयुब उलट पलट कर रक्त और दवा को मिला देनी चाहिए। साइट्रेट के कारण रक्त जम नहीं सकता, तब टीयूब को कुछ घन्टों तक खड़ा कर के छोड़ देना चाहिये और हिलाना चाहिये। इस तरह कौरपस कुलर पदार्थ उसमें नीचे बैठ जायगी और उस पदार्थ के ऊपर में $\frac{१}{१०}$ सी० सी० में देखी जा सकती है।

यदि इच्छा हो तो दूसरी टीयूब को स्वस्थ पशु का रक्त देखने के लिये रख सकते हैं।

स्वस्थ पशुओं की कौरपस कुलर, ३·२ से ३·५ सी. सी. तक की ऊंचाई में पायी जाती है।

बिलियरी बोखार (Biliary fever) के रोगी से यदि रक्त लिया जाय, तो कौरपस कुलर की ऊंचाई टीयूब में, तन्दुरुस्त जानवरों के बनिस्बत कम रहेगी, और जिस प्रकार की नुकसानी कोरपसकुलर की रहेगी, उसी प्रकार ऊंचाई भी टीयूब में रहेगी, जैसे १ सी. सी. से २.५ सी. सी. तक रह सकती है।

यदि रक्त की जांच बीमारी के शुरू में की जाय, तो सीरम (Serum) रक्त के दुषित हो जाने के कारण, और होमीयोगलोबीन जो रक्त से अलग होते हैं, सीरम को रंग देते हैं और जितनी संख्या में हेमीयोगलोबीन रहती है उसी प्रकार उसका रंग भी रहता है। तन्दुरुस्त जानवर का सीरम ललछाह के रंग का होता है।

यह देखा गया है कि रोग के आरम्भ में रक्त की अधिक नुकसानी होती है और यदि दो तीन दिन तक रक्त जाँच न की जाय तो फिर रक्त असली तरह का पाया जाता है।

१. बीमारी से बचने का उपाय:—बीमार जानवर को हटा कर ठण्ढे हवादार और फैलाव स्तवल में रखना चाहिये। जहां तक अलग रखा जा सके। रोगियों का स्तबल उतनी दूरी पर होनी चाहिए बीमारी की हालत में जब कीटाणु शरीर के अन्दर बहुत बड़ी तायदाद में रहते हैं तब मक्खियों पर पूरा ध्यान रखना जरूरी है क्योंकि मक्खियों और मच्छड़ों द्वारा रोग के दूसरे निरोग जानवरों तक फैल जाने की आशंका रहती है।

२. रोगी को धूप से बचाना बहुत जरूरी है, ठण्ढा लगने से रोग बढ़ता है। यदि मैदान में रोगी को हटाया जाय तो, उसे गाछ के छांह या छपरी के नीचे रखना चाहिये।

३. बीमारी के दिनों में, यदि कोई पशु चारा खाना छोड़ तो उसको अस्पताल तुरत ले जाना चाहिये।

४. स्तबल के चारों तरफ जहां पर रोगी रहा हो किसी प्रकार का गड़हा इत्यादि यदि पास में हों तो उसे भर देना चाहिये, जिससे मक्खियों या मच्छरों को बढ़ने का मौका न मिले और पानी के निकास के लिए नाली का इन्तजाम कर देना चाहिये। खाद या कूड़े वगैरह का ढेर नहीं लगने देना चाहिये और खाद के लिये अलग हट कर गड़हा बनाना चाहिये।

५. मच्छरों और मक्खियों को जिस प्रकार हो सके उस प्रकार काबू में लाना चाहिये।

चिकित्सा :—रोगी की सेवा पर विशेष ध्यान देनी चाहिए। रोगी को कम से कम दिन में दो बार देखना चाहिये और बुखार के रेकार्ड के लिये एक तख्ता टांग देना चाहिये। उसपर बुखार का ताप क्रम लेकर लिख देना चाहिये, जिससे बुखार की हालत मालूम होती रहे।

आसानी से पचने वाला खाद्य पदार्थ देना चाहिये, जैसे तीसी या चिकना की लप्सी (Mass) लुसरन और हरी-हरी दूब घास देनी चाहिये।

कांजी जितनी पी सके उतनी देनी चाहिये। कम्बल से शरीर को ढांक कर रखना चाहिये और पानी में सीरका मिला कर, झाड़न भींगा कर, गार कर, देह पोंछ देना चाहिये। मक्खी और डांस इत्यादि को जिस प्रकार हो हटाते रहना चाहिये। इसके लिये कड़ी महकने वाली औषधि, जैसे फेनाइल इत्यादि काम में लायी जा सकती है। पीअर पाईन का तेल, सिर पर पैर में और पेट के नीचे लगाने से मक्खियां नहीं बैठती हैं। कुनाइन इस रोग में फायदा करता है। पहली खोराक बड़ी मात्रा में देनी चाहिये। मैंगनेसीया सलफेट तीन से चार औंस तक पीने के पानी में दिया जा सकता है, कलोराईड औफ एमोनिया, नाईट्रेट पोटास और वेलेडोना दिया जा सकता है। ताकत की दवा जैसे स्प्रीट ऐमन ऐरोमेट दिया जा सकता है। यदि और कोई लक्षण हो तो उसकी उसी प्रकार चिकित्सा करनी चाहिये। जो रोगी चंगा होने की हालत में हों या कमजोर हों उसे आरसेनीक और आएरन टौनीक दिया जा सकता है और सबेरे शाम थोड़ा थोड़ा टहलाना चाहिये या चरने के लिये छोड़ देना चाहिए (धूप में नहीं) और दाना में जई मिला कर देना चाहिये।

इस रोग की चिकित्सा :—दो औषधियां इस रोग के लिये उपयोगी सिद्ध हुई हैं, पहली पीली एसिड हाईड्रोब्रोमाईड औफ

क्वीनाइन (Yellow acid of Hydrobromide of Qunine) और दूसरी टाटरइमेटीक (Tateremetic) दोनों औषधियां खून की नल्ली में सुई द्वारा दी जाती हैं, जिसमें पहली औषधि अधिक कामयाब सिद्ध हुई है। पहली के लिये एक ड्राम क्वीनाईनएसीड हाईड्रोबोमाइड को एक औंस डीसटील्ड जल में मिश्रित करके जगुलर भेन (Jugular Vein) में देनी चाहिये। कभी-कभी इससे जानवरों को नशा हो जाता है, उसके लिये $\frac{1}{2}$ से १ ग्रेन तक इस्ट्रीकनीन (Strychnine) चमड़े के अन्दर सुई द्वारा देने से नशा खतम हो जाता है। जोरदार बीमारी में इस्ट्रीकनीन देकर क्वीनाईन की सुई देनी अच्छी होती है।

रोगी के खून की जाँच होने के कबल ऊपर लिखी औषधियों को दिया जा सकता है। जब यह पूरा पता चल जाय कि ठीक वही रोग है तब देनी चाहिये। इस दवा के देने के कुछ ही घन्टों में रोगी का बुखार कम होने लगता है और चारा उठाने लगता है। इस सुई को देने के पहले नमक का पानी (Normal Saline solution) (साढ़े चार ग्रेन नमक और एक औंस डीसटील्ड जल में मिश्रित करने से बनता है) देना चाहिये, फिर दवा के बाद थोड़ा नमक का पानी देना जरूरी है, ताकि कुनाईन का एक बुन्द भी खून के नल्ली के बाहर न गिरे वरना फोड़ा निकल जाने का डर रहता है, जो शीघ्र आराम नहीं होता है।

टाटर इमेटीक—यह औषधि भी ठीक पहले बताये हुए मोताबिक खून की नल्ली में दी जाती है। इसकी खोराक ३० से ६० सी. सी. तक सैकड़े १°|. सलीयूसन होनी चाहिये, जो डीसटील्ड जल में उबाल कर बनायी जाती है। पहली दवा से रोग में कम लाभ है, लेकिन इससे नशा लगने का डर नहीं है। सुई ठीक उसी तरह देनी चाहिये, जिससे एक बुन्द भी औषधि रक्त की नल्ली के बाहर न गिरे नहीं तो फोड़ा निकल जाने का डर रहता है।

कमजोरी—इस रोग से कमजोरी ३ से ४ हफ्ते या कुछ महीनों तक रहती है, यदि जानवर से अधिक काम लिया गया या ठण्ढा वगैरह वेसी लगा तो फिर रोग हो सकता है। इसलिये जानवर को आराम तथा अच्छा स्थान देना चाहिये, और बीच बीच में पुस्टई भी देना जरूरी है।

लाल पेशाब (पशु) (Bovine Piroplasmosis)

इसके नाम :—लाल पेशाब करना, बोखार।

रोग के स्वभाव :—यह रोग खासकर पशुओं को होता है। यह एक कीटाणु द्वारा होता है जिसको प्रोटो जूअल पैरासाईट कहते हैं, यह रक्त के लाल अणुओं पर धावा करता है, जिसके कारण रक्त में रद बदल हो जाता है और बुखार भी रहता है, इस रोग में पेशाब का रंग लाल हो जाता है, जिस वजह से इसका नाम लाल पेशाब कहा गया है।

फैलाव —यह रोग सारे संसार में फैला हुआ है। इसके कीटाणु परोटोज़ुअन (Protozoan) कहलाते हैं और चमोकनों द्वारा तमाम फैलते हैं। यह हिन्दुस्तान के हर जगहों में होता है।

कीटाणु और उनके फैलने के नियम :—कीटाणु जो पाइरो पलाजमा (Plroplasma Bigeminum) कहलाते हैं उन्हें बैबेसीया बाईजेमीनम (Babesia Bigeminum) कहा जा सकता है। कीटाणु जो गर्म देशों में देखे जाते हैं उनका आकार नासपाती की तरह होता है जो सदा जोड़े में देखे जाते हैं जिनका सिरा एक दूसरे से मिला रहता है। हरेक की लम्बाई ४ यू० होती है जिसमें साईटोपलाजम रहता है और किसी रक्त के रंग से नीला रंग जाता है। एक या दो क्रोमोटीन (Chromotin) पदार्थ जो होता है, वह लाल रंग जाता है। दूसरे आकारों के भी ये कीटाणु पाए जाते हैं, जैसे गोल या टेढ़े मेढ़े आकार के, अंगूठी के आकार के एक एक करके भी अलग अलग मिलते हैं।

यूरोप देश के इस बीमारी के कीटाणु और गर्म देश के बीमारी के कीटाणुओं में बहुत फर्क होता है और कभी-कभी समान फर्क भी होता है। बीमारी से बचने की शक्ति जो यूरोप को इस रोग में हासिल है, वह गर्म देश के रोग के प्रति कुछ प्रभाव नहीं दिखला सकती। यूरोप देश के इस रोग के कीटाणु (Piroplasma Divergens)। पाइरोपलाज़मा डाइभरजेनस कहते हैं।

इन कीटाणुओं द्वारा सैकड़े में १ से लेकर ५० तक लाल अणुओं पर खराबी पहुँचाई जाती है, इस रोग का असर अधिक उम्र के जानवरों के ऊपर रहता है, जैसे बच्चे जानवरों की अपेक्षा बड़े जानवरों को यह रोग होता है। बीमार जानवर के रक्त को तन्दुरुस्त जानवर के रक्त में सुई द्वारा देने से रोग हो सकता है। रोग से चंगा हो जाने पर भी बरसों उस जानवर द्वारा दूसरे जानवरों में रोग होने की आशंका रहती है। स्वभावतः यह रोग अधिकतर चमोकनों द्वारा फैलता है।

रोग के लक्षण और निर्णय—यह रोग शीघ्र आराम भी हो जाता है और कभी-कभी आराम होने में बहुत समय भी लेता है, जिस देश में यह रोग अधिकता से होता है और जानवरों के द्वारा फैलता है वहां कमजोर जानवरों को हो सकता है, साधारणतः इस रोग में ताप बड़े जोर का होता है, जो १०६° से १०७° फरन हाईट तक होता है। चलने फिरने में जानवर काँपता है, आँख से पानी इत्यादि चलता है, मुंह से लार टपकता है, पहले दस्त में कब्जियत होती है, फिर पीछे पतला दस्त, और आँव गिरने लगता है, और पेशाब लाल होता है। पेशाब कभी-कभी हलका और कभी-कभी गाढ़ा लाल होता है। आँख तथा मुंह के परदे पीले (रक्त रहित) देखने में आते हैं। कभी-कभी फेफड़े की सूजन भी हो सकती है, और इससे ८ रोज के भीतर जानवर मर जाता है।

पुराने रोगी जो बहुत रोज से बीमार रहते हैं, शीघ्र चंगा नहीं होते हैं, ताप पारी पारी से आती है, रक्त की अधिक कमी रहती है और जानवर दिन पर दिन सूखता जाता है। मुंह और आँख के परदे जाँच करने पर पीले नजर आते हैं और कभी-कभी छींटे भी देखने में आते हैं। कोई जरूरी नहीं है कि उनका पेशाब लाल हो, लेकिन पेशाब में अलबूमेन (Albumen) मौजूद रहता है। कब्जियत, या पतला दस्त बना रहता है और दूध वाली गायों में दूध की कमी हो जाती है। रोगी की मृत्यु कमजोरी से या कमल (Heart) रोग से होती है।

मरने के बाद का लक्षण :—रक्त पानी के समान दीखता है, तिल्ली या पील्ही बड़ी हो जाती है, कलेजा का बड़ा हो जाना, पीला नजर आना और वहाँ की चरबी का खराब हो जाना दीखता है। बाहरी-भीतरी परदों में छींटे के समान दाग नजर आते हैं। जो जानवर कुछ हफ्ते तक बचे रहते हैं उसकी तिल्ली प्राकृतिक रूप में आ जाती है

खून को खुर्दबीन में जाँच करने पर बीमारी की परख ठीक ठीक होती है।

रोगियों की चिकित्सा तथा इस रोग से बचने का उपाय—बीमार से चंगा हुए जानवर का थोड़ा रक्त लेकर यदि स्वस्थ जानवर को सुई द्वारा दिया जाय तो कुछ दिनों तक उसको

बीमारी नहीं हो सकती है, लेकिन देखा गया है कि इस कायदे से कुछ विशेष लाभ नहीं होता है।

इसलिए यदि इस रोग को हटाने की इच्छा हो तो पहले जानवरों के शरीर से चमोकन हटाने की कोशिश करनी चाहिये। इस काम के लिये एक खास गढ़ा हो जिसमें दो पाउन्ड संखीया (Arsenic Acid) दो पाउन्ड गन्धक और ४ पाउन्ड मोलायम साबुन, इन सबों को १० गैलन गर्म जल में मिलाकर, फिर १०० गैलन ठण्ढा जल में मिला देना चाहिये। गढ़ा यदि सीमेनटेड हो तो और अच्छा होता है, उसमें जानवर के मुंह में जाबी लगा कर, खड़ा कर खूब रगड़ कर, धोना चाहिये और सब चमोकन को हाथ से खींच खींच कर उसी में डाल देना चाहिये। जानवर को डुबाने के बाद बाहर लाकर देह खूब सुखा देनी चाहिये, जिससे वह अपने बदन को चाटे भी तो जहर असर न करे और उस स्थान पर चरने नहीं देना चाहिये। दवा में डुबाने के पहले यह याद रखना चाहिये कि किस जाति का चमोकन है और किन-किन दिनों में जानवरों के शरीर पर रहता है। जिस स्थान पर अधिक चमोकन हों उस स्थान पर घास देकर जला देना चाहिये और कुछ रोज तक उन स्थानों पर जानवरों को जाने नहीं देना चाहिये। (Gammanane) के व्यवहार से भी चमोकन नाश किए जाते हैं।

बीमार जानवरों को १°।ₒ के टारईपेनबुलू सौलुयसन १०० सी० सी० के मात्रा में, रंग में चमड़े के नीचे सुई द्वारा देने से विशेष लाभ पाया गया है। नेअर कम्पनी का (Acaprin) एकैपरीन भी लाभ पहुँचाता है।

पाइरोप्लाजमा मुटन्स (Piroplasma Mutans) दक्षिणी अफ्रिका में यह देखा गया है कि जो जानवर वहाँ बाहर से आते हैं, उनमें देशी जानवरों से खून लेकर सुई देने से तीन प्रकार के ताप नियमित समयों में आने लगते हैं।

१. पहला ताप ८ से १० रोज के अन्दर आता है जिसका कारण पाइरोप्लाजमा बाइजेमीनम है (Piroplasma Bigeminum) है।

२. दूसरा ताप २६ से २८ रोज के अन्दर आता है, जिसका कारण एनाप्लाजमा मारजीनेली (Anaplasma Marginale) है।

३. तीसरा ताप ४० रोज के अन्दर आता है, जिसका कारण पाइरोप्लाजमा मुटनस (Piroplasma Mutans) है।

करीब करीब अफ्रिका के सब मवेशियों में, पाइरोप्लाजमा मुटन्स पाया जाता है, और कहीं कहीं पर मामूली असर भी

दिखाता है, हालांकि लाल पेशाब के रोग के समान रोग पैदा करने की शक्ति रखता है, लेकिन इससे कोई क्षति नहीं देखी गई है। पेः मुटन्स हिन्दुस्तानी जानवरों के रक्त में भी पाये जाते हैं। शायद ही इससे कभी नुकसानी देखी गई है। इन रोगों का आक्रमण तब होता है, जब सीरम और भाइरस द्वारा जानवरों को चेचक के रक्षार्थ सुई दी जाती है। इसके कीटाणु बाइजेर्मानम से छोटे होते हैं और इस्ट कोस्ट फीवर के कीटाणु के आकार के होते हैं, और कभी कभी उस कीटाणु के साथ गड़बड़ हो जाता है लेकिन इसका आकार अण्डाकार और अल्प बिराम सदृश होता है। ठीक लाल पेशाब के समान यह रोग एक दुसरे को सुई के तरह से होता है, और चंगा हुए जानवर भी बीमारी के कीटाणु को ढोते हैं।

ऐनापलाजमोसीस

एनापलाजमोसीस बहुत छोटे छटे कोकस के समान पदा हैं, जिनकी मोटाई ०·१ से ०·६ यू० तक होती है और अधिकतर रक्त के अणुओं के एक सीरे पर होते हैं और कभी मध्य में होते हैं। इसलिये इनका एनपलाइजमा किनारे का तथा ऐनायपलाजमा मध्य का नाम दिया गया है। नियम है कि १०० में २ से १५ तक रक्त धाराओं पर यह धावा करता है, और कभी १०० में ५० तक भी धावा बोलता है। यह कीटाणु रक्त को

अधिक क्षति पहुँचाता है। एक से दूसरे चमोकनों तथा किसी काटने वाले कीड़ों द्वारा होता है जो जानवरों के शरीर पर सदा पाये जाते हैं। रोगी के रोग ग्रस्त होने के २५ से २८ रोज के अन्दर लक्षण प्रगट करता है। जिस देश में यह रोग अधिक फैला हुआ है, वहां पर के जानवरों जैसे बछड़ों इत्यादि में, इस रोग के प्रति पूरी सहनशक्ति आ जाती है और पाइरो-पलाजमोसीस (Piroplasmosis) के रोगों से इसमें भेद है, क्योंकि यह रोग भेड़ों और बकरों में भी हो सकता है। भेड़ बकरों में सिर्फ मामूली बुखार इस रोग से होती है। इस रोग की उत्पति चमोकन से होती है और लाल पेशाब रोग के साथ होती है।

लक्षण—यह साधारण रोग है लेकिन कभी कभी प्राणघातक भी हो जाता है। इसमें भूख एकदम मन्दी हो जाती है, जानवर दिन पर दिन सूखता जाता है, चमड़े पीले रंग के दीख पड़ते हैं और सूख जाते हैं, आंख और मुंह का पर्दा पीलापन लिये हुए होता है, शरीर के नीचले हिस्सों में सूजन हो जाते हैं, मुंह से लार गिरता है, पहले कब्जीयत होती है और पीछे पतला दस्त होने लगता है, पेशाब हरदीयाना रंग का होता है, और लाल रंग का कभी नहीं होता है। इस रोग से १०० में १० से २० तक की नुकसानी होती है। अच्छे हुए जानवर के शरीर में भी कीटाणु रहते हैं। इन रोगों में कारबन टेटराकलोराईड दो चार ड्राम तक तीसी के तेल के साथ देने से फायदा करता है।

इस्ट कोष्ट की बुखार (EAST COST FEVER)

इसके नाम—रोडेसीयन लाल पेशाब, रोडेसीया में होने वाली चमोकन से बुखार, गर्म देशों की लाल पेशाब।

यह एक साधारण चमोकन से होने वाली बीमारी है जिसके कीटाणु का नाम थैलेरीया प्रभा (Thaileria Parva) है। यह रोग बहुत कसरत से पूर्वी और दक्षिणी अफ्रीका में होती है। यह मिश्र तथा टरैन्स कौकेसिया में भी होती है। चमोकन की जिस जाति से यह रोग होती है वह जानवरों के शरीर पर कभी कभी रहता है, चमोकन के अण्डों द्वारा यह रोग नहीं फैलाया जा सकता है।

थैलेरीया प्रभा जो पाइरोपलाजम से सबसे छोटा कीटाणु है और पाइरापलाजम मेन्टस से बहुत मिलता जुलता है। जिसके (कीटाणु) शरीर की उन्नति कुछ तो चमोकनो के अन्दर होती है और कुछ जानवरों के शरीर में होती है। चमोकन से इनका सहवास होता है जिससे छोटे छोटे स्पोर के समान तैयार होते हैं, जो जानवरों के शरीर में काटने पर प्रवेश करते हैं और शरीर के अन्दर तील्ली में और गीलटीयों में जाकर बास करते हैं। वे रक्त के श्वेत अणुओं पर आक्रमण करते हैं और वहां पर सहवास के द्वारा कोचा पदार्थ (Kocha's Bodies) उत्पन्न करते हैं और यह पदार्थ फूट कर बहुत छोटे-छोटे कीटाणु हो जाते हैं, जो रक्त के लाल अणुओं पर आक्रमण करते हैं।

कोचा पदार्थ (Kocha's bodies):—कोचा के दाने नीले रंगके गोला या अण्डाकार होते हैं, जिनमें दाने होते जो इस रोग की एक विशेषता है। ये रोग के प्रथमावस्था में, तिल्ली तथा गिल्टीयों में पाये जाते हैं। साधारणतः इस्ट कोष्ट बुखार से १०० में ७५ लाख अणुओं पर आक्रमण होता है, लेकिन अणुओं पर अधिक हानि नहीं देखी जाती है और पेशाब में होमियों गलोबीन नहीं रहता है। यह रोग काटने से नहीं हो सकता है और बीमारी से चंगा हो जाने पर कीटाणु शरीर के अन्दर नहीं रहते हैं।

लक्षण—बुखार बहुत जोर का होता है (१०४° से १०८°फ.) सुस्ती, खांसी, कमजोरी, चलने में कम्प होना, मुंह से लार चलना, पहले कब्जियत पीछे पतला दस्त होता है, गिल्टियों का सूजन, कण्ठ का फूल जाना, बाहरी परदों का पीलापन, फेफड़े में फोड़ा हो जाना और परदे का सूजन। जनवर अपने भोजन पर तब तक रह सकता है, जब तक रोग अधिक नहीं हुआ हो। यह रोग ६ से २० दिनों तक रहता है। और इससे नुकसानी १०० में ६५ होती है।

मरने पर शरीर के अन्दर का लक्षण (Post Mortem appearance) चर्बियों का पीला हो जाना गिल्टियों का बड़ा होना और खास कर गर्दन और कण्ठ पर का रक्त का दाग, कमल और उसके पर्दों तथा मूत्राशय और पीत कोष पर ह जाता है, फेफड़े पर फोड़ा निकल जाना हवा की नली में फेन

का भर जाना जो नाक से बाहर निकलते हैं, चौथे पेट पर जख्म हो जाना, रक्त का दाग तमाम आंतों पर हो जाता है।

रोग को आसानी से दवा के पानी में बीच-बीच में डूबाने से (तीन रोज पर) हटाया जा सकता है जिसके वजह से चमोकनों का नाश हो सकता है। (Gammanane pouders) के व्यवहार से भी चमोकन का नाश किया जाता है।

कुत्तों के कमल रोग (Piroplasmosis Canis)

यह रोग हिन्दुस्तान में तमाम फैला हुआ है और कुत्तों का प्राण घातक रोग है और विशेष कर बाहर से लाये गए कुत्तों में अधिक होता है।

इसके नाम—कमल रोग या चमोकन से ताप

रोग का स्वभाव —यह कुत्तों का एक खाश रोग है जिसमें परोटोजुअल कीटाणु से रक्त के लाल अणुओं में बड़ी नुकसानी पहुँचाई जाती है जिससे रक्त खराब हो जाता है, बुखार रहता है और रक्त पतला हो जाता है और कमल (Heart) दूर्बल हो जाता है।

किन-किन देशों में यह रोग होता है – यह सारे हिन्दुस्तान तथा दच्छिणी यूरोप अफ्रीका और एशिया में होता है।

कीटाणु और उसके नियम —हिन्दुस्तान में दो प्रकार के कीटाणु पाये जाते हैं जिनके नाम पाइरोपलाजमा केनीस और पाइरोपलाजमा जीवसोनी है।

पाइरोपलाजमा केनीस (Piroplasma Canis) पाइरोपलाजमा जीवसोनी से बड़ा होता है यह रक्त के लाल अणुओं में पाया जाता है इसका आकार नाशपाती तथा मुद्रिका के सदृस होता है। कई एक कीटाणुओं द्वारा अणुओं पर आक्रमण देखा गया है जिसमें ८ से १२ किटाणु तक एक अणु में पाए गए हैं।

जैसी रोग की दशा होती है और जितनी बुखार रहती है उतनी ही रक्त अणु पकड़ाते हैं। साधारणतः इस रोग में १०० में ७०, लाल अणु के द्वारा ग्रसित पाए जाते हैं फिर पुरानी बीमारी में १०० में ३ या ४ ही ग्रसित पाए जाते हैं।

पाइरोपलाजमा जीवसोनी (Piroplasma Gibsoni) एक बहुत छोटा कीटाणु है और यह २० से भी अधिक संख्या में रक्त के लाल अणु पर आक्रमण करता है। इस तरह के रोग में मृत्यु अधिक होती है।

किन-किन जानवरों को यह रोग होता है:—कुत्ते के बच्चों तथा बाहर से लाये हुए कुत्तों में, देशी कुत्तों के बनिस्बत जोरदार बीमारी होती है। भारत देश के किसी प्रान्त में यदि एक कुत्ते को रोग हो गया हो और वह दूसरे प्रान्त में जाय तो फिर उसको वहाँ रोग हो सकता है। एक साल जो जानवर बीमार पड़ चुका है, वह दूसरे साल फिर बीमार पड़ सकता है। इसलिये यह नहीं समझना चाहिये कि बीमार पड़ने से उसमें सहन शक्ति आ गई।

कीटाणु शरीर में प्रवेश करने के ७ से १४ रोज तक में लक्षण प्रगट कर सकते हैं।

कीटाणु के शरीर में प्रवेश करने के नियम :— बीमार जानवर या बीमारी से चंगे हुए जानवरों का रक्त लेकर सुई द्वारा देकर देखा गया है; कि स्वस्थ जानवर को भी ये पकड़ सकते हैं।

लेकिन स्वभावतः यह रोग चमोकन के काटने से होता है और हिन्दुस्तान में दो प्रकार के चमोकन इस रोग के लिये प्रधान हैं जिनका नाम राइपीक फेलस सैनगवीनस (Rhipicephelus Sangainus) और हेनीफीसलीसभीसपीनोजा (Haene-physalisvispinosa) है। पहले नाम का चमोकन जिसके तीन घरवैया है जिसमें मादा चमोकन युवावस्था तथा बड़े होने में भी रोग उत्पन कर सकती हैं यह कुत्ते के शरीर में रोग उत्पन्न करके शरीर से नीचे गिर पड़ती हैं और घास के पत्तों में सट जाती हैं जब कुत्ते उधर से जाते हैं तब उनके शरीर पर चढ़ जाती है और रोग उसमें उत्पन्न करती हैं। फिर इस प्रकार जब चमोकन पूरा तैयार हो जाते हैं तो उस जानवर को छोड़ कर धरती पर गिर पड़ती हैं और दूसरे कुत्तों की प्रतीक्षा में रहती हैं और फिर उसमें रोग उत्पन्न करती हैं।

सहन शक्ति—एक मरतबे इस रोग से बीमार पड़ने से जानवर इस रोग के प्रति नीरोग नहीं हो जाते हैं वह दुबारे

बीमार पड़ सकते हैं। कीटाणु जो उसके शरीर के किसी भाग में रहते हैं जहां किसी प्रकार की कमजोरी पाते हैं कि तुरत घर दबाते हैं। बीमार कुत्तों के रक्त को स्वस्थ कुत्तों में सुई द्वारा देने से रोग की उत्पति हो सकती है।

यह देखा गया है कि चंगा हुए कुत्तों का रक्त सीरम (Serum) में प्रति विरोधी पदार्थ होता है और यह पदार्थ जब कीटाणु युक्त रक्त में दिया जाता है तो उससे कीटाणुओं का नाश अति शीघ्र होता है।

जांच—रोगी की सफलता पूर्वक चिकित्सा के लिये, रोग के निश्चय की आवश्यकता है। इसके लिये कुत्तों की बुखार रोज देखी जानी चाहिये, यदि कोई जानवर को १०२° फ. से अधिक बुखार हो तो उस पर शंका करनी चाहिये। रोगी के रक्त की परीक्षा करनी जरुरी है।

किसी एक झुण्ड कुत्तों की जब जांच हो तो, हफ्ते में दो बार बुखार देखना चाहिये और जिसको बुखार अधिक हो उनकी रक्त परीक्षा करनी चाहिये।

लक्षण—स्वभावतः रोग का पहला लक्षण है, अधिक ताप का होना जिसमें ताप १०४° फ० से १०६° फ० तक होता है।

बुखार के साथ कमजोरी रहती है, जानवर झेंपता रहता है और कभी कभी नाक से रक्त का गिरना भी देखने में आता है। आँख के पर्दे पहले ईंट के समान लाल होते हैं और दांत के

ऊपर के मसूड़े का भी रंग पीला हो जाता है और उसके बाद चीनी बर्तन के रंग के समान हो जाता है जिससे साफ मालूम होता है कि रक्त की कमी हो गई है।

कुत्ता भोजन खाना बन्द कर देता है और कभी कभी जल भी ग्रहण नहीं करता है। यदि बल पूर्वक कुछ खाना दिया जाता है तो तुरत उगल देता है।

शुरू में कब्जियत रहती है, पीछे पतला दस्त शुरु होता है और कभी कभी मल के साथ रक्त का अंश भी पाया जाता है।

तिल्ली का बढ़ जाना सदा नहीं पाया जाता, यद्यपि पुराने रोगियों में बढ़ते हुए पाया गया है। दबाने पर तिल्ली का पता लग जाता है और यदि बड़ा रहा तो छूने में कड़ा होता है।

सबसे विचित्र लक्षण यह है कि चमकते हुए पीले रंग का होता है और पेशाब से दीवाल और जमीन रंग जाते हैं। पेशाब कभी कभी होता है। स्वांस से बुरी गन्ध आती है और चमड़े रुखरे हो जाते हैं।

कुत्ता बहुत शीघ्र दुबला हो जाता है और कुछ ही दिनों में हड्डी दीखने लगता है। कमर में अधिक कमजोरी होती है और चाल में कम्प होती है। डाँड़ की कमजोरी बराबर रह जाती है, यहां तक कि जब कुत्ता चंगा हो जाता है तब भी यह देखी गयी है। आंख में मांड़ा हो जाता है

बीमारी बढ़ जाने पर रक्त जब निकाला जाता है तब उस का रंग पीला और पनीआहा होता है रक्त के लाल अणुओं में बहुत कमी पड़ जाती है लेकिन सफेद अणुओं में अधिक बढ़ती हो जाती है। जब रोग बढ़ जाती है, तब उलझने जैसे फेफड़े का सूजन (Pneumonia) हो जाता है जिससे फेफड़े में जल हो जाता है और मृत्यु हो जाती है।

पुरानी बीमारियों में:—रक्त अधिक खराब हो जाता है, शरीर में भारीपन तथा कमजोरी हो जाती है। कुत्ता बहुत शीघ्र थक जाता है और सदा पड़े रहने की इच्छा प्रगट करता है। रक्त की जाँच करने पर यह पता चला है कि १०० में तीन या चार अणुओं की हानि होती है। बुखार सदा अधिक नहीं रहता है, तीन चार दिन पर १०३° फ० के करीब बढ़ जाया करता है। कुत्ते से कड़ा काम लिया गया, ठण्ढा वगैरह लगा और खाना भी अच्छा नहीं मिला वैसी दशा में, स्वभावत: पहले बतलाये रोग का आक्रमण होता है, जो प्राण घातक होता है।

मरने पर शरीर के अन्दर के लक्षण—भीतर के परदे तथा आंत इत्यादि का रंग पीला या पीत द्वारा रंगा जाता है। तिल्ली बड़ी हो जाती है और गुर्दा का रंग बदल जाता है। आंत में कभी कभी खून के दाग पाये जाते हैं और फेफड़े के सूजन का भी चिन्ह वर्तमान रहता है।

चिकित्सा—सेवा सुश्रुसा ठिकाने से होनी चाहिये, जहां पर जानवर रहे वह स्थान और उसके आस पास की जगह खूब स्वच्छ

रखनी चाहिये, बिछावन अच्छा होना चाहिये, और स्वच्छ हवा का सेवन करना जरूरी है। किसी प्रकार की ठण्ढक इत्यादि से रक्षा करनी चाहिये।

अच्छे भोजनों में जैसे, कच्चा अण्डा, दूध, मांस का अर्क, और कलेजे का टुकड़ा, कुत्तों के बच्चे के लिये जो बिसकुट होते हैं वह और चावल इत्यादि दिया जा सकता है।

ब्राण्डी, पोर्ट और कौफी भी ताकत के लिये देना अच्छा है। यदि कुत्ता अपने से नहीं खाए तो उसे हरेक तीन घण्टे पर हाथ से खिलाना चाहिये।

स्वच्छ जल सदा उसके समीप रखना चाहिये। यदि फेफड़े का सूजन हो गया हो तो इसके लिये सावधानी पूर्वक सेवा की आवश्यकता है बिछावन को बीच बीच में बदलते रहना चाहिए और उस स्थान को फेनाइल के लोसन से बराबर धोते रहना चाहिए। नाक से जो पोटा वगैरह गिरता हो उसको पोटास-परमैन्गानेट के हलके लोसन से धोते रहना जरुरी है। दांत और मसूड़े को किसी बुरुस द्वारा किसी अच्छे दंत मंजन से धोते रहना चाहिए।

२ से ४ ड्राम तक मैगसफल देकर पेट को ठीक रखना चाहिए यदि कब्जीयत अधिक हो, और परदे का रंग पीला हो तो, १ ग्रेन कैलोमेल, मैगसफल के साथ देने से कब्जीयत ठीक हो

जाती है। इसके लिए बहुत सी अक्सीर औषधियां हैं, जैसे ट्राईपेनबुलु, नीभरसीनो बीलौन, सलफर सेनौल और ट्राइपरासमीडे, इत्यादि।

पाइरोपलाजमा केनीस से जब रोग हो (Piroplasma Canis infection) इसमें ट्राइपेनबुलू बहुत लाभदायक है, लेकिन पाइरोपलाजमा जीवसोनी होने से ट्राइपेनबुलु कम फायदा करता है। यदि दोनों मिश्रित हों तो भी इससे लाभ होता है. लेकिन जब बीमारी अधिक बढ़ जाती है वैसी हालत में लाभ कम होता है।

इसकी सुई चमड़े के नीचे या रग में दी जाती है। टाइपेन बुलु सलयुसन १०० में १ भाग के हिसाब से नमक के पानी (४ $\frac{१}{२}$ ग्रेन १ औंस जल में) के साथ दिया जाता है। सलयुसन सदा ताजा बनाना चाहिए, और बनाकर पवित्र फीलटर कागज में छान लेना चाहिए।

इसकी खुराक कुत्तों में १ सी सी है जो प्रत्येक पांच पौंड शरीर के वजन पर दी जाती है। गर्दन या जांघ के हिस्सों में सुई देनी चाहिए। सुई देने के कबल स्पीरिट से उस स्थान को साफ कर देना चाहिए और देने के बाद टींचरआईडीन लगा देनी चाहिए सुई देने के कबल पिचकारी और सुई को जल में देकर उबाल देना चाहिए। सुई देने के बाद दवा दी हुई जगह को

मल देना चाहिए, जिससे शरीर में दवा मिल जाय और उस स्थान को गर्म जल में थोड़ा नमक देकर दो तीन बार सेंक देने से फोड़ा निकलने का डर जाता रहता है।

पाइरोपलाजमा जीवसोनी से जब रोग हो (P. Gibsoni infection) नोभरसीनोवीलौन (Nobarsenobillion) यह औषधि छोटी-छोटी कांच की ट्यूब में बिकती है, जिसको जांघ के ऊपर वाले रोग जिसको सफीन भेन कहते हैं उसमें देनी चाहिए, क्योंकि चमड़े में देने से या ठिकाने से रग में नहीं देने से सूजन हो जाता है जो आगे चलकर फोड़ा का रूप धारण कर लेता है।

सुई देने के नीचे लिखे नियम हैं जिसको अमल में लाया जा सकता है—जांघ के बाहर वाली सफीनाभेन पर के बाल को कैंची से छाँट देनी चाहिए, तथा उसको स्पीरिट से साफ करके टींचर आइडीन लगा देनी चाहिए तब सुई को रग में घुसाना चाहिए, जब खून सुई से बाहर आने लगे तब पिचकारी जिसमें दवा खींच कर पहले से रखी हो, (ख्याल रहे की हवा का अंश उसके अन्दर न हो) उसे धीरे-धीरे पिचकारी द्वारा ठेल कर रग में दे देनी चाहिए।

इस दवा की खुराक ·४५ ग्राम है, जिसको ५ से १० सी. सी. उबाला हुआ डीसटील्ड जल में मिलाना चाहिए।

जोरदार बीमारी में भी इस दवा से लाभ देखा गया है, जब निमोनिया इत्यादि पकड़ लेता है, तब ही शायद लाभ न हो लेकिन पुराने रोग में भी इससे विशेष लाभ पाया गया है। सुई के स्थान पर फोड़े निकल जाने पर भी लाभ देखा गया है।

लेकिन ऐसे फोड़े आराम होने में बहुत समय लेते हैं। एक ही खुराक रोगी को आराम करने में काफी होता है।

सलफरसेनौल (Sulfarsenol)

यह औषधि भी ठीक नोभरसीनो बीलौन के समान नये और पुराने रोगों में लाभ दिखलाती है, लेकिन नीमोनियाँ इत्यादि की उलझने रहने से इससे भी लाभ नहीं देखा गया है।

इस दवा में अच्छी बात यह है कि चमड़े में देने से उपर बताये हुए दवा की तरह सुई के स्थान पर फोड़ा नहीं होता है।

इसकी खोराक ७—४५ सेनटीग्राम है। इसका सफुफ छोटे छोटे टीयुब में बिक्री होता है, जिसको २० सी. सी. उबाले हुयें डीसटील्ड जल में मिलाया जाता है और १० सी. सी. करके छाती के दोनों तरफ ठीक केहुनी के पीछे देनी चाहिए। एक ही खुराक बीमारी को आराम करने में काफी होती है।

ट्राईप्रसामीडे (Tryparsamide)

इसकी नीची लिखी खुराक इस्तेमाल में लानी चाहिए।

०'८५ ग्राम हरेक स्पैनीयल के लिए।

१'७ ग्राम बुल हाउनड के लिए।

०'४२ ग्राम छोटे कुत्तों के लिए।

बताये हुए डीस्टील जल के साथ मिश्रित की जाती है। औषधि को चमड़े में भी दिया जा सकता है।

इस दवा को हरेक पाँच रोज पर दिया जा सकता है और २५ रोज के अन्दर ५ या ८ सुई तक दिया जा सकता है।

सुई दी हुई जगह पर हरेक तीन घन्टे में पहले २४ घन्टे तक नमक जल से सेंक देनी चाहिए। इसकी सुई कान के पीछे सिर में दी जाती है।

इस रोग से बचने के उपाय

(चमोकनो को मारना)

कुत्तों के रहने के स्थान के इर्द गिर्द जितने घास हों सबको साफ करके जला देनी चाहिए। चमोकन अधिकतर दीवाल के ऊपरी हिस्सों में रहते हैं और फिर वहाँ से नीचे उतरते हैं। इसके लिए एक टीन की नली की तरह बनाकर उसमें सैलीन का लोसन रख देनी चाहिए और जहाँ पर चमोकन उतरते हों वहाँ पर लगा देनी चाहिए। मकान को खूब फेनाइल के लोसन

से धुलवा देनी चाहिए और जहाँ कहाँ ढीला पलस्तर हो उसको छोड़ा देना चाहिए नहीं तो ऐसे ही स्थानों में चमोकन छिप कर रहते हैं। पूरे थान को धोने और रगड़ने के बाद सब थानों पर वलो लैम्प से तमाम लहर देनी चाहिये फिर उसके बाद जहाँ फटा हो उसको पलस्तर करवा देनी चाहिये।

कुत्तों पर से चमोकन को हटाने लिये (Gammanane) का व्यवहार करें। डीसटेम्पर (Distemper) के साथ यदि कुत्तों में पाइरोपलाजमा हो तो नीची लिखी औषधियों का प्रयोग करना चाहिए।

स्पीरीट एमोन एरोमेट—१० मीनम
एडीरीनेलीन कोलोराईड—२मीनीम

इसको दिन में दो बार खाने के कबल देना चाहिए, और लैकटौल भी देना चाहिये।

मुख को हाइड्रोजन पर औकसाईड (Hydrogen peroxide) से धुलवाना चाहिये। सोडीबाईकारब, खिलानी चाहिये यह पेट को फूलने से रोकेगा, इसकी मात्रा १० ग्रेन है।

ओमनाडीन (Omnadin M.B. Company) २ सी. सी. सुई द्वारा देनी चाहिये यदि आवश्यकता हो तो दुहराना चाहिये।

जब हालत सुधर जाय तब नीची लिखी औषधियों के प्रयोग करने से कमजोरी शीघ्र दूर होती है।

फेरीएट कुनाईन साईटरस	—	१० मीनम
एसीड नाइटरो मुराएटीक डील	—	२ मीनम
टींचर नक्स भुमीका	—	५ मीनम
जल	—	काफी हिस्सा

इन सबको मिश्रित करके दिन में दो बार देनी चाहिये। एकैपरीन (Acaprin, Bayer's) जो बहुत अच्छी औषधि है, हर तरह के पैरोपलाजमोसीस में हर जानवरों में सफलता पूर्वक दी जा सकती है।

पागलपन (Rabies)

स्वभाव—पागलपन जो पशुओं में होता है उसे मनुष्यों में (पानी से डरना) हाइड्रो फोबीया कहते हैं, वह एक छूत से फैलने वाली बीमारी है, जिसका असर दीमाग के मध्य भाग में होता है। जिससे मानसिक तरङ्ग, एक-ब-एक आक्रमण और चीड़-चीड़ा स्वभाव सदृश लक्षण होता है। जिसको पागलपन भी कहते हैं। यह अधिकतर कुत्तों की जाति (कुत्ता, हुँड़ार, लोमड़ी, और सृगाल) में देखा जाता है, इन जानवरों से यह रोग आसानी से मनुष्य, घोड़ों और दूसरे-दूसरे जानवरों तक काटने से फैलाया जाता है।

कीटाणु और इसके शरीर में पैठने के नियम—यह रोग सुई दिये जाने के समान शरीर में जाता है और इस प्रकार एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में, एक जानवर से दूसरे जानवर



तथा मनुष्य में काटने से फैलता है। वे जानवर जो अपने दातों से हथियार का काम लेते हैं और जिसको वे काटते हैं वह पशु रोग ग्रसित होता है।

इसके कीटाणुओं का अभी पता नहीं लगा है, शायद यह कोटाणु इतना छोटा होता है कि खुर्दबीन में भी नहीं देखा जा सकता है कोई-कोई वैज्ञानिक इसको पेरोटोजूअन भी कहते हैं।

यह रोगी के लार में तथा दिमाग में ईस्पाइनल कौड में पाया जाता है।

बीमारी के लक्षण प्रगट होने के तीन रोज कबल से रोगी का लार दुषित (छुतही) हो जाता है और बीमारी की हालत में अधिक भयानक होता है। इस रोग के विष, काटे हुए स्थान से दीमाग में, स्नायुयों द्वारा जाते हैं, रक्त से इन्हें कोई सम्बन्ध नहीं होता है। परन्तु लार में पाये जाते हैं।

मनुष्यों को यह रोग कुत्तों तथा बिल्लयों के काटने से होता है लेकिन पागल जानवरों के छुने से यदि मनुष्य के हाथ में कहीं जखम वगैरह हो, तो उसे बीमारी की हो जाने कीं सम्भावना है। बीमारी के शुरू में कुत्तों में चाटने का लक्षण होता है, जिसके चाटने से कुत्ते के मालिकों को रोग होने का भय रहता है।

इस रोग के लिये कोई खास मौसम नहीं है, जिन दिनों में जानवर आपस में झगड़ा अधिक करते हैं, उन दिनों में यह रोग देखा गया है। इस प्रकार इंगलैंड, आयरलैंड, इत्यादि देशों में कुत्तों के मुंह में जाबी लगा देने के नियम से बीमारी बहुत दिनों तक बन्द हो गयी थी, पीछे दूसरे देश से कुत्तों को जर्मनी की लड़ाई के समय में ले जाने पर फिर हो गयी। इस प्रकार मुंह में जाबी देने के नियम से बहुत शहरों तथा देशों से बीमारी हटाई गई है, जैसे आस्ट्रेलिया, टासमेनिया, न्यूजीलैण्ड इत्यादि। चूँकि हिन्दुस्तान में कुत्तों के लिये कोई नियम लागू नहीं है, इससे यहाँ यह रोग अधिक देखने में आता है।

कुत्तियों से अधिक कुत्तों में यह रोग देखा जाता है क्योंकि कुत्ते आपस में कुत्तियों के बनिस्पत अधिक झगड़ते हैं।

सभी पगले कुत्तों के काटने से रोग प्रगट नहीं होता, पशुओं में देखा गया है कि सैकड़े पचास को यह रोग होता है।

चिकित्सालय में मनुष्य १६ से ८० सैकड़े के हिसाब से रोग ग्रसित होते हैं। कुत्ते इत्यादि जो मनुष्यों को काटते हैं कपड़े के ऊपर से काटने पर दाँत कपड़े से पोछा जाता है, जिससे विष शरीर में नहीं जाता है, ठीक इसी तरह बड़े-बड़े बाल वाले जानवरों में भी होता है।

शीघ्र जख्म को धो देने से या किसी औषधि द्वारा दाग देने से बीमारी होने का कम भय रहता है, जख्म से खून बह जाने से विष धूल जाता है।

देखा गया है कि इसके कीटाणु अधिक दिन तक जीवित नहीं रह सकते हैं। लार यदि सुख न जाय तो ११ दिनों तक खतरनाक रहता है। जल में यह २० से ३८ दिनों तक जीवित रहता है। इसलिये जल जो विष से दुषित हो गया हो, उससे भी रोग फैल सकता है।

लार जो पतले तह से सुखाए जाते हैं, वे शीघ्र शक्ति हीन हो जाते हैं। भेजा इत्यादि जिसमें विष हो सुखने पर १४ या १५ दिनों में शक्ति हीन हो जाते हैं कवरों में ४४ दिनों तक कीटाणु जीवित रहते हैं। इनमें ठण्ड सहने की पूरी शक्ति है लेकिन भाफ आध घण्टे में नाश कर देती है' १४०° फ० की गर्मी इनको एक घन्टे में नष्ट करती है, लेकिन वही गर्मी जो १५८° फ० की हो तो त्तकाल नष्ट कर देती है।

किसी तेजाब या कीटाणु मारण औषधियों द्वारा भी इसके कीटाणु शीघ्र नष्ट किये जा सकते हैं। आइडीन का लोसन, खूब तेज तेजाब, चूने का सत, कौरौसीभसवलीमेट और किरीओ-लीन, इसके नाश के लिये अति लाभदायक हैं। कारवोलिक एसीड और सोलभर नाईट्रेट इसके लिये उतने अच्छे नहीं हैं। १०० में १ भाग मिला हुआ कौरोओलीन या चूने का सत इनको तीन मिनट में मारता है, १०० में ५ भाग के हिसाब से बना हुआ हाइडोकलोरीक एसीड या सैलीसीलीक एसीड, १०० में १० भाग के हिसाब से बना हुआ तुतीया (Coppersulph) का लोसन

और १०० में ५० भाग मिला हुआ लोसन नाइट्रेट सिलभर से ५ मिनट में मारा जा सकता है, और १०० में ४ भाग के हिसाब से बना हुआ बोरीक एसीड का लोसन १५ मिनट में मारता है और १०० में १ भाग के हिसाब का बना हुआ पोटासपरमैंगनेट का लोसन २० मिनट में, और १०० में ५ भाग द्वारा बना हुआ कारबोलीक एसीड का लोसन ५० मिनट में नष्ट करता है।

मनुष्यों के बचाव के लिये, पशुओं की रक्षा तथा रोग के लक्षण प्रगट करने का समय का ज्ञान होना अति आवश्यक है। इसके लक्षण, जाति तथा काटने के स्थान और कीटाणु की योग्यता पर निर्भर करता है। सिर के निकट जख्म रहने से उसमें शीघ्र लक्षण प्रगट होते हैं। इस लिये देखा गया है कि पैर तथा हाथों की तुलना में सिर तथा चेहरे पर कटे होने से शीघ्र लक्षण प्रगट होते हैं। अधिक जगहों पर कटा रहने से और जख्म अधिक रहने से, कम कटा रहने के बनिस्पत शीघ्र लक्षण प्रगट होते हैं।

कुत्तों में काटे जाने के १५ से ६० दिनों के बाद लक्षण प्रगट होते हैं, और कभी २, ४ से ६ महीनों में लक्षण प्रगट होते हैं, लेकिन हरदर ३ से ६ हफ्तों में। बिल्लियों में १५ से ६० दिनों के अन्दर लक्षण देखा गया है।

घोड़ों की जाति में २० से ४५ दिनों में और पशुओं में १४ से ५० दिनों में, भेड़ और सूकरों में १४ से ६० दिनों में लक्षण प्रगट

होते हैं। मनुष्यों में यह रोग १४ से ६४ दिनों में होता है। खरगोशों में सुई देने पर देखा गया है कि १५ दिनों में रोग का लक्षण प्रगट करते हैं।

लक्षण और रोग की पहचान—कुत्तों में या और पशुओं में दो प्रकार का पागलपन का रोग देखा जाता है, एक है क्रोधी और दूसरा है गूंगा या शरीर का शुन्न हो जाना प्रथम रूप कुत्तों में अधिक पाया जाता है लेकिन एक रूप दूसरे रूप में हो सकता है।

पहले पहल दोनों रूप का लक्षण एक समान होता है, और उस समय रोग को पहचानने का मौका रहता है, क्योंकि उस समय हालत अधिक खतरनाक नहीं होती है। स्वभाव में बहुत रद बदल हो जाता है, जैसे सुस्त रहना, चेहरे पर उदासी, ज्यादा प्यार दिखाना, मालिक का चेहरा और हाथ इत्यादि चाटना, बेचैनी, ज़रा सी आवाज पर दौड़ जाना, चीजों के नीचे या अन्धेरे में छिप कर रहना, खाने की कोई तमीज न रखना, सब चीजों को नीगल जाना, जैसे घास, भूसा. कपड़ा, चमड़े इत्यादि, छड़ी तथा कपड़े इत्यादि को चीरना फाड़ना आँख शून्य जान पड़ना या दीमागी धोखा खाना आँख से किसी छाया इत्यादि को देख कर भी उस पर झपटना, आवाज का बदल जाना। कुत्तों को ऐसी हालत में दो सीकड़ी में ठेकाने से बांध कर रखनी चाहिये, और बराबर निगरानी रखनी चाहिये।

पागलपन का क्रोधी रूप:—पहले से चेताने वाला लक्षण १२, घन्टे से २ दिनों तक रहता है, फिर पागलपन प्रगट हो जाता है दीमाग का धोखापन अधिक बोध होना, एक अजीब तरह का गुनगुनाना, इस रोग के खाश पहचान हैं और उस समय काटने की इच्छा होती है। यदि रोगी के सामने एक छड़ी लायी जाय या किसी कुत्ते को आँख के सामने खड़ा कर दिया जाय तो रोगी एक ब एक क्रोधित हो जाता है, जिससे वह अपने शरीर को क्रोध में नोच लेता है, जो उसके पहुँच में वस्तु होती है उस पर झपट कर अपने मुंह इत्यादि में जख्म कर लेता है। मुख से लार अधिक चलता है और मुंह का लार तार के समान दीखता है। इस अवस्था में चलने की अधिक इच्छा रहती है। यदि जानवर किसी प्रकार छूट जाय, तो कोसों का चक्कर लगाता है और रास्ते में जो जानवर मिलते हैं सब को काटता जाता है। जल से कुछ भय नहीं मालूम होता है, लेकिन जल नहीं पी सकता है क्योंकि उसके कण्ठ के मांस लोथ हो जाते हैं।

यदि जानवर लगातार थकावट से या किसी मनुष्य द्वारा ३ या ४ रोज के अन्दर नहीं मारा गया तो उसको लकवा हो जाता है और धीरे धीरे मर जाता है।

पागलपन का गूंगा रूप:—इस अवस्था में क्रोध नहीं होता है, इसमें प्रथम लक्षण के बाद ही लकवा का लक्षण देखा जाता है, नीचला जबड़ा गिरा रहता है, मुख से लार जारी रहती है,

मुख के मसूड़े गाढ़े पीले रंग के हो जाते हैं, न काटने की इच्छा होती है न शक्ति ही रहती है। लकवा पहले पीछले पैरों में होता है, तब अगले पैर में होता है, तब दो तीन दिन के बाद जानवर की मृत्यु हो जाती है।

सावधान रहना चाहिये जिसमें, दूसरी ऐसी हालतों से यह रोग गड़बड़ा न जाय। उदाहरण के लिये कुत्तियाँ जब बच्चे देती हैं, उस समय बच्चों के प्यार में मनुष्यों को काटने दौड़ती हैं, तथा किसी मनुष्य द्वारा खरीदे जाने पर कुत्ते डर से काटने को दौड़ते हैं। हड्डी या कोई दूसरी वस्तु दाँत में अटकने पर मुख खुला हुआ रहता है, मुख से लार गिरती है, और आवाज बदल जाती है, नाक में मांस बढ़ जाने तथा कानों में जख्म रहने से भी कुत्तों को तकलीफ होती है, जिससे काटने का स्वभाव पाया जाता है।

ऊपर बताये हुये रोग के लक्षण करीब-करीब सब जानवरों में समान ही होते हैं। घोड़े बहुत दुष्ट हो जाते हैं, बहुत तड़पते हैं, उनके नजदीक जाने पर आक्रमण करते हैं, अपने नाद, दीवाल तथा खूँटे इत्यादि पर हमला करके शरीर को भी काट कर जख्मी कर लेते हैं। पेशाब करने की अधिक इच्छा प्रकट करते हैं, और काम-शक्ति अधिक जागृत हो जाती है।

मवेशियों में पेट का दर्द होना पैर पटकना, सिर हिलाना, सींग द्वारा किसी चीज पर आक्रमण करना और सींग से जमीन

कुदरना, जिससे कभी-कभी सींग टूट जाती है। रोगी अधिक दुबला होकर पाँच रोज के अन्दर मर जाता है।

खरगोशों में सिर्फ गूंगा रूप का पागलपन होता है, क्रोधी रूप नहीं देखा गया है।

मरने पर जानवरों को फाड़ने पर कोई विशेष रद बदल नहीं पाया जाता है। सिर्फ कुत्तों के पेट में भिन्न-भिन्न चीजें मिलती हैं, जैसे चमड़े का टुकड़ा, चिथड़ा किसी धातु के टुकड़े इत्यादि। खाने की कोई तमीज न रहना, इस रोग के विशेष लक्षण हैं।

रोगी को किस प्रकार रखना चाहिए, तथा काटे हुए मनुष्य और जानवरों के प्रति क्या कर्तव्य होना चाहिए :—

१ यदि कोई पशु किसी जानवर या मनुष्य को काटले तो उसे एक-ब-एक पागल समझ कर मार नहीं देना चाहिए बल्कि रोगी को बांध कर दस रोज तक रखना चाहिये और सावधानी से निरीक्षण करना चाहिए। यदि पागल होगा तो कुछ ही दिनों में पता चल जायगा। सुरक्षित स्थान में हटा कर रखना चाहिए और दो सीकड़ों से बांधना ठीक होता है, एक सीकड़ पट्टा के साथ और दूसरा गर्दन में लगा हुआ हो।

२ यदि १० दिन के अन्दर कोई पागलपन का लक्षण न मिले तो जानवर को छोड़ दिया जा सकता है और किसी कारवाई की जरूरत नहीं होती है।

३ किसी प्रकार का जानवर हो यदि पागलपन का लक्षण पूरा प्रगट हो जाय तो, उसको मार देना उचित है। लाश को जला देनी चाहिये। बड़े जानवरों को गोली से या हीवमेन कीलर (Humane killer) से मारना अच्छा होता है। छोटे जानवरों को गोली से या पुरुसीक एसीड (Prussic acid) जहर खिला कर भी मारा जा सकता है, जो मनुष्य इस कार्य का भार लिये हों, जिसे उचित समझे मार सकते हैं लेकिन पिछला नियम बहुत आसान है जिससे पशु के प्राण तत्काल निकल जाते हैं। इसके लिए आधा औंस पुरुसीक एसीड रुई में लेकर एक छड़ी के नोक में लपेट कर कुत्ते के मुख के पास करने से, वह फौरन क्रोध में झपट कर खा लेता है, जिससे शीघ्र मृत्यु होती है थोड़ा एसीड मुख में और डाल देने पर काम पूरा हो जाता है। दवाखाने से मोल की हुई दवा जो देखकर ली जाती है वह विश्वस्त होती है।

४ सावधानी पूर्वक ऊपर काम कर चुकने के बाद साबून और गर्म जल से हाथ धो लेना चाहिये, उसके बाद १ मे १०० भाग का बना मरकरी पर कलोराइड का या १००-१० भाग का बना कारबोलीक एसीड का लोसन, या किरीओलीन, साईलीन या फेनाइल के लोसन से हाथ धो डालना चाहिये।

५ जिस स्थान पर रोगी मरा हो उसको ठीक तरह से फेनाइल या सैलीन लोसन जैसा कि शुद्ध करने के नियम में बताया गया है व्यवहार में लाना चाहिये।

कोई ऐसी चीज जो रोगी के लार से मिश्रित हो उसे जला देनी चाहिये, धातु की चीजें जैसे सीकड़ी, टीन और खाने के बरतनों को आग में लाल कर देना चाहिये। दीवाल और जमीन को चूना से पोतवा देना चाहिये और नियमानुसार धूप दिखा देनी चाहिये।

६ सावधानी पूर्वक तहकीकात करनी चाहिये कि कितने मनुष्यों तथा जानवरों को पागल कुत्तों ने काटा है।

जितने काटे हुए जानवर हों सबों को एक स्थान में जमा करना चाहिए। यदि कम कीमत के कुत्ते हों तो उनके मालिकों से आज्ञा लेकर मार देना चाहिये। जो कीमती जानवर हों उनको एक सुरक्षित स्थान में ६ महीने तक रखना चाहिये और बीच में उनकी मोलाहजा होनी चाहिये। अभी इसके लिये यहाँ कोई कानून नहीं है, जिससे जानवर के मालिकों को दूसरी जगह इस तरह के जानवरों को हटाने के लिये मजबूर किया जाय। इसलिये उनके फायदे की बात है, यदि उनको ठीक तरह से एक जगह रखें, जब तक कि बीमारी का सन्देह दूर न हो जाय और बाहर घूमाने समय उनके मुख में जाबी और गले में सीकड़ी जरूर बन्धी रहनी चाहिये।

७ यदि काटे हुए जानवर तुरत मिल जांय तो उनके जख्म को पहले किसी दवा के लोशन से धो कर तब कारबोलीक एसीड, या कौपर सलफेट से उनको जला देना चाहिये। यदि जख्म

अधिक हो तो कुछ देर उचित रीति से धो कर फिर ऊपर बताई हुई दवा लगा कर पट्टी बान्ध देनी चाहिये।

८ जितने जानवरों में रोग का पता लगा हो उसकी एक रिर्पोट लोकल गवरमेन्ट को देनी चाहिये, कि क्या-क्या कारवाई की गयी है।

६ कुत्ते या और कोई जानवर जो पागल जानवरों से काटे गये हों अथवा जिन्हें काटे जाने का सन्देह हो, उनको एन्टी रेबीक भैकसीन (Anti Rabic Vaccine) दिलवा देनी चाहिये, इस पर भी ६ महीने तक उसकी खबरगीरी करनी जरूरी है।

जो जो मनुष्य पगले जानवरों द्वारा काटे गये हों, उनको शीघ्र एनटीरेबीक इलाज़ के लिये चला जाना चाहिये। हर एक बड़े-बड़े शहरों में एनटी रेबीक भैकसीन का इन्तजाम अस्पताल के साथ रहता है, जहाँ पर इसका इलाज होता है। जिस मनुष्य के चेहरे पर जानवर ने काटा हो और उस जानवर के पागल होने की शंका हो, तो वैसी हालत में तनिक भी देर नहीं करनी चाहिये नहीं तो देर होने से खतरा है जानवर की हालत का जिक्र तार द्वारा, सुपरिन्टेन्डेंट पास्र्च इन्सटीचिउट को भेजा जा सकता है।

पागल जानवर या पागल होने की शंका वाले पशु के बारे में नजदीक के पशुडाक्टर की राय ली जा सकती है और जो

राय वे दें उसे साथ लेते जाना जरूरी है। यदि यह नहीं हो सके और पागल जानवर मर जाय, तो वैसी हालत में उस जानवर के भेजे को खाश कर हीपोकैम्पस मेजर (Hyppocampus major) को निकाल कर, एक चौड़े मुंह के शीशे के बोइश्राम में जिसमें असली गलीसरीन या बाइक्रोमेट पोटासीयम ६० ग्रेन गेलसीअल एसीटीक एसीड २$\frac{3}{4}$ ड्राम, जल जिसमें ६$\frac{1}{2}$ औंस मिला हो रख कर, पार्सल द्वारा, जिसके साथ रोगी का व्योरा भी रहे, सुपरिन्टेनडेन्ट पासचर इनसटीचिउट को भेज देना चाहिये। सिर से भेजा अलग करते समय, बहुत सावधानी बरतनी चाहिये। क्योंकि जरा भी कहीं हाथ में कटा होने से रोग हो जाने का भय है। यदि पशु डाक्टर द्वारा जानवर पागल घोषित किया गया हो तो, भेजा निकालने की कोई आवश्यकता नहीं है। खुर्दबीन में जाँच करने की अपेक्षा जीवितावस्था में जो लक्षण इस रोग के पाए जाते हैं वे रोग के पहचान के लिये अधिक विश्वस्त होते हैं।

सरकार द्वारा, सरकारी नौकरों तथा गरीब लोगों के आने जाने के लिये इस रोग के वास्ते, खाश रियायत की गई है, जिसका व्योरा जिला के कलक्टर के पास से मिल सकता है।

एनटीरेबीक इलाज में १४ रोज तक २ मीलीमीटर के खुराक से सूई दी जाती है, यह औषधि, स्पाइनलकौड को कुछ दिनों तक सुखा कर, रसानियक नमक का जल या इस्ट्रेराईल बरौथ में देकर

बनाया जाता है। १४ दिनों तक सुखाया हुआ कौड, जो कमजोर होता है, पहले दिया जाता है, उसके बाद धीरे धीरे कम रोज का सुखाया हुआ दिया जाता है, जो तीन रोज का सुखाया हुआ होता है, वह बहुत कड़ा होता है।

यह सुई जो दी जाती है, रोग रोकने के लिये; चंगा करने के लिये नहीं, इससे तीन बरस तक जानवर नीरोग रह सकता है।

अभी जो नियम हिन्दुस्तान में प्रचलित है; वह कर्नल सर डैभीड सेमपल; जो कसौली में पहले पहल डाइरेक्टर होकर आए, उन्हीं का निकाला हुआ है। वह है खरगोस का भेजा, जो फीक्सड भाइरस द्वारा मर गया हो उसको प्राकृतिक नमक जल के साथ मिला कर; उसमें कारबोलिक एसीड इस हिसाब से मिलाना चाहिये कि १०० में १ भाग मिश्रित औषधियों के साथ कारबोलिक एसीड ०.५-१०० में हो। इस हिसाब से भाइरस मारा जाता है। इसे १४ दिनों में ५ शीशी रोजाना के हिसाब से दिया जा सकता है; पहले बतलाये गये नियम की अपेक्षा यह अच्छा है। एक बुदापेस्ट के प्रोफेसर हैगस द्वारा एक भैकसीन तैयार किया गया है; जिससे चार ही दिनों में चिकित्सा की जा सकती है और आज कल यह चालू भी है।

इस रोग से बचने का उपाय

जब तक इसके प्रति कोई कानून न बनेगा, तब तक यह रोग हिन्दुस्तान में इसी तरह बराबर हुआ करेगा।

नीचे लिखे नियमों से लाभ देखा गया है, जो व्यवहार में लाया जा सकता है:—

(क) सब कुत्तों का शहरों या कस्बों में रजिस्टरी कराना।

(ख) कुत्ते के मालिकों से मामूली कर लेना।

(ग रजिस्टर हुए कुत्तों को किसी धातु का तखता गल्ले में पहनने के लिये देना और उसकी कीमत टैक्स (कर) के साथ वसूल करना। उन पट्टों को अपने अपने जानवरों को बराबर पहनाए रहना।

(घ) कुत्ते के मालिकों को अपने कुत्तों को बराबर पट्टा या चमोटी गले में बान्धना।

(ङ) रजिस्टर हुए कुत्तों का एक खास बही रखना।

(च) शहर या कस्बों में कितने कुत्ते हैं, इसका हिसाब रखना।

(छ) फालतू या लावारिस कुत्ते जो हों, उनको पकड़वाना और ९६ घन्टों के अन्दर कोई मालिक नहीं उठे, तो उसे मरवा देना। जितने कुत्ते जो बगैर पट्टे या तखते के पाये जांय सब को मरवा देना।

(ज) एक मनुष्य की नियुक्ति खास इसी काम के लिये होनी चाहिये, जो लावारिस कुत्तों को मारे।

(झ) कुत्तों के लिये छोटे छोटे रहने के स्थान सुरक्षित जगह में बनाये जाँय, जहाँ पर पागल कुत्तों को निरीक्षण के लिए रखा जा सके।

(ञ) पागल कुत्तों के प्रति किस प्रकार ब्यवहार होना चाहिये; जैसे सिकड़ी में बान्धकर रखना; इनके छूने में दस्ताना इस्तेमाल में लाना इत्यादि ।

चेचक (Rinderpest)

इनके नाम— पशुओं के प्लेग; गोटी; भगवती; माता जगदम्बा इत्यादि ।

स्वभाव—चेचक पशुओं के छूत से फैलने वाला टाइफवाएड बुखार के समान होता है। जो पागुर करने वाले जानवरों (जैसे गाय, बैल, भैंस, भेड़, बकरे इत्यादि) को होता है। इसका आक्रमण एक ब एक होता है; जिसमें बहुत ताप, भयानक संक्रामक; मुख; पेट और आंतों में दाने निकल जाना; फेफड़े में सूजन हो जाना तथा शीघ्र और अधिक मृत्यु का होना पाया जाता है।

किन किन जानवरों तथा किन किन देशों में होता है— पश्चिमी एशिया और हिन्दुस्तान इसके स्थिर (स्थायी) मकान हो गये हैं, यहां से जैसे कभी कभी ब्यापारियों तथा सेनाओं के संसर्ग से यूरोप इत्यादि देशों में भी हो जाया करता है।

दक्षिणी अफ्रिका में हाल में पहले पहल जो महामारी हुई थी, उसने उस महादेश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक बहुत

जानवरों को हानि पहुँचायी उसके बाद यह भयानक रूप धारण की और खाश-खाश जगहों में होने लगी, जहां से सर्वत्र उस तरह नहीं फैल रही है।

हिन्दुस्तान में यह रोग सैकड़ों शताब्दियों से चला आ रहा है, जिसके कारण यहां के जानवरों को इसके प्रति सहन शक्ति आ गयी है, जिस कारण से मृत्यु कम होती है। इस लिये यहां के देशी जानवरों में एक खानदानी सहन शक्ति इस रोग के प्रति हो जाती है। सहन शक्ति पूरी नहीं होने के कारण, कोई-कोई जानवरों में यह रोग बना रहता है। जिससे देखने में आता है कि, किसी-किसी प्रान्त या जिलों में बीमारी बहुत दिन तक नहीं हुई और फिर जहाँ पकड़ाने लायक जानवर हुए, वैसे ही रोग शुरू हो जाता है।

पहाड़ी जानवर, भैंस, बकरे और भेंड़ इन सबों में बीमारी नीचे मैदान में रहने वाले जानवरों की अपेक्षा अधिक जोर होती है। पहाड़ी मवेशियों में भी यह रोग बहुत भयानक रूप धारण करता है, और यहाँ तक देखा गया है कि १०० में ६० और कभी १०० में १०० जानवरों की क्षति होती है। इस तरह की हानि मैदान में रहने वाले जानवरों में नहीं देखी जाती है, इनमें १०० में २० से ५० तक की मृत्यु देखी गई है। सबसे अधिक मृत्यु आसाम और बर्म्मा के जानवरों में देखी गयी है।

खाश-खाश नश्ल के जानवरों में यह रोग अधिक भयानक रूप में होता है जिससे उनकी मृत्यु भी अधिक होती है। बाहर से लाये हुये जानवर, जैसे—बिलायती, आस्ट्रेलियन और अदन के पशुओं में यह रोग बहुत जोरदार होता है, और जब होता है तब करीब-करीब सब मर ही जाते हैं। सिन्धी नश्ल के जानवर भी इस रोग को सहन नहीं कर सकते हैं और उनमें भी मृत्यु अधिक पायी जाती है। इसलिये इन जानवरों की रक्षा के लिये देशी जानवरों की खुराक से १५ या १८ गुणा खुराक अधिक सीरम देनी चाहिये।

यह रोग अधिकतर मवेशियों को होता है, लेकिन दूसरे पागुर करने वाले जानवरों को भी हो सकता है। भेंड़ों की मृत्यु इससे कम होती है। हिरणों में भी यह रोग हो जाया करता है। जंगली भैंसों को भी यह रोग बहुत नुकशान पहुँचाता है।

बीमार मवेशी से रक्त लेकर ऊंटों में सुई देने से रोग प्रगट हो जाता है, लेकिन बहुत साधारण होता है और शीघ्र आराम हो जाता है।

घोड़ों, कुत्तों, खरगोशों, चिड़ियों और मनुष्यों को यह रोग नहीं होता है।

जिन जानवरों को एक बार बीमारी हो जाती है, उनको फिर दुबारे बीमारी नहीं होती है।

कीटाणु और इनके शरीर में पैठने के नियम :—इसके कीटाणु का अब तक पता नहीं लगा है। इसके कीटाणु इतने महीन होते हैं कि खुर्दबीन में नजर नहीं आते।

इस रोग से जो रक्त मल के साथ गिरते हैं, वे बहुत संक्रामक होते हैं, और इसका खाश-खाश कारण पेट भरी है, जो इस रोग में उपस्थित रहता है, और इसी से अधिक रोग फैलता है। इनके फैलने के कई एक कारणहैं, जैसे एक जानवर को दूसरे जानवरों के साथ रखने से चारा या पानी तथा दूसरे चीजों से जो रोगियों द्वारा दुषित रहते हैं, उनके व्यवहार से यह रोग जानवरों मक्खियों या मनुष्यों के जूते, कपड़ों और हाथों द्वारा एक जगह से दूसरी जगह पर फैलते हैं, कुत्तों, चिड़ियों या लावारिश जानवरों से भी यह रोग फैलते हुए देखे जाते हैं। हवा द्वारा इसके कीटाणु दूर स्थानों पर भी जा सकते हैं।

शरीर के बाहर इसके कीटाणु तीन दिनों तक जीवित रह सकते हैं, जिसका विचार महामारी के समय रखना जरूरी है। कीटाणु सूख जाने या सड़ जाने से शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। इसलिए सीरम सीमलटेनीयस इनऑकुलेसन में यह पूरा बिश्वास रखना चाहिये कि इसके कीटाणु कितने भी हिफाजत से (बर्फ इत्यादि में) रखने पर भी ४८ घण्टे के बाद शक्तिहीन हो जाते हैं।

शरीर के अन्दर इस कीटाणु की शक्ति १४ रोज से अधिक नहीं रहती है, लेकिन पुराने संग्रहणी रोग में ३० दिनों की व्यवस्था की गई है।

जहाँ पर अधिक जानवर एक साथ रहते हैं और जिनमें इसके प्रति सहन शक्ति होती है, बीमार पड़ते रहते हैं, लेकिन अधिक लक्षण प्रत्यक्ष देखने में नहीं आते। इन पुराने रोगियों के द्वारा नयी महामारी शुरू हो सकती है, जब उस तरह के पकड़ाने वाले जानवरों से सम्बन्ध होता है। महामारी के शुरू में इसका रूप बहुत भयानक होता है, जिससे बहुत हानि होती है। इसके बाद महामारी का रूप शिथिल हो जाता है, जिससे बोध होता है कि जानवर या तो इसके प्रति कुछ सहन शक्ति प्राप्त कर लिया है या कीटाणु पहले से कमजोर हो गया है।

कीटाणु शरीर में पैठने के बाद तीन रोज से आठ दिनों में लक्षण प्रकट करता है। लेकिन नियम है कि तीसरे या चौथे दिन लक्षण दीख पड़ते हैं।

लक्षण और पहचान —प्रथम लक्षण इस रोग में जो देखने में आते हैं वह है, कई एक जानवरों का एक ब एक पकड़ा जाना और अति शीघ्रता से रोग का फैलना। जानवर में जो लक्षण प्रथम देखने में आता है, वह अधिक ताप का होना है (१०४° से १०८°)। बीमारी होने के तीसरे या चौथे दिन तक बुखार अधिक रहती है और मरने के कबल स्वभाविक ताप से भी बुखार कम हो जाती है। बुखार के साथ-साथ रोगी का

सुस्त रहना, रोम का खड़ा हो जाना, पागुर या गाल बन्द कर देना, मुख का बहुत गर्म रहना, मुख के भीतरी परदों में रक्त संचय, बहुत प्यास का लगना, कब्जियत का रहना, गोबर के साथ पोटा का आना, पीठ का ऐंठना, शरीर के मांसों को बार बार सिकोड़ना इत्यादि है।

आगे चलकर, मसूड़े और मुख के पर्दे लाल हो जाते हैं, और जीभ पर रेघा के समान हो जाता है। कब्जीयत बहुत जोर होती है, गोबर के साथ, पोटा और रक्त आता है और गोबर करते समय जानवर बहुत कूथता है गुदामार्ग और पेशाब करने के स्थान बहुत लाल हो जाते हैं और सूखे दीखते हैं। भूख एकदम मन्दी हो जाती है। जानवर जमीन पर बैठा रहता है सिर को पेट की तरफ घुमाए रखता है। प्यास बहुत होती है। नाड़ी बहुत तेज और अनियमित रहती है, बुखार बहुत होती है और मांसों की ऐंठन इस समय बहुत होती है। जैसे जैसे बीमारी बढ़ती जाती है, आँख में कांची और पानी और मुख से अधिक लार गिरता रहता है। स्वांस में बहुत दुर्गन्ध होती है। मुख के पर्दे पर हाथ देने से ऊपर का हिस्सा आसानी से निकल जाता है और वहां पर लाल हो जाता है। इस तरह की लाली मसूड़ों तालू इत्यादि में देखने में आती है। फिर दस्त शुरू होता है जिसमें पहले पानी के समान कुछ गोबर के टुकड़े मिले हुए होते हैं, तथा रक्त और पोटा भी मिला हुआ रहता है जो आगे चलकर केवल

रक्त और पोटा का कुछ अंश भी पाखाने में होता है, जिसका रंग पीलापन लिए हुए भूरा होता है, जिससे बहुत दुर्गन्ध आती है, और पेट बहुत मुलायम हो जाता है। जानवर बहुत कमजोर हो जाता है। निगलने में बहुत तकलीफ होती है, जमीन पर बैठ जाता है और उठने की शक्ति नहीं रहती है।

सांस फेंकने के समय एक अजीब तरह की आवाज होती है, जो आगे चलकर कँहरने के रूप में बदल जाती है। अधिकतर मृत्यु २ से ६ दिनों के अन्दर होती है।

इस बात का ख्याल रखना चाहिए कि ऊपर बताए हुए लक्षण सभी मौजूद नहीं रह सकते हैं लेकिन कुछ अवश्य रहेंगे। इस रोग के बिशेष लक्षणों में से कुछ लक्षण नीचे दिए जा रहे हैं। आँखों से कांची और नाक तथा मुंह से पोटा और लार का चलना। मुख के भीतर जख्म हो जाना और गोबर के साथ आंव गिरना पाया जाता है।

कभी कभी चमड़े के ऊपर जैसे लोर, थन, जाँघ, छाती और चैरु के ऊपर भी जखम देखे जाते हैं। यह कोई इसका विशेष लक्षण नहीं है, लेकिन जो जानवर धूप के दिनों में पकड़ाते हैं उन जानवरों में कभी कभी देखे जाते हैं। इसको अनुकूल लक्षण समझना चाहिये। इसमें आंव के लक्षण शायद ही होते हैं। चंगा होने की विशेष सम्भावना रहती है।

इसी लक्षण के कारण देहात के लोगों ने इसको माता के नाम से पुकारा है।

किन-किन रोगों से इसके लक्षण मिलते हैं—पाठकों की जानकारी के लिए कुछ लक्षण रोगों के साथ नीचे दिये जाते हैं। जिनसे रोग के पहचानने में गड़बड़ी नहीं हो सकती है।

१ मवेशियों को सर्दी के साथ होने वाली बुखार—इस में छूत का डर नहीं रहता है, और झुन्ड में एक या दो जानवर, इस रोग से पकड़ाते हैं। मुख में जख्म वगैरह नहीं होता है। सींग की जड़ में कुछ सूजन हो जाती है। आँख के पर्दों में अति रक्त-संचय आँखों का फूल जाना, तथा आँख से पानी वगैरह का गिरना गोटी के रोगियों में आँख का लक्षण अधिक देखा जाता है।

२ मुख में जख्म होना—इस रोग में बुखार नहीं रहती है, न कोई पेट की गड़बड़ी रहती है।

३ खोरहा या भजहा—मुख और खुर के बीच में जख्म का होना और पेट की कोई गड़बड़ी नहीं रहना, इन लक्षणों से इसकी पहचान की जा सकती है।

४ आंव—इस रोग में बुखार नहीं रहती है, मुख में जख्म नहीं रहता है। मरने पर बड़ी आंत में रोग देखा जाता है।

५ पील्ही —इस रोग की व्यापकता इतनी नहीं होती है, मुख में जख्म नहीं पाए जाते हैं, रक्त में कीटाणुओं का पाया जाना तथा मरने पर पील्ही बढ़ा हुआ पाया, जाना इसके विशेष लक्षण हैं।

६ गरगटीया या कण्ठासार —इस रोग में भी मुख में जख्म नहीं पाए जाते हैं। कण्ठ का फूल जाना। मृत्यु अति शीघ्र होना और रक्त तथा दूषित पदार्थों में कीटाणु का पाया जाना।

७ जहर खोरी :—इसमें पेट के दर्द अधिक होते हैं, और दस्त भी बहुत होता है। बुखार नहीं रहती है।

मरने के बाद भीतरी लक्षण —जख्म अधिकतर मुख में, चौथे पेट में, छोटी आंत में और गुदा मार्ग में पाए जाते हैं। चौथे पेट में खून का अधिक जम जाना जिसका रंग गाढ़ा लाली लिए हुए रहता है तथा गाढ़ा गुलाबी रंग की लम्बी-लम्बी दाग या रक्त का जहाँ-तहाँ छाप पाया जाता है। इस पेट के मुंह पर भी जख्म पाया जाता है। कभी-कभी इस तरह का सूजन हो जाता है, जो हाथ से उठा लिया जा सकता है।

छोटी आंतों में भी ठीक इसी प्रकार के जख्म पाए जाते हैं। गाढ़े लाल रंग का रक्त संचय, परदों का उबड़खाबड़ हो जाना, सूजन रहना और पेयर्स पैचेच (Peyer's patehes) का

उठ जाना, और आँत के मल का रंग पीला भूरा या लाली लिए हुए और दुर्गन्धित होता है।

बड़ी आँत या सीकम में कोई विशेष फर्क नहीं देखा जाता है। गुदामार्ग का रक्त संचय अधिक साफ और चमकीला लाल रंग का होता है। जिसका आकार लम्बे-लम्बे धारीदार होते हैं, जिनको जेवरा की धारी (Zebra Mark) भी कहा जाता है।

पीलही में कोई हेरफेर नहीं होता है। कलेजा बहुत सुखा हुआ रहता है और पीत्त कोष के मुख पर जख्म पाए जाते हैं।

मुख में जख्म, जिस प्रकार लक्षण में बतलाया गया है, उसी मोताबिक होते हैं, यानी चोकर के दाने मुख में बिखरे हुए हों या यों कहिये कि दूध की छाली के कण मुख में जहाँ तहाँ हों इस तरह देखा जाता है। फेफड़े में सूजन और अधिक रक्त का रहना देखा जाता है।

महामारी के समय की कार्यवाही :—

१ तन्दुरुस्त जानवरों से रोगी जानवरों को हटा कर अलग रखना। इनमें तीन तरह की झुण्ड बनानी चाहिये।

(क) एक जिनमें बीमारी हो गई हो।

(ख) दूसरी जिन्हें बीमार होने की शंका हो।

(ग) तीसरी जो पशु स्वस्थ हों। इन सबों को अलग-अलग रखना चाहिए।

२ बीमार पशुओं को हटाए हुए स्थान पर चिकित्सा करना ?

३ स्वस्थ पशुओं की सुई द्वारा रक्षा करना ।

१ पशुओं को इतनी दूर हटानी चाहिये, जितनी दूर से अच्छी तरह देख-भाल हो सके । ध्यान रखना चाहिये कि सड़क के नज-दीक न हो, जिससे दूसरे मनुष्यों के जानवरों में बीमारी न फैले । अगर हो सके तो कम से कम एक मील तक हटा देन चाहिये । देखने वाले बाहर के लोग जितना कम आवें उतना ही रोग के कम फैलने का डर है।

मनुष्य जो वहाँ पर रहें उन लोगों को कहीं बाहर जाने की मनाही रहे । अगर हो सके तो बीमार जानवर जहाँ पर हो, उस स्थान को छोड़ देना अच्छा होता है, ताकि वहाँ से जानवर हटे नहीं या दूसरे जानवर उनमें आकर मिले नहीं । जानवरों तथा मनुष्यों का जो खाना आवे, वो हाथ से घोरान से दे देना चाहिये ।

२ बीमार जानवरों के पीने का जल इत्यादि तथा दवा देने का प्रबन्ध उसी के अन्दर रहना चाहिये ।

३ स्वस्थ पशुओं को हर रोज सवेरे और शाम मोलाहजा करना चाहिये और उनकी बुखार देखनी चाहिये । जिस किसी जानवर में बुखार पायी जाय, उसको तुरत हटा कर रो युक्त जानवरों के साथ या बीमार जानवरों के साथ, जैसा लक्षण हो रखना चाहिये । उस हाते में जो बकरे हों उनका भी निरिक्षण होना आवश्यक है ।

४ यदि हो सके तो उस स्थान को कुछ रोज के लिये खाली करके, उसको ठीक तरह साफ तथा औषधियों द्वारा शुद्ध कर रखना चाहिये, जिससे बीमारी बढ़ने न पावे (ध्यान रहे कि कीटाणु शरीर से बाहर तीन दिन तक जीवित रहते हैं, इसलिये स्थान शीघ्र शुद्ध हो सकता है)

५ बीमारी वाली जगहों को शुद्ध करने के नियम के मोताबिक ठीक तरह से शुद्ध करना चाहिये। गोबर, खाद्य पदार्थ, जमीन नाद; चरवाहों के कपड़े और जूते इत्यादि जिसमें लार या गोबर लगा हो, पूरा ध्यान देकर शुद्ध करना जरूरी है।

यहां (४) और (५) नियमों में बताए गये अनुसार काम करना जरूरी है, जब तक की जानवरों को सुई न दी जाय। यदि जानवर सब शामिल रहते हों तो (५ नियम को काम में लाने से कोई लाभ नहीं है जब तक जानवर फिर न हटाये जांय।

६ जो पशु डाक्टर निकट में हों उनको खबर देना चाहिये और उनको कह कर जानवर को सुई दिला देनी, अति आवश्यक है।

७ सुई द्वारा रक्षा—तीन प्रकार की सुई इस बीमारी से बचने के लिये प्रचलित है।

(क) सिर्फ सीरम द्वारा रक्षा। (Serum alone method.)

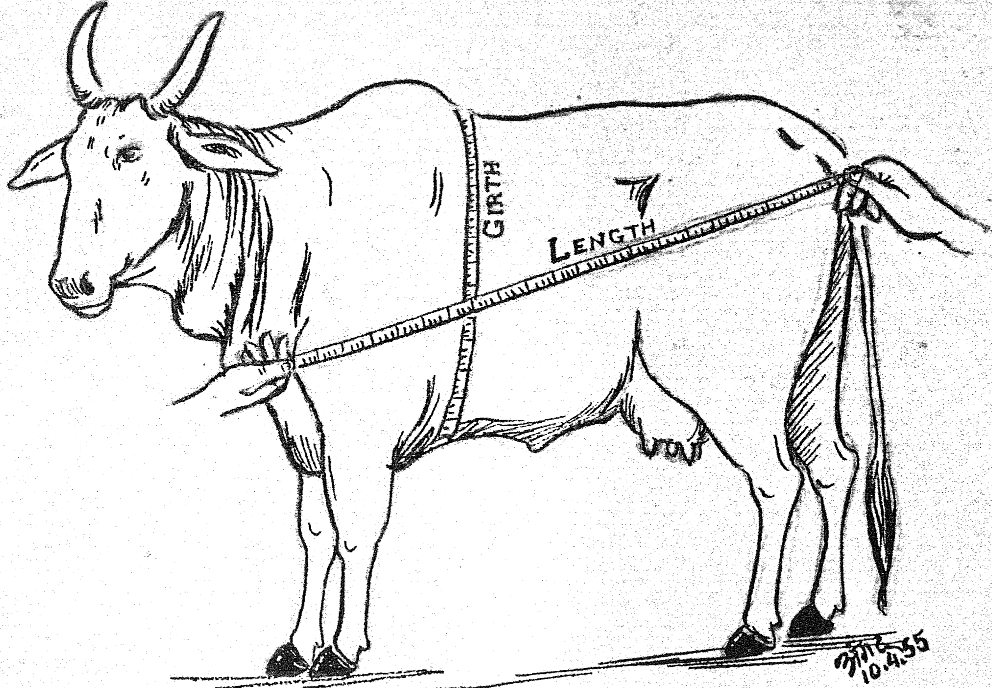
(ख) सीरम और माइरस द्वारा रक्षा। (Serum Simultanious method.)

(ग) बकरे द्वारा तैयार किया हुआ भैक्सीन। (Goat Tissue Vaccine method.)

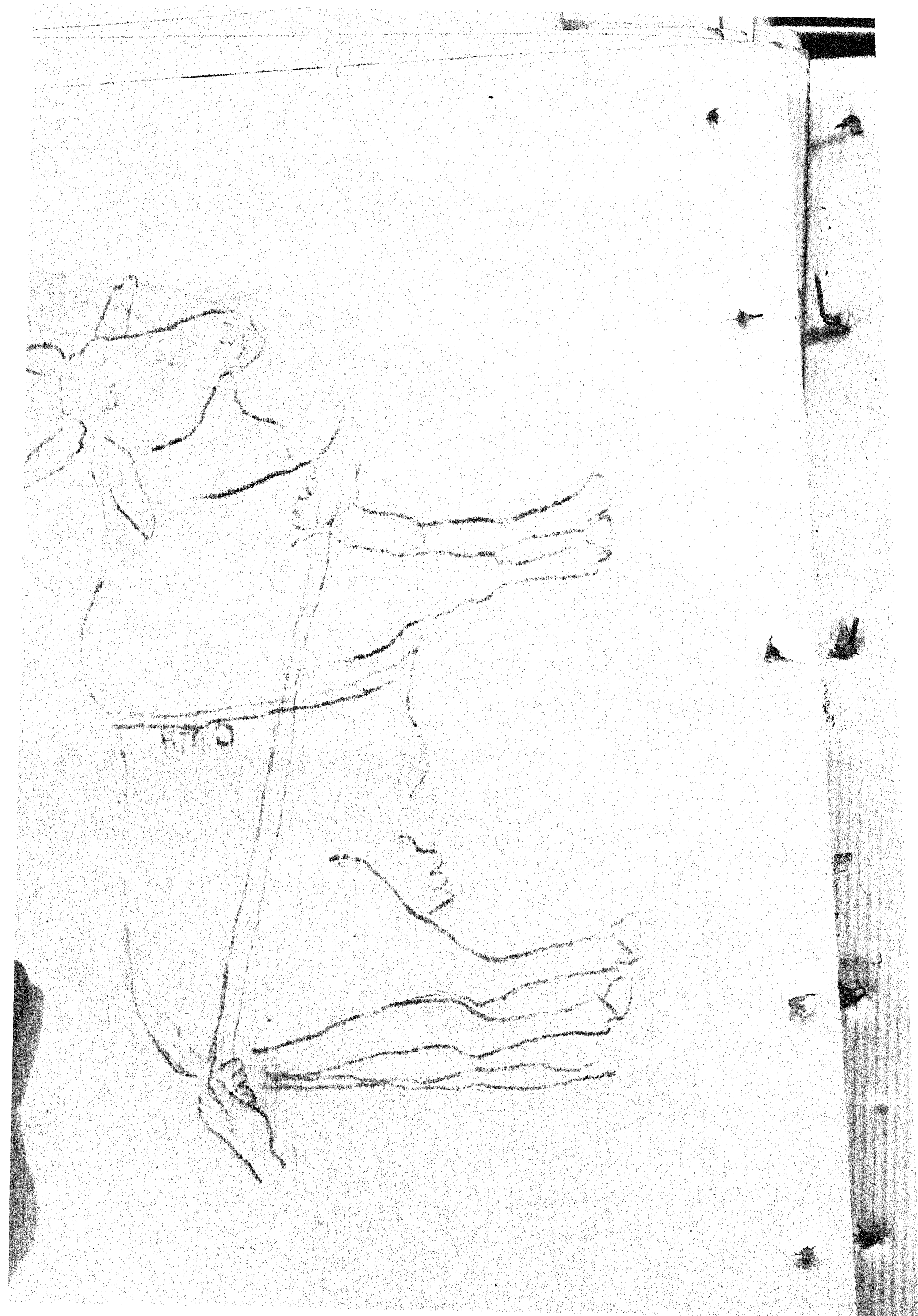
(क) सिर्फ सीरम द्वारा रक्षा—यह भी एक सुई देने की प्रथा है जिसको बीमारी के समय में स्वस्थ पशुओं को ५ से १० शीशी दिया जाता है। इससे सुई द्वारा जानवरों के चमड़े के अन्दर सीरम भरा जाता है, जो सीरम वैसे जानवरों से लिया जाता है जिसको सीरम लेने के प्रथम इस रोग के प्रति पूरी सहन शक्ति दी जाती है। चूंके सीरम का असर कम दिनों तक रहता है इसलिए बीमारी शुरू होने से दोहराया जा सकता है।

इसकी मात्रा हिन्दुस्तान में प्रत्येक जाति के पशुओं के लिये अलग अलग है, जो इम्पीरीयल इन्सटीचीउट भेटनरी रीसर्च के डाइरेक्टर द्वारा बहुत जांच पड़ताल के बाद ठीक किया गया है। पशुओं को हर ६०० पौंड शरीर के वजन पर बैठाया जाता है।

शरीर के वजन का हिसाब करने के लिये तंग की जगह याने छाती की पूरी गोलाई का वर्ग करके ईंचो में उसको लम्बाई अर्थात् चेरू (Point of the Shoulder to pin bone) के जोड़



॥ पशुओं के तौलने का नियम ॥



से आखरी चूतड़ तक पसलियों पर से होते हुए नाप कर इंचो में गुना करें फिर उसको ३०० से भाग देने से जो भागफल आता है, वही जानवर का वजन पौंड में समझना चाहिये।

सीरम के देने से बीमारी तुरत रुक जाती है लेकिन जो जानवर पकाड़ाए रहते हैं लेकिन लक्षण देखने में नहीं आते, उन सबों में कोई लाभ इससे नहीं होता है। इसकी सुई से रोगी पशुओं को कोई लाभ नहीं होता है। चूंकि सीरम की अवधि बहुत कम दिनों तक (२ सप्ताहों तक) होती है। इसलिये अच्छे जानवरों को सीरम दी जावे तो उनको बीमार जानवरों के साथ तुरत मिलने देना चाहिये, जिस कारण से इस सीरम की अवधि बहुत दिनों तक बढ़ जाती है। लेकिन जब तक सीरम न पड़े तब तक बीमार जानवर को एक दम अलग रखना चाहिये।

सीरम देने के बाद जो-जो जानवर बीमार जानवरों के साथ हों, उनकी बुखार कुछ दिनों तक सबेरे शाम लेनी चाहिए, यदि किसी जानवर को बुखार हो तो, समझना चाहिए कि इसकी शक्ति बीमारी के प्रति आ गई है।

(ख) सीरम और भाइरस द्वारा रक्षा— इस नियम के द्वारा हिन्दुस्तान के सरकारी मवेशियों को सुई दी जाती है। जितने सरकारी गायों के बच्चे होते हैं, उनके छः महीने से ऊपर के हो जाने पर बीमारी के डर से, ऊपर लिखे अनुसार रक्षा की जाती है।

इसमें दो सुईयां दी जातीं हैं, जानवरों के शरीर के दोनों तरफ गर्दन या चेरु (Shoulder) पर चमड़े के नीचे दी जाती है।

१ कम मात्रा में १ सी. सी. विषमय रक्त, या उस प्रकार का रक्त जो इस बीमारी के रोगी से जब रोग ऊँचे दर्जे पर ताप के साथ रहता है उसी समय ली जाती है।

२ सीरम जो ऊपर बताया गया है, जानवरों के तौल के अनुसार मात्रा ठीक करके दी जाती है, ताकि इस बीमारी को बढ़ने न दे।

यदि विषमय रक्त के साथ सीरम न दी जाय तो रोग बहुत जोरदार हो जाता है। इसलिए सीरम के देने से रोग का जोर कम हो जाता है।

यदि रक्त ठीक विषमय हो तो एक सुई काफी होती है। रक्त की विषमता की जाँच के लिए हर एक जानवर को अलग देनी चाहिए और जब उस जानवर में पाँच छव रोज के बाद बुखार हो तो समझना चाहिए कि ठीक है। कोई-कोई जानवर में थोड़ी बुखार होती है, फिर ठीक हो जाती है।

सुई देने के व्योरेवार नियम—जानवरों की खबरगिरी, सुई देने के लिए अलग रखना।

जिन जानवरों को इस प्रकार सुई देनी हो, उन जानवरों को खाद्य अच्छे दिए जाँय, जो शीघ्र पचे और दस्त साफ हो।

गाय जो हाल में बच्चा जनने वाली हो, उन्हें सुई नहीं देनी चाहिये। कमजोर छोटे बछड़े को यह सुई नहीं देनी चाहिये,

लेकिन जो स्वस्थ छोटे बच्चे छ: महीने से ऊपर के हों उन्हें दी जा सकती है। कमजोर जानवरों को सुई देना मना है।

यह सुई साल में किसी महीने और मौसम में दी ज सकती है।

सुई देने के समय या उसके बाद जिस स्थान में जानवरों के रहने का प्रवन्ध हो, वह जितना साफ हो सके रखना चाहिये।

ध्यान रहे कि यह बीमारी जानवरों का अभी संक्रामक तथा खतरे से खाली नहीं है। इसलिए जिन पशुओं को इस प्रकार सूई दी जाती है, उनमें एक तरह से यह बीमारी उत्पन्न की जाती है। इसलिए ऐसी होशियारी करनी चाहिये, जिसमें उस स्थान के बाहर रोग न जाने पावे। जिसके लिए विशेष प्रबन्ध आने जाने का रोक टोक, जिस प्रकार महामारी के समय कार्यवाही न० १ के अनुसार करनी चाहिये।

यह रोग खाद्य पदार्थों द्वारा जो रोगी के पेशाब तथा लार से मिश्रित रहते हैं इनके खाने से बढ़ती है। इसमें कीटाणु शीघ्रता से धूप में मरते हैं। इसलिए इनके नाश का ध्यान सदा रहना जरूरी है।

सुई दिए हुए जानवरों को अलग रखना चाहिये और उनकी देखभाल के लिये मनुष्य बराबर वहाँ मुस्तैद रहे, ताकि बगैर सुई वाले पशु वहाँ किसी हालत में न जाएँ और वह मनुष्य

भी उस बिना सुई वाले पशु से कोई संसर्ग न रक्खे। जहाँ पर सुई दिये हुये जानवर रहें उसके दरवाजे पर एक नाद में फेनाईल क पानी रखना चाहिए, जिसमें जब कोई आदमी भीतर जायें या बाहर आवें, तो अपनी जूते का तल्ला और छड़ियों की नोक को डुबा लें।

नीची लिखी वस्तुएँ इस प्रकार की सुई देने के समय आवश्यक होती हैं :—

(१) सीरम (२) बिषयम रक्त (३) सुई देने की पिचकारी और उसके सामान (४) बुखार देखने का यन्त्र (Thermometer) (५) खुर्दबीन, सीसे का सलाइड और रंगने के रंग।

खुर्दबीन सम्बन्धी वस्तुओं की अति आवश्यकता होती है, क्योंकि इस सुई के देने बाद पाइरोपलाजमोसीस का अधिक डर होता है, जिसको खुर्दबीन द्वारा जाँच कर, ट्राइपेन वुलु की सुई देकर रक्षा की जा सकती है।

यह अनुभव द्वारा सिद्ध किया गया है कि सुई देने के ६ से १२ रोज के अन्दर यदि ताप अधिक रहे तो समझना चाहिये कि पाइरोपलाजमोस्रीस है। यदि इसके कीटाणु खुर्दबीन में नहीं मिलें तब भी उसको ट्राइपेन वुलु दे देना चाहिये।

(१) इस सुई के लिए सीरम, डाईरेक्टर इम्पीरीयल इन्सटीच्युट मुक्तेश्वर के यहाँ से मंगा कर देनी चाहिए, जो

ताजा हो। सुई देने के थोड़े दिन पहले मंगा कर रखना चाहिये। किसी दशा में पुरानी सीरम व्यवहार में नहीं लानी चाहिये। मुक्तेश्वर के सीरम अच्छे होते हैं, जो कहीं बाहर भेजने के पहले सरकारी अफसरों द्वारा जाँच कर लिए जाते हैं तब भेजे जाते हैं। जिनकी मात्रा कागज में लिख कर बोतलों के ऊपर चिपकाये रहते हैं। जो सीरम इसके लिए भेजा जाता है उसका नाम स्पेशल राइन्डरपेस्ट सीरम है, जो प्रथम बार भैसों से लिया जाता है।

चूंकि हर जाति के मवेशियों की बीमारी किसी में कम और किसी में अधिक या जोरदार लक्षण देखने में आते हैं। इसलिए उनकी मात्रा का निर्णय पहले ही कर लेना होता है।

हिन्दुस्तानी तथा बिलायती दो नश्लों वाले पशुओं के लिए सीरम की खुराक कितनी होनी चाहिये इसके कुछ ब्योरे नीचे दिए जाते हैं —

जाति या नस्ल—सीरम की खुराक हरेक ५०० पौंड के वजन के लिये।

आयरसायर के पशु—२५०-३०० सी. सी.
होलस्टीन " "—२५०-३०० " "
७/८ भाग यूरोप का नश्ल —२२०-२४० सी० सी०
३/४ " " " " —१७५-२०० " "
१/२ " " " " —१२५-१५० " "
१/४ " " " " —१००-१२५ " "
१/८ " " " " — ८०-१०० " "

देशी पशुओं के लिये

सिन्धी	—	६० सी. सी.
सारीवील	—	४० " "
हरीयाना	—	३० " "
हांसी	—	३० " "

भैंस

दिल्ली	—	६० सी० सी०

यूरोप के जानवरों में यह बीमारी बहुत जोरदार होती है, इसलिये उनमें सीरम का खर्च अधिक होता है।

दूसरे नश्ल का जानवर छोटा हो या बड़ा ३० सी० सी० से कम देनी चाहिये।

जो महाशय इस सीरम को मुक्तेश्वर से मंगावें उनको साफ लिख देनी चाहिये कि कितनी मात्रा (सेन्टी मीटर का हिसाब करके) असली विदेशी पशुओं के लिए, कितने दो मसले विदेशी जानवरों के लिये और कितनी देशी जानवरों तथा भैंसों के लिए जरूरत है। लिखने का अभिप्राय यह है कि इसके लिखने से उसी प्रकार की सीरम तैयार की जाती है। वहां से हर नश्ल के लिए अलग अलग सीरम आती है।

२ बिषमय रक्त (Virulent blood):—इसकी मात्रा ½ से सी० सी० है, और इसको नीचे चमड़े के सुई द्वारा दी जाती है।

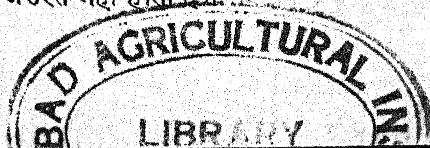
(½ सी० सी० जो अधिक पकड़ाने वाले हैं उनको और १ सी० सी० कम पकड़ाने वाले को।)

रक्त यदि शुद्धता से शीशे में बन्द ठण्डे जल में रखा जाय तो दस दिनों से भी अधिक अच्छा रह सकता है और यदि बर्फ में रखा जाय तो और अधिक दिनों तक ठहर सकता है।

मुक्तेश्वर से जो विषमय रक्त भेजा जाता है वह शीशे में एक दम बन्द किया हुआ रहता है और यदि गर्म देशों में भी रखा जाय तो ६ दिनों तक रह सकता है। लेकिन जहां तक शीघ्र हो सके पाने के बाद ही रक्त को व्यवहार में लाना चाहिये।

यदि विषमता की कुछ भी शंका हो तो, बगैर सीरम दिये हुए मामूली कीमत के छोटे छोटे जानवरों को, जो जोरदार पकड़ाने वालों में से हों देकर जांच करनी चाहिये। यदि इन जानवरों में साधारणतः कुछ सुई का असर आवे, तब उन्हीं में से थोड़ा रक्त लेकर और रक्त को खूब हिलाकर (ताकि जमने न पावे) इसी रक्त को ५ सी. सी. करके हर जानवरों को देनी चाहिये। यदि इस प्रकार के जानवर न मिलें ऐसा करने के लिए और रक्त पर शंका अब भी हो, तो नया विषमय रक्त मंगा कर जानवरों को ५ वें या ८ वें रोज के भीतर दे देनी चाहिये।

लेकिन जब पहली सुई से कुछ भी बुखार इत्यादि आवे तो दूसरी सुई देने की जरुरत नहीं होती है।



३ पिचकारी और उसके सामान (Hypodermicsyr-inges and accessories.)

(क) एक छोटी १ सी० सी० की रेकर्ड पिचकारी, बिषमय रक्त के लिये। (ख) एक बड़ी ५० सी० सी० की पिचकारी सीरम के लिये। (ग) कैंची। (घ) किरीओजौल का सैंकड़े में २ के हिसाब का लोशन।

पिचकारी इत्यादि को सुई देने के कब्ल साफ करके गर्म जल में उबाल देनी चाहिये।

सीरम को बाएं तरफ गर्दन से या चेरु (Shoulder) के पीछे दी जाती है, देने के बाद उसको मुट्ठी बांध कर नीचे रगड़ देनी चाहिये।

बिषमय रक्त दाहिनी तरफ गर्दन पर या चेरु के पीछे देकर ऊपर बताये मोताबिक रगड़ देनी चाहिये।

सुई देने के पहले सीरम की सुई के स्थान पर फेनाईल के लोशन से धोकर देना अच्छा है, लेकिन भाइरस की ओर सादे जल से धोनी चाहिये।

सुई का असर—सुई दिए हुए जानवरों की बुखार सबेरे शाम रोज देखनी चाहिये, और जिन जानवरों में बुखार अधिक हो लिख कर रखनी चाहिये। अधिकतर बुखार ४ से ६ दिन के अन्दर देखी जाती है।

इस तरह की सुई में नीची लिखी बीमारियों का आगमन हो सकता है :—

यदि सीरम और बिषयम रक्त अच्छे रहते हैं तो कोई बुराईयाँ देखने में नहीं आती हैं, सिर्फ बुखार ४ से ६ रोज तक में पाया जाता है।

यदि आंख में कांची, मुंह और नाक से लार चले और पेट भी चलने लगे तो समझना चाहिये कि या तो सीरम की खराबी थी या कम मात्रा में सीरम दी गई है।

यदि बुखार इत्यादि १५ रोज के अन्दर अच्छे हो जाँय तो पशु को वहाँ से हटा देनी चाहिये। यदि लक्षण अभी वर्त्तमान हों तो कुछ दिनों तक और रखना चाहिये।

अनुभव द्वारा हिन्दुस्तान में देखा गया है कि इस प्रकार की सुई से १०० में १ आध जानवर नष्ट होते हैं।

इस सुई के देने के पश्चात् नीची लिखी बीमारियों के लक्षण कभी-कभी मिलते हैं। जैसे :—(१) पाइरोपलाजमोसीस (२) कोकसीडीओसीस।

१ पाईरोपलाजमोसीस—पाइरोपलाजम कभी-कभी असावधानी से विषमय रक्त के साथ सुई द्वारा शरीर में प्रवेश कर जाते हैं और खाश कर के जब भैंस का विषमय रक्त व्यवहार किया जाता हो तब विषमय रक्त दुषित रहता है, तब ही यह

रोग होने का खतरा होता है। पाइरोपलाजम जो वहुत से जानवरों के शरीर में मौजूद रहता है, इस सुई द्वारा पशुओं में दुर्बलता आने से घर दबाता है। इस पाइरोपलाजम के कारण जानवरों को सुई के ६ ठें या ९ वें दिन के अन्दर बुखार होती है, पेशाब लाल करता है तथा वह खाना पीना छोड़ देता है।

उसके रक्त को जाँच करके, जब इस बीमारी का पता लग जाय तब १०० सी. सी. सैकड़े में एक के हिसाब से बना हुआ ट्राइपेन बुलु सलुयसन को चमड़े के अन्दर या गर्दन के शीरा में देनी (Juqularvein) चाहिये। यदि बुखार ६ घन्टे के अन्दर कम न हो और लक्षण अधिक बढ़ता जाय, तो फिर दोबारे इसी दवा को शीरा (Intravenious) में देनी चाहिये।

२ कौक्सीडीओसीस या छेरहा:—सूई का असर खतम होने के कुछ रोज बाद इस रोग का लक्षण देखने में आता है। जानवर बहुत कूंथने लगता है, पेट में दर्द प्रकट करता है और पाखाने के साथ रक्त का थका बन्धा हुआ गिरता है। फिर गोबर पानी के समान पतला हो जाता है। जब बीमारी का निर्णय हो जाय तब माँड़ इत्यादि देनी चाहिये और भीतर खाने के लिये साईलीन और केओलीन आधा औंस और एक औंस की मात्रा में देनी चाहिये।

तीसरे प्रकार की सुई जो इस बीमारी से रक्षा के लिये निकाली गई है, वो है, बकरी का विषमय रक्त :—(Goat-Virus) इसमें भी मुक्तेश्वर से विषमय रक्त मंगा कर बकरियों को सुई दी जाती है, उन स्थानों पर जहाँ पर जानवरों की रक्षा की आवश्यकता हो।

सुई दी हुई बकरियों की बुखार रोज ली जाती है, और जैसे ही बुखार तीसरे या चौथे दिन अधिक होती है, बकरी के गर्दन वाली (Jugularvein) रक्त नाली से, रक्त शीशे के फलासक में निकाली जाती है, जिस फलासक में तार पहले से दिया रहता है, रक्त देने के बाद खूब हिला देने से, रक्त जमता नहीं फिर उस रक्त को दूसरे बर्तन में डाल कर, जानवरों के 1 C. C. चमड़े के अन्दर सुई दी जाती है। इसका भी असर तीन से चार वर्ष तक देखा गया है। लेकिन किसी किसी जानवर में इस सुई से भी पाईरोपलाजमोसीस, होते पाया गया है। लेकिन सावधानी पूर्वक और शीघ्रता से देने से बिशेष लाभ देखा गया है।

चूंकि इस औषधि को तयार करने में देहातों में बड़ी कठिनाई देखी गई है इसलिये इसकी जगह बकरियों के तिल्ली के टुकड़े जो मुक्तेश्वर में तैयार किये जाते हैं, वैसी बकरियों से जिन में यह रोग पैदा किया जाता है, इस तरीके का नाम है (Goat-tissue

Vaccine method.) या बकरियों के मांस बिषमय रक्त का नियम। यह अब पटने में तथा बड़े बड़े शहरों में भी बनायी जाती है।

मुक्तेश्वर से एक एमपूल में छोटा मांसपिण्ड आता है, जिसमें १०० सी० सी० उबाला हुआ (डिसटील्ड) जल के साथ रगड़ कर, साफ मलमल कपड़े में छान कर तैयार किया जाता है, जो १०० जानवरों के लिए काफी होता है। इसकी मात्रा १ सी० सी० करके हर जानवरों को दी जाती है।

इस दवा को तैयार करने की विधि—मांस पिण्ड का एमपूल फोड़ने के बाद एक शुद्ध चीमटे द्वारा पिण्ड को निकाल कर एक छोटे शीशे का खल जो पहले स्पीरीट लगाकर दियासलाई द्वारा जला कर शुद्ध किया रहता है, उसमें रखा जाता है और रख कर मुसले स खूब रगड़ा जाता है।

इसके लिए १०० सी० सी० उबाल कर छांका हुआ (डिसटील्ड) जल रखना होता है, जिसमें १३ ग्रेन रसायनिक नमक मिला रहना चाहिए। थोड़ा जल मांस पिण्ड में मिश्रित कर फिर खूब घीसना चाहिए, जब पिण्ड घीस जाय तब सम्पूर्ण जल उसमें ढाल कर घोर देना चाहिये, तब एक मलमल के टुकड़े में जो खूब साफ हो छांक कर, सीसे के फलासक में जो शुद्ध हो ढाल देना चाहिए। फिर उस फलासक को तौलिया या कोई साफ झाड़न से ढाके रखना चाहिए, ताकि उसमें प्रकाशमय धूप न लगे, फलासक का मुंह शुद्ध रुई द्वारा बन्द रखना चाहिए।

सुई देने के नियम—इस औषधि को १ सी० सी० के मात्रा छोटी रेकड पीचकारी जो १ सी० सी० की हो, शुद्ध करके देनी चाहिए। सुई गर्दन या चेरु के पास देनो चाहिए। सुई देने के स्थान को शुद्ध जल से पहले धो लेना चाहिये, किसी औषधि के लोशन का व्यवहार धोने के लिये नहीं करना चाहिये।

छः महीने के नीचे के बछड़ों को तथा बूढ़े जानवरों को और जो लदबद गामीन (Advance pregnency) हों वैसे जानवरों को यह सुई नहीं पड़ती है।

भैंसों में कभी कभी इस सुई से हानि देखी गयी है, लेकिन सीरम के साथ देने के किसी तरह की हानि की आशा नहीं की जाती है।

सूई देने के बाद परहेज—भैंसों को सुई पड़ने पर जल के अन्दर एक हफ्ते तक नहीं जाने देनी चाहिये और हल या गाड़ी के बैलों को कम से कम एक हफ्ते तक बैठा कर रखनी चाहिए।

किन-किन वस्तुओं की आवश्यकता इस सुई के लिये होती है—

(१) रेकर्ड की पिचकारी १ या २ सी. सी. की।

(२) १०० सी. सी. का पानी नापने का ग्लास (Cylinder)

(३) एक या दो फलासक शीशे का १५०-२५० सी. सी. का।

(४) शीशे का खल या अमलदस्ता।

कीटाणु की शक्ति की जाँच (Control) :—यह जरूरी है कि हर ऐम्पुल से एक बकरे में सुई देकर दवा की शक्ति की

जाँच की जाय। इसके करने से यह पता चलता है कि जिन जिन पशुओं को सुई दी गयी, उनमें कुछ असर सुई का हुआ या नहीं। इस काम के लिये सुई दिये हुए जानवरों को दस पन्द्रह रोज तक दोनों शाम बुखार देखनी चाहिये। इसमें बुखार १०३° फ० एक हफ्ते के बाद जो दो तीन दिनों तक रहता है। किसी-किसी जानवर में बुखार नहीं भी पायी जाती है, जिनको बीमारी पहले हो गयी रहती है।

जब जानवरों की सुई खतम हो जाय तो ५ सी. सी. के आन्दाज औषधि किसी तन्दुरुस्त बकरी या बकरे को सुई द्वारा देनी चाहिये। सुई दिए हुए बकरे को तीसरे या चौथे दिन १०३° फ० बुखार होती है, किसी-किसी में दूसरे दिन से बुखार शुरू होती है जो ८ या १० रोज के अन्दर छुट जाती है। चूंकि बकरी में चेचक बीमारी के साथ फेफड़ों की भी शिकायत पायी जाती है, लेकिन देशी बकरियों में ये लक्षण या पेट के लक्षण जो मवेशियों में देखे जाते हैं नहीं होते। इसलिये इस काम के लिये सुई देने के पहले से एक बकरे का प्रबन्ध करके रखना उचित है।

सुई का असर—बुखार के साथ-साथ जानवरों का सुस्त पाया जाना, कड़ा पेशाब करना और किसी-किसी में चेचक के पूर्ण लक्षण भी दीख पड़ते हैं।

सुई का जोरदार असर—भैंसों में पाया जाता है, जिन में पशुओं से अधिक लक्षण देखा जाता है। पशुओं में भी

जो अच्छे नश्ल के हैं उनमें भी नीचे लिखे लक्षण मिलते हैं। यानि चेचक बीमारी के सब लक्षण, जैसे मुख और नाक से लार गिरना, तथा आँख आना, मुख में दानों का निकल जाना, पतला दस्त होना, इत्यादि पाये जाते हैं। बहुत से जानवरों का गोबर कुछ गिला होता है जो तीन चार दिन तक रहता है फिर उसके बाद जानवर ठीक हो जाता है। बहुत से जानवरों को जिनको दस्त अधिक होता हो, केओलीन एक औंस और साईलीन आधा औंस १ पाईन्ट गर्म पानी के साथ मिला कर दिन में दो बार देने से अधिक लाभ देखा गया है। जिन जानवरों की हालत अधिक खराब हो गयी हो, उनको, एन्टी राईनडर पेस्ट सीरम १ श्रेणी या २ श्रेणी का ७० से ८० सी. सी. तक, आधा चमड़े के अन्दर और आधा शिरा में सुई द्वारा देनी चाहिये, और फिर जरुरत हो तो दोहराना चाहिये। इस तरह के रोगियों की सावधानी से सेवा करनी चाहिये, कब्जियत पैदा करने वाले पदार्थ खाने के लिये नहीं देना चाहिये। खाद्य पदार्थ हल्का और ताजा होना चाहिये, जो शीघ्रता से पच जाय। ऊपर के लक्षणों से यह नहीं समझनी चाहिये की इस सुई से हानि अधिक होती है, इस सुई से हानि बहुत कम देखी जाती है और जितनी प्रकार की सुई चेचक बीमारी के लिये ऊपर बतलायी गयी हैं, उन सबों से यह आसान और अधिक लाभदायक है।

इस सुई के साथ तीन प्रकार की बीमारी सुई दिये जानवरों को होने की संभावना है। जैसे, पाईरोपलाजमोसीस,

थीलीएरीएसीस, और कौकसीडिओसीस। इसका कारण यह है कि इन बीमारी के कीटाणु, प्रायः इन सब जानवरों में वर्तमान रहते हैं, इस सुई के द्वारा जो कमजोरी होती है उस कारण उन कीटाणुओं की तेजी बढ़ जाती है।

१ पाइरोप्लाजमोसीस (Piroplasmosis) :—यह दशा तब होती है, जब बैवेसीया बाइजेमना पूर्ण जीवित होता है, जिसका होना इस सुई के बाद सम्भव है। सुई देने के ६ दिन पश्चात् बुखार आ जाना, और दूसरे लक्षण जैसे पेशाब लाल करना, सुस्त रहना, नाक और मुख से लार और पोटा गिरना देखा जाता है। लेकिन पेशाब का लक्षण कभी-कभी गुप्त रहता है और जानवर एक ब एक मर जाता है। इसलिये खून की जाँच के लिये ठहरनी नहीं चाहिये और तुरत ट्राइपेनबुलू की सुई जैसा कि पहले बताया जा चुका है, दे देनी चाहिये। इस दवा की खुराक १०० सी. सी. सैकड़े १% हिसाब का बना हुआ सलूयसन हो, जिसको पहले छाँक लेनी चाहिये।

२ थीलीरीएसीस—यह हालत ऊपर बतलाये हुए व्याधि के समान खतरनाक नहीं है, और इसकी भी उत्पत्ति वैसे ही होती है, यानि थैलेरिया, मीवटनस, जो रक्त में रहता है। पुनः उत्तेजित हो जाता है और नीचे लिखे लक्षणों को प्रकट करता है। इसमें बुखार लगातार १०६° फ० तक कई एक रोज तक रहती है। इसके लिए कोई खास इलाज नहीं है, लेकिन

प्लाजमोक्वीन सैकड़े १ के हिसाब का बना हुआ सलीवसन २० से ३० सी. सी. की मात्रा में मांसों के अन्दर सुई द्वारा देने से कुछ लाभ होता पाया गया है। इस सुई को पाँच छव रोज तक देनी चाहिए।

३ कोकसीडीओसीस—यह रोग ठीक ऊपर बतलाए प्रकार से उत्पन्न होता है, यानि कोकसीडीया जो जानवरों के आँत में रहता है और कमजोरी होने से उत्तेजित होता है। इस रोग के लक्षण पतला दस्त होना जिसमें रक्त कुटीया, कुटीया के समान मिली रहती है और जिससे बहुत दुर्गन्ध आती है। खुर्दब न द्वारा इनके मलों तथा मल के रक्त को जाँच करने पर बहुतायत से कोकसीडीया देखे जाते हैं। इस रोग की कोई खास औषधि नहीं है, अजवाइन इसमें कुछ काम का होता है। खाने के लिए दस्त रोकने तथा कीटाणु मारने वाली औषधि देनी चाहिए, और सेवा उचित रीति से होनी चाहिए।

ये तीन प्रकार की बतायी हुई बीमारियाँ, तीनों प्रकार की सुईयों के साथ अर्थात, (१) विषमय रक्त और सीरम (Serum simultaneous method) की सुई (२) बकरों की विषमय रक्त की सुई (Goat virus method) (३) बकरों के मांस वषमय रक्त की सुई (Goat tissue method) होती है।

चिकित्सा—जो जानवर इस रोग से पीड़ित हों, उनको एक अलग जगह पर रख कर दवा करनी चाहिए। सेवा और

नियम पूर्वक खिलाना इसमें अधिक लाभदायक हैं। शरीर को ओढ़ना इत्यादि से ढक कर रखनी चाहिए और ऐसे स्थान में रखना चाहिये जहाँ अधिक धूप और वर्षा से रक्षा हो। इनके खाने के लिए चावल की लपसी या जव का आँटा या सत्तू देनी चाहिये। जल, बीमारी के प्रथमावस्था में देनी चाहिए, जब दस्त शुरू हो जाय तो सुसुम जल थोड़ा-थोड़ा देना चाहिए। सुसुम माँड़ या बेल का फल उबाल कर उसके अर्क को जब प्यास अधिक हो तब देना चाहिए। मुंह नाक, गुदा मार्ग और पूँछ इत्यादि सुसुम जल में पोटास परमैंगनेट (एक बाल्टी जल में ५ ग्रेन) डाल कर सबेरे शाम धोना चाहिये। आँख को फीटकीरी के पानी से धोना चाहिये। जिस स्थान पर रोगी रहे उस स्थान को खूब साफ रखना चाहिये और दिन में दो बार फेनाईल का लोशन छींटना चाहिये जिससे मक्खी नहीं रहें, नहीं तो जख्मों पर बैठकर असाई कर देने से कीड़ा पड़ने का डर रहता है। पोटास का पानी सुसुम जल में एक पाईन्ट में एक ड्राम बड़े जानवरों को और आधा ड्राम छोटे जानवरों को दिन में दो बार देना चाहिये, जब दस्त अधिक होता हो। केओलीन १ औंस और साईलीन $\frac{1}{2}$ औंस एक पाइन्ट जल में मिला कर, दिन में दो बार देना चाहिये। लुगलसलुयसन (Lugalsolution) २० सी. सी. बड़े जानवरों को, और छोटे को १० सी. सी. चमड़े के नीचे सुई द्वारा देने से लाभदायक है।

जब जानवर की हालत सुधरने पर हो, दस्त ठीक होने लगे तो हरी घास थोड़ी थोड़ी देनी चाहिये मांड़ के साथ आधा छटांक नमक मिलाकर खाने के लिये देना चाहिये, और नीची लिखी औषधियों के देने से भी कमजोरी शीघ्र दूर होती है, जैसेः—

कुचला—आधा ड्राम।

सोंठ—आधा औंस।

चीरैता—आधा औंस।

कसीस—दो ड्राम।

इन सबों को सफूफ कर के दो खुराक करें, और दिन में दो बार छोआ गुड़ के साथ सबेरे शाम चटाना चाहिये।

एक नमक का ढेला गोहाल में तार में गांथ कर टांग देना चाहिये, जिस के चाटने से पशु स्वस्थ रहते हैं।

इस रोग की अवधि २ से १२ या १६ दिनों तक, लेकिन अधिकतर ३ से ६ दिनां तक देखी गयी है।

रोगियों के गोबर इत्यादि को अलग गढ़े में गाड़ देना चाहिये। बीमारी से मरे हुये जानवरों के चमड़े को कई जगह छेद या चीर कर ठीक तरह से गाड़ देना चाहिये, जिससे कोई आदमी या हिंसक जन्तु उसे न उखाड़ें।

कब समझनी चाहिये कि महामारी का अन्त है—सब से पीछली रोगी के बाद एक महीने तक महामारी होने की सम्भावना है।

लेकिन जब सब जानवरों को महामारी से बचने की सुई पड़ जाय तब आखिरी रोग के चौदह रोज बाद बीमारी की समाप्ति समझनी चाहिये। तब जानवरों को अपने अपने कामों तथा स्थानों पर ले जा सकते हैं।

कण्ठा (घोड़ों में) (STRANGLES)

स्वभाव—यह एक घोड़ों की सर्दी वाली बीमारी है, जिससे नथनों के अन्दर सूजन हो जाते हैं और गिल्टियों तथा चमड़े पर फोड़े निकल जाते हैं।

किन किन जानवरों को यह रोग होता है—यह रोग घोड़े और खच्चरों को अधिक होता है, गदहों में कभी कभी देखा जाता है। दूसरे जानवरों को यह रोग नहीं होता है।

नये पशु जिनकी उम्र २ से ५ वर्ष के अन्दर की है, उनमें अधिक होता है, लेकिन छोटे बच्चों को भी यह रोग सताता है। पुराने जानवर जिनको रोग पहले नहीं हो उन्हें भी हो सकता है। एक बार बीमारी होने से फिर रोग नहीं होता है।

कीटाणु और उसके नियम—इसके कीटाणु का नाम इस्ट्रेप्टोकोकस इक्वाइ औफ सुटज (Streptococus equi of

Shutz) है जो फोड़ों के पीब तथा नाक के बलगम में अधिक पाये जाते हैं। लेकिन कुछ कीटाणु आंत में तथा रक्त में भी पाये जाते हैं।

इन्फ्लुएञ्जा, केटार सोर थ्रोट, छूतहा फेफड़े का सूजन (Contagious pnumonia) के साथ यह रोग पासचुरेला कोकोबेसील्स द्वारा शुरू होता है, जो बीमारी के प्रथमावस्था में मिल सकता है। यह कीटाणु शरीर की शक्ति को क्षीण करते हैं और तब इस्ट्रेप्टोकोकस अन्दर जाकर रोग उत्पन्न करते हैं।

इस्ट्रेप्टोकोकस बड़ी आसानी से पीब में खुर्दबीन द्वारा देखा जाता है और एनीलीन के रंग द्वारा रंग जाता है और पीब के अणुओं में साफ झलकता है। यह कोकाई सीकड़ी की तरह देखने में लगते हैं, दो चार या और भी अधिक होते हैं, उनकी सीकड़ी सीधी या टेढ़ी भी होती है। जिस स्थान पर ये कीटाणु गिरते हैं, उस जगह बहुत बढ़ते हैं। किसी अस्तबल में ये कीटाणु टंगे हुए भी रहते हैं, जिन से कभी कभी रोग देखने में आते हैं। स्वस्थ घोड़े वैसे अस्तबलों से कीटाणु को ढोते हैं और जिनकी सहन शक्ति कम हुई उन जानवरों में रोग फैलाते हैं। रोगी के चंगा हो जाने पर भी उस के पेट में ये कीटाणु कई महीनों तक रहते हैं, इसलिये घोड़े की लीद इत्यादि तथा उसके चारा वगैरह खतरनाक होते हैं, जिन से बीमारी फैल सकती है। यह नहीं कहा जा सकता कि यह कितने दिनों तक जीवित रहता

। फिर भी बिना जानवर के शरीर के इसका निर्वाह नहीं है। ुद्ध करने वाली औषधियों द्वारा इसका शीघ्र नाश किया जाता : और जिस के व्यवहार से यह दबा हुआ रहता है।

बहुत लोगों का कहना है कि ऊपर बताये गये कीटाणु इस ोग के नहीं हैं, बल्कि इसके कीटाणु दूसरे और बहुत सुक्ष्म होते हैं।

नयी उम्र के सिवा, ठण्ढे स्थानों पर बदलना, अधिक जानवरों का एक साथ रहना, थकावट, दांत आना, सरदी इत्यादि सभी इस रोग के उत्पन्न करने में सहायता पहुँचाते हैं।

कीटाणु शरीर में स्वांस द्वारा प्रवेश करते हैं, इसके बाद जख्मों द्वारा जैसे अखता वगैरह इत्यादि में जिससे अन्दर के परदे में सूजन हो जाता है, जो अधिकतर घोड़ों या खच्चरों में देखा जाता है। कीटाणु शरीर में पैठने के ४ से ८ रोज के अन्दर बीमारी पैदा करते हैं।

लक्षण, प्रकार और जांच—साधारणतः इस रोग में बुखार होती है, दोनों नथनों से पहले सरदी जल के समान गिरती है जो पीछे कुछ गाढ़ी धुन्धले रंग की हो जाती है और आखिर में खूब गाढ़ी पीब के रंग की हो जाती है। जबड़े के नीचे की गिल्टी और उसके आस पास के मांस फूल जाते हैं, जो तीन चार दिन के अन्दर फोड़े के समान होकर फूट जाते हैं तथा जिस से सफेद मलाई रंग का पीब गिरता है।

महामारी के समय केवल सरदी या केवल फोड़ा निकलना भी देखा गया है।

असाधारण प्रकार की बीमारी में नीचे लिखे लक्षण देखे जाते हैं:—

(क) टोंटे की कण्ठा (Pharyangeal and Laryangeal Strangles):—जिसमें कण्ठ का सूजन तथा खांसी मौजूद रहती है, निगलने में तकलीफ होती है। इसमें फोड़े गटरल पाउच के गिल्टियों में निकल जाते हैं, जो कभी कभी अन्दर ही फूट जाते हैं और जहां पर चीरने में कठिनाई है; क्योंकि चीरने की जगह पर पेरोटीड लार बनाने के गिल्टी तथा बड़ी बड़ी रक्त नालियां जो सिर को पोषण करती हैं, वहां पर बर्त्तमान रहती हैं।

(ख) पेट सम्बन्धी रोग—कभी कभी अखता किये जाने पर इस रोग के कीटाणु रक्त द्वारा पेट में पहुँच जाते हैं और वहां पर आंतों में तथा उनके परदों के गिल्टियों में फोड़े उत्पन्न करते हैं।

(ग) फेफड़े सम्बन्धी—फेफड़े के ऊपर के परदे की सूजन फेफड़े की सूजन और मीडीयाइसटाइनम में फोड़े का हो जाना पाया जाता है।

(घ) दीमाग के अन्दर भी फोड़े कभी कभी देखे जाते हैं।

(ङ) गुदामार्ग और पेशाब करने के बीच के स्थान पर तथा और दूसरे स्थानों पर भी फोड़े पाये जाते हैं।

(च) चेहरे के चमड़े पर छोटी छोटी फुन्सियां या फोड़े जो जबड़े के नीचे वाली गिल्टी के झुकाव में, तथा पैरों और मोजे के पीछे भी छोटे छोटे फोड़े देखे जाते हैं जिन को क्वाटेनीयस कण्ठासार (Cutenious strangles) कहते हैं।

जांच—यह रोग घोड़ों की कण्ठासार (Glanders) की बीमारी से गड़बड़ा जाती है, क्योंकि कभी कभी नथनों पर के चमड़े सरदी के कारण छुट जाने हैं। यह चमड़ा का छुटना नासूर नहीं कहलाता जो कण्ठासार में पाया जाता है इसके अलावे जबड़े के नीचे के फोड़े फूटते हैं, जो कण्ठासार में उसी स्थान की सूजन जो बहुत कड़ी होती है और फूटती नहीं है।

कूबटेनीअस कण्ठा गिल्टियों के फूलने की बीमारी (Epizootic lympangities) या फारसी (Farcy) से गड़बड़ा सकते हैं, लेकिन पीब की जाँच करने पर कण्ठा के कीटाणु बहुतायत से पाये जाते हैं।

दोनों हालत में मेलीन (Malline) द्वारा जाँच करने पर कोई असर नहीं देखा जाता है।

महामारी के हो जाने पर क्या कार्यवाही होनी चाहिये :—

(१) रोगी को अलग हटा कर रखना चाहिये।

(२) रोगी द्वारा व्यवहार किये चारे तथा उसके लीद या और जो वस्तुएँ हों, और विशेष कर उसके नथने इत्यादि धोने के स्पञ्ज या रबर इत्यादि को जला देना चाहिये।

(३) रोगी जिस स्थान पर पहले रहता हो, तथा उसके द्वारा काम में लाये हुये बर्त्तनों या नादों को नियम पूर्वक शुद्ध करना चाहिये।

(४) रोगी के रहने के दोनों ओर के स्थानों को शुद्ध करना चाहिये।

(५) यदि कई एक जानवर बीमार हों तो समूचे अस्तबल को खाली करके शुद्ध करने के नियमों में बतलाये अनुसार शुद्ध करना चाहिये।

(६) चिकित्सा—इवक्लीपटस का तेल २० बून्द या कारबोलीक एसीड ५ बून्द गर्म जल में देकर उसके भाफ को रोगी के नाक में सवेरे शाम उनाह देनी चाहिये। फोड़े को चीर कर टींचरआईडीन द्वारा ड्रेस करके पट्टी बान्ध देनी चाहिये। यदि खाँसी हो तो कण्ठ पर सेंक दिलाना आवश्यक है। रूई या किसी प्रकार के कपड़े इत्यादि जो फोड़े के लिये व्यवहार में लाये गये हों, उनको जला देनी चाहिये। पटुये तथा रूई से नाक खूब साफ करके जला देनी

चाहिये। ध्यान पूर्वक उन औजारों को जो रोगी के लिये व्यवहार में लाये गये हों, जल में उबाल देना चाहिये। जिन जानवरों की चिकित्सा होती हो, उनके लीद तथा पेशाब द्वारा भींगे हुए बिछावन और बचे हुए खाद्य पदार्थों को जला देना चाहिये।

नीचे लिखी औषधियों को इस रोग में प्रयोग किया जाता है—

इवक्लीप्टस का तेल—१$\frac{1}{2}$ से ३ ड्राम तक

गैओकौल—१$\frac{1}{2}$ से २ ड्राम तक

क्लोरोफौरम—२ से ३ ड्राम तक

तारपीन का तेल—२ से ४ ड्राम तक

सीसम का तेल—२ से ४ ड्राम तक

छोआ गुड़—१ औंस से २ औंस तक

इन सब औषधियों को गुड़ में मिलाकर चटनी के समान करके दिन में दो बार देने से सर्दी अति शीघ्र आराम होती है।

गिल्टियों में सूजन हो जाने पर नीचे लिखी सुई से लाभ पाया गया है।

आईडीन—१ भाग।

पोटास आएडाएड—५ भाग।

डीस्टील्ड जल—१०० भाग।

इसकी सुई सांस की नली के दो रगों के मध्य में किरीकोयाड कारटीलेज (Cricoid Cartilage) के समीप देनी चाहिए ध्यान रहे कि औषधि कुछ भी चमड़े के अन्दर न गिरे, वरना फोड़ा निकलने की सम्भावना रहती है। इसकी बचाव के लिए सुई निकलने के कबल थोड़े नमक का पानी (साढ़े चार ग्रेन में एक औंस उबाला डीस्टील्ड जल में) पीचकारी से दे देने से औषधि के बाहर गिरने का डर नहीं रह जाता है।

(७) महामारी के समय जानवरों को अखता करना मना है, या उन रोगियों पर जो हाल में बीमार पड़े हों उन जानवरों पर कभी नहीं करनी चाहिये।

(८) महामारी के पश्चात् रोगियों को अपने स्थान पर लाने में शीघ्रता नहीं करनी चाहिये, क्योंकि इस के कीटाणु बहुत दिनों तक जीवित रहते हैं।

(९) अस्तबल तथा उनके आस पास के स्थानों, नालों, पानी पीने की जगहों को खूब साफ करा देनी चाहिये ताकि बीमारी फिर नहीं बढ़े।

सभी जानवर और खास करके नये उम्र के पशु जो पहले पहल अस्तबल में लाये गये हों, या वैसे पशु जिनको सर्दी हुई हो, एक महीने तक और जानवरों से अलग रखनी चाहिये और उनके खाने-पीने या मलने का सब सामान अलग रखनी चाहिये।

धनुषटंकार (Tetanus)

इस बीमारी को दाढ़ों का बैठना (Lockjaw) भी कहते हैं।

प्रकृति—धनुष्टंकार जानवरों का वह रोग है, जिसमें शरीर ख़ास हिस्से में कंप और ऐंठन होती है, और कभी-कभी सारे र में भी देखी जाती है। यह छूत से फैलने वाला रोग है, यह किसी-किसी जानवरों में देखने में आता है। ठण्ढे के बनिस्वत गर्म देशों में अधिक होता है, किसी-किसी न में दूसरे स्थानों से अधिक पाया जाता है।

कीटाणु और उसके शरीर में प्रवेश करने के नियम—इस के ाणु का नाम टेटनाई (Bacillus Tetani) है, जो शरीर में म के द्वारा प्रवेश करता है। इसकी शक्ल पतले ढोल की ड़ी के आकार की तरह होती है, जिसका दोनों सिरा गोल ा है, और एक सिरा स्पोर के कारण कुछ बढ़ा हुआ रहता है ी लम्बाई ४ से ५ यू० और मोटाई ·०२ से ·०३ होती है। ऑक्सिजन के अनुपस्थिति में बढ़ता है।

इस रोग के कीटाणु और स्पोर पृथ्वी पर धूपों में, जल में, : में, नाले तथा जमीन के दरारों में और स्वस्थ पशुओं के ों में पाये जाते हैं। लेकिन जब जखम के अन्दर प्रवेश करते ात्र धनुष्टंकार रोग उत्पन्न करते हैं। बड़े बड़े जखमों में जो ्धर तिधर कटे होते हैं और जिसकी गहराई अधिक रहती है

उसमें अधिक बढ़ते हैं। जख्म के अन्दर घुस कर एक विष उत्पन्न करते हैं, जिसको टेटनीन या टेटनो टौक्सीन कहते हैं और इसी विष के कारण यह रोग शुरू होता है। इस विष की नसों के प्रति अधिक प्यार होता है, और वह पहले छोटे नसों के द्वारा प्रवेश करने लगता है और अन्त में दीमाग में जाकर स्थिर होता है बीमारी अधिक पकड़ने पर, विष का कुछ अंश रक्त प्रवाह द्वारा भी जा सकता है, ऐसी दशा में स्नायुयों के छोटे तंतुओं द्वारा भी दीमाग तक पहुँचती हैं।

इसकी स्पोर बहुत बलिष्ट होती है, जो सड़ी हुई वस्तुओं में करीब २$\frac{१}{२}$ महीने तक जीवित रहती हैं और १६७° गर्म जल में एक घन्टे तक ठहर सकती है, लेकिन खौलता हुआ जल (२१२° फ) इसको चार मिनट में मार सकता है, रसायनिक वस्तुओं के प्रति इसकी सहन शक्ति अजीब देखी जाती है। लेकिन कीटाणु १४०° फ से १४९° फ० तक की गर्मी से नाशों को प्राप्त होते हैं।

कीटाणु और इसके स्पोर अति शीघ्र रंग जाते हैं और जील के नियमानुसार इनको खुर्दबीन में देखनी चाहिये कारबल फूकसीन में एक शीशा को जिसमें रक्त लगा हो डाल देना चाहिये (१ भाग सैकड़े १० के हिसाब का बना हुआ फुकसीन सलोवसन और १० भाग कारबोलिक एसिड का लोसन जो १०० में ५ के हिसाब से बना हो) फिर उसको ३ से ५ मिनट तक

गर्म करना चाहिये, जब भाफ उड़ने लगे तब, १०० में २५ का नाईट्रीक या सलफीवरीक एसिड का सलीवसन देनी चाहिये उसके बाद १०० में ६० भाग का अलकोहल (शराब) देकर धो देना चाहिये और तब मीथलीन बुलु की सलीवसन देनी चाहिये। इससे कीटाणु नील रंग से रंगेगें और स्पोर लाल हो जायगा।

इस रोग के रक्त या मांस द्वारा फैलने का डर नहीं बल्कि इसके पीव द्वारा फैलने का अधिक भय है।

शरीर में प्रवेश करने के नियम—चमड़े तथा किसी परदे पर जखम रहने से कीटाणु जो गरदे इत्यादि में पाये जाते हैं, जख्म में संसर्ग होने से कीटाणु प्रवेश कर जाते हैं। इस कीटाणु के रहने की जगह जमीन ही है और इसका अधिक प्रभाव कांटी वगैरह गड़ने तथा किसी चीज से भोंका जाने से, तथा जिस जख्म में मांस इत्यादि अधिक कटे हों, में होता है। जो जख्म बराबर जमीन में या लीद से लगती हो, जैसे पाँव के जख्म इत्यादि में अति शीघ्र यह रोग प्रभाव लाता है। और बड़े-बड़े चीर फाड़ जैसे अखता या दूम को काटा जाना इत्यादि में भी होने का डर रहता है। जिस रोगी में कोई बाहरी जख्म न हो तो समझना चाहिये कि या तो इसके मुख में या आँतों में जख्म थे। इसके कीटाणु सिर्फ जख्म में रह कर विष उत्पन्न करते हैं, जो सारे शरीर में फैलता है। जख्म पकाने वाले कीड़े इस कीटाणु के काम में सहायक होते हैं।

कीटाणु के शरीर में पैठने के बाद घोड़ों में ३ से १५ दिनों के अन्दर तथा मवेशियों या भेंड़ों में कम से कम २ दिनों के अन्दर भी लक्षण प्रगट कर सकते हैं।

लक्षण और परीक्षा—प्रथम एक या दो दिन, जानवर चलने फिरने की इच्छा नहीं करता और यदि जबरदस्ती चलाया गया तो मन्दगति से चलता है। जब जानवर चलता है, तो पाँव बहुत कठिन बोध होते हैं और शीघ्र मूड़ते नहीं। रोगी धीरे से अपने खाने को चबाता है और निगलने में तकलीफ प्रकट करता है। सिर अजीब तरह से उठाये रखता है जिसके देखने से पता चलता है कि कठीन हो गया है। इसके बाद ऐंठन सिर या पीछले धड़ से शुरू होती है, या तो पीछे या आगे की ओर केवल बढ़ती है। किसी-किसी में ऐंठन विशेष स्थान में ही रहती है। आँख के माँसों के ऐंठन के कारण आँख की पुतलियाँ चौड़ी हो जाती हैं, और आँख अन्दर घुसी हुई मालूम पड़ती हैं। आँख का तीसरा परदा जिसको मेमवरना नीकटीटैन कहते हैं वह आँख के ऊपर चली आती है और विशेष कर जब पशु को डराया जाता है तो; और अधिक दीख पड़ती है। कण्ठ के माँसों में ऐंठन होने से लार भीतर घोंटे नहीं जा सकते, इसलिये मुंह से तार की तरह गिरते हुए दीख पड़ते हैं। पेट सिकुड़ जाता है और दूम कड़े हो जाते हैं और या तो एक सीध में या एक तरफ को खड़े बोध होते हैं। शरीर के कोई-कोई माँस एकदम साफ देखने में आते हैं, जो

छूने पर लकड़ी के समान बहुत कठिन मालूम होते हैं। किसी प्रकार के शब्द या प्रकाश या शरीर छू जाने से ऐंठन शुरू हो जाती है, जिसके साथ बहुत पसीना भी चलता है। साँस अल्प-अल्प और शीघ्र-शीघ्र ली जाती है, जिसके कारण वायु में कोई रद बदल नहीं हो पाती है। ताप सिर्फ १° या २° अधिक रहता है। लेकिन ठीक मृत्यु के प्रथम जब ऐंठन लगातार बन्धी रहती है, उस समय ताप १०५° से १०७° तक हो जाता है।

यह रोग कुचले के विष, पागलपन, (Rabies) गर्दन के बात रोग (Rheu matism) और दीमाग की बीमारियों से गड़बड़ा सकता है।

कुचले के विष में ऐंठन एक ए क शुरु होती है और किसी विशेष मांसों में नहीं होती बल्कि सारे शरीर में देखी जाती है, इसकी ऐंठन अधिक तेज होती है और बीच बीच में एकदम बन्द हो जाती है।

पागलपन (Rabies) में जानवरों द्वारा काटे जाने का कथन होता है और इसके लक्षण दूसरे ही होते हैं, काटने की इच्छा होती है। इसकी ऐंठन कम होती है और यदि बन्द होती है तो एकदम बन्द ही हो जाती हैं। जिसमें आगे चलकर लकवा हो जाता है।

बात रोग की ऐंठन इस तरह नहीं होती और छूने से अधिक नहीं बढ़ती है, जिसे देखने से भेद का पता चल जाता है ठीक यही दशा दिमाग की बीमारी की भी है।

रोग का उपाय—जिनकी अन्तिम अवस्था हो उन्हें छोड़ देना चाहिये, और नये रोगियों की चिकित्सा करनी चाहिए यदि जानवर शीघ्र लक्षण प्रगट करे और लक्षण अधिक भयानक हो, तो उसकी मृत्यु एक सप्ताह के अन्दर हो सकती है। और जिनमें लक्षण देर से प्रगट हो जैसे दो तीन हफ्तों के बाद (किसी जखम के होने पर), और लक्षण बहुत साधारण हो, केवल आंख के परदे नजर आते हों, और जबड़े नहीं बैठे हों, या उनके बैठे एक या दो रोज हुआ हो, केवल ऐंठन हो तो चिकित्सा से लाभ होता है। घोड़ों में इस रोग से ७५ से ८५ जानवरों की मृत्यु १०० में होती है। मवेशियों में १०० में ७० की हानि देखी गई है, इनमें यह रोग बहुत धीरे धीरे होता है। भेड़ों और बकरों तथा कुत्तों में, भी यह रोग साधारण रूप से होता है, जिससे मृत्यु ८ दिनों के अन्दर हो जाती है। कुत्तों में यह रोग कम देखा जाता है।

चिकित्सा—रोगी को आराम और शान्तिपूर्बक रखा जाय। रोगी को एक अन्धेरे अस्तबल, में जो बड़ा हो जिसमें प्रकाश नहीं जाता हो लेकिन हवा जाती हो, जिसमें बिछावन पुवाल का हो या बालू का बिछावन हो, रखना चाहिये। औषधि इत्यादि द्वारा

जितना कम उसको छेड़ा जाय उतना ही लाभदायक है। किसी मनुष्य को वहां नहीं जाने देना चाहिये। खाना जो दिया जाय बहुत हल्का हो, जैसे चोकर को गर्म पानी में घोल कर, मांड़ या सत्तू घोल कर चिकना या तिसी का उबाला हुआ रस, दूध, हरी घास इत्यादि थोड़ी-थोड़ी देनी चाहिए दुर्बलता न हो इसका ध्यान रखना चाहिये, ठण्ढा जल बराबर बाल्टीमें रोगी के निकट पीनेके लिये रखना चाहिये, पीने या खाने के सामान को ऊपर उठा कर मुख के निकट देनी चाहिये। यदि मुख द्वारा जानवर न खा सके तो धीरे धीरे गुदा मार्ग से खाना देना चाहिये। जैसे जैसे रोग बढ़ता जाय, वैसे रोगी को रस्सी या पटरे इत्यादि या सिलिंज द्वारा लटका कर रखना चाहिये, क्योंकि सोने या पड़े रहने से लक्षण अधिक बढ़ जाते हैं और छाती के मांसों तक भी फैल सकते हैं।

जखम जो वर्तमान हों उन्हें साफ करके कारबोलिक एसिड लगानी चाहिये। गर्म लोहा से दागना अच्छा नहीं है, क्योंकि इससे बहुत मरे हुये पिण्ड उस स्थान पर हो जाते हैं, जिसमें इन कीटाणुओं को बढ़ने का अवसर मिलता है। जखम के अन्दर कोई वस्तु जैसे लड़की का टुकड़ा या कंकड़ इत्यादि हो तो उसे निकाल देनी चाहिये।

कोलरल हाईड्रेट गुदा मार्ग से एनीमा करीब आधा औंस, एक पाईन्ट सुसुम जल में मिला कर देनी चाहिये।

टेटनस एनटी टौक्सीन (Tetnus Antitoxin.) जिसे रोग से बचने के लिये व्यवहार किया जाता है। वह बीमारी हो

जाने पर भी बहुत लाभ पहुँचाता है। इसलिये इस औषधि को ५० से १०० सी० सी० की मात्रा में चमड़े के नीचे या २० से ३०००० युनिट खून की नली द्वारा जितनी शीघ्रता से दी जा सके देने से लाभ होता है। इसको दिन में एक बार या एक दिन बाद करके दे सकते हैं, क्योंकि बहुत शीघ्र यह शरीर से बाहर हो जाता है।

कारबोलिक एसिड जो इस रोग के लिये बहुत लाभदायक है। नीची लिखी मात्रा में दिया जा सकता है। एक ड्राम कारबोलिक एसिड १०० में ५ या १० भाग का सलीवशन बना कर गर्दन में या कन्धे पर हर एक दो घण्टे पर देना चाहिये। पहला ३२ घण्टे तक दिया जा सकता है। उसके बाद कुछ देर करके दिया जा सकता है। यहाँ तक कि २४ घन्टों के अन्दर ३६ ड्राम तक दिया जाता है, क्योंकि इस रोग में कारबोलिक एसिड को सहन कर सकने की बिशेषता है।

कारबोलिक एसिड की सुई देने के बाद लुगल सलीवशन (आईडीन और पोटास आएडाएड) को सुई के द्वारा देनी चाहिये। पीने का जल गुदा मार्ग से दे सकते हैं।

टींचर लोवेलीया १५ से २० सी० सी० तक चमड़े के नीचे सुई द्वारा देने से लाभ देखा गया है।

मैगसलफ सलीवसन जिसे बहुत लोगों ने बताया है, देनी चाहिये पर मैंने इससे कोई विशेष लाभ होते नहीं देखा है।

भांग पीस कर करीब आधा औंस से एक औंस तक छोआ गुड़ में मिला कर रोज खिलाने से भी लाभ होता है।

इस रोग को रोकने का उपाय—जिन स्थानों पर यह रोग अधिक फैलता हो, वहां पर किसी प्रकार का जख्म इत्यादि या अखता करने के बाद, टेटनस एनटीटौक्सीन का व्यवहार करना बहुत जरुरी है, इसकी मात्रा १० से २० सी० सी० बड़े जानवरों के लिये और ५ से १० सी० सी० छोटे जानवरों के लिये काफी होती है। इसका असर तीन हप्तों तक रहता है। यदि जख्म भरा न हो तो दूसरी सुई की आवश्यकता होती है।

सारा या साड़ा (Trypanosomiasis)

स्वभाव—साड़ा पशुओं की एक ऐसी बुखार है जो बीच-बीच में छूट जाती है और फिर पारी से आती है, जिसके रक्त में एक कीटाणु पाया जाता है जिसका नाम ट्रीपनोसोम इभैनसी है, जिसके कारण रक्त पतला हो जाता है, जानवर दुबला हो कर कुछ दिनों के पश्चात् मर जाता है।

फैलने के स्थान और इस रोग से पकड़ाये जाने वाले जानवरों के नाम—यह रोग उत्तरी भारत में अधिक फैला हुआ है, जैसे पंजाब, पश्चिमोत्तर प्रदेश, अवध का सूबा और बंगाल के हिस्सों में, राजपूताने में, बंगाल प्रेसीडेन्सी के अन्दर तथा बिहार प्रान्त तथा समूचे बर्म्मा और आसाम में यह रोग पाया जाता है।

दक्षिणी भारत में इसका प्रचार बहुत कम है तथा मद्रास के निकट तथा दक्षिणी भारत समुद्र के निकट यह रोग सुनने में भी नहीं आता है।

हिन्दुस्तान के बाहर फारस की खाड़ी के निकट तथा मोरिसस, फ्रेंच इण्डो चाइना तथा डच इस्ट इण्डीज, यूनान, फिलिपाइन द्वीप समूह, मिश्र, सुडान और पैलेस्टाइन इत्यादि में भी यह रोग फैला हुआ है

स्वभावत: यह रोग घोड़ों, गदहों, खच्चरों, ऊँटों और मवेशियों को होता है। यह रोग कुत्तों में भी पाया गया है और विशेष कर बिलायत से लाये हुये कुत्तों को होता है। बर्म्मा में हाथियों को भी यह रोग देखा जाता है।

स्वभावत: चूहे खरगोश तथा बिलायती चूहों में यह रोग नहीं होती है, लेकिन सुई द्वारा इन जानवरों में यह रोग उत्पन्न किया जा सकता है, जो प्राण घातक होता है।

मनुष्यों में यह रोग फैलते हुए नहीं सुना गया है और चिड़ियों में भी नहीं होता है। घोड़े, गदहे और खच्चरों में यह रोग अधिकता से होता है और इनमें कभी-कभी महामारी के समान रूप धारण कर लेता है। यह रोग अधिक से अधिक एक या दो महीनों तक ठहरता है और कम से कम एक सप्ताह में भी खत्म हो जाता है। इन पशुओं में मृत्यु भी अधिक देखी गयी है।

ऊँटों में यह रोग बहुत ज रदार होता है, कभी-कभी ऐसा देखा गया है कि इनकी बुनियाद ही खत्म हो जाती है। इनमें ठीक घोड़ों की तरह शीघ्रता से होता है, लेकिन इन जानवरों में बहुत दिन तक ठहरता है, यहाँ तक कि तीन-तीन बरस तक, जिससे इसका नाम पंजाब में तीन बरसा रखा गया है। इस रोग से ये जानवर अधिक मरते हैं कोई-कोई स्वस्थ भी होते देखे गये हैं।

मवेशियों में—इस रोग के प्रति विशेष सहन शक्ति होती है, गाय या विशेष कर भैंस इस कीटाणु को रक्त में बिना किसी लक्षण के बहुत दिनों तक रख सकते हैं। यद्यपि पकड़ाये हुए पशु दुबले हो जाते हैं फिर भी मृत्यु उनमें बहुत कम देखी जाती हैं। इनमें मृत्यु इस रोग से १०० में २० या ३० तक होती है।

यह रोग विशेषकर बरसात या उसके एक महीने पश्चात् आरम्भ होता है, जिन दिनों में मक्खियों की अधिकता देखी जाती है, उन्हीं दिनों में यह रोग होता है। अषाढ़ से आसीन तक यह रोग 'अधिक पाया जाता है। इन दिनों बड़ी मक्खियां जैसे डंस और कुकुर मांछी इत्यादि अधिक पायी जाती हैं, जिनके शरीर में पहले से इस रोग का विष रहता है और जो सर्दीले स्थानों में देखी जाती हैं। बरसात के दिनों में बढ़ती हैं और पशुओं को काट कर रोग उत्पन्न करती हैं।

कीटाणु और उसके शरीर में पैठने के नियम—सारा बीमारी के कीड़े ट्रीपनोसीम जाति के हैं, जो संसार के सब हिस्सों में पाये जाते हैं और इस जाति द्वारा नीचे लिखे रोग उत्पन्न किये जाते हैं।

१ सारा जो हिन्दुस्तान में ट्रीपनोसोम इभैनसी के कारण होता है।

२ डुरीन यानि घोड़ों की गर्म्मी, जो ट्रीपनोसोम इक्वीपरडम (Trypanosom Equiperdum) द्वारा घोड़ों, गदहों को यूरोप के कुछ भागों में, मोरक्को में, एलजिरीया ट्रीपोली, अमेरिका एशिया माइनर, फारस तथा हिन्दुस्तान में होता है।

३ नैगना या टेसटीस मक्खी की बीमारी, जो ट्रीपनोसोम ब्रुसीई द्वारा आफ्रिका में होती है।

४ मैलडी कैडरस जो ट्रीपनोसोम इक्वाइनम द्वारा दक्षिणी अमेरिका के घोड़ों में पाया जाता है।

५ गैमवीया में घोड़ों की बीमारी जो ट्रीपनोसोम डाइमोरफम द्वारा देखी जाती है।

६ मवेशियों में पीत्त की बीमारी जो ट्रीपनोसोम थैलेरी द्वारा ट्रांसभाल में होती है।

७ मनुष्यों में सुतनी रोग (Sleeping Sickness) जो पश्चिमी तथा मध्य अफ्रिका में, ट्रीपनोसोम गैमबीनीज द्वारा होता है। यही एक ट्रीपनोसोम है जो मनुष्यों के अन्दर अब तक देखा गया है।

ग्रीफैथ इभेनस जो एक पलटन के पशु विभाग के कर्मचारी थे, उन्होंने न० १ में बताये हुये कीड़े के नाम का पता लगाया था। इस वजह से उनके नाम पर ट्रीपनोसोम इभैनसी रखा गया है।

कीड़े की परीक्षा रक्त में किस प्रकार होती है—इस जाति के कीड़े जीव विभाग के हैं (Animal Kingdome) जो देखने में तकुआ या मछली के आकार के होते हैं, जो एक लाल अनु से तीन या चार गुना बड़े होते हैं। जिनकी गति तीव्र होती हैं, और ये ताजे रक्त में $\frac{१}{६}$ की शक्ति वाले खुर्दबीन से देखे जा सकते हैं, जो बड़ी तेजी से रक्त अणुओं में चल रहे हैं इनकी बनावट प्रोटो पलाजम द्वारा होती है। जिनका पीछे से अधिक सामने का सिरा नुकीला होता है, जिनके मध्य में एक बड़ा सा गुद्दा (Nucleus) और एक क्रोमोटीन छोटा भाग होता है, जो पिछले सिरे पर सेन्ट्रोजोम के नाम से प्रसिद्ध एक मोड़ा हुआ परदा है, जिसको अन्डुलोटीना मेमबरेन भी कहते हैं। सेन्ट्रोजम से शुरू होता है और सारे शरीर से होते हुये, सामने इसका मोटा सिरा बढ़ा हुआ होता है जिसको फलैजलम अर्थात् पूंछ कहते हैं। इसी मोटे सिरे से अथवा पूंछ द्वारा इस कीड़े की गति होती है। इन्हीं पूंछ द्वारा जो सामने होते हैं तीर के समान रक्त अणुओं पर आघात करते हैं उनको हटाते और कुचलते हुये बढ़ते हैं, जिससे इन अणुओं की शक्ति जाती रहती है और शीघ्र मृत्यु हो जाती है। ये कीड़े एक व एक

अणुओं पर घात नहीं करते हैं उनको पचा डालने के लिये, बल्कि इनका भोजन रक्त का पलाजमा है जिसको वे अपने शरीर द्वारा सोखते हैं जिनके कारण अणुओं को हीमोगलोबीन नहीं मिलती है, जिसके कारण से शरीर के अंगों में उपवाश शुरू होती है और उस दशा को रक्त की कमी या इनीमीय (Anaemia) कहते हैं, जिससे जानवर कमजोर हो जाता है और अन्त में मृत्यु हो जाती है।

शीघ्रता से जाँच के लिये, एक बुन्द रक्त को किसी एक कान अथवा चेहरे के एक शिरे से लेकर, एक शीशे की सलाइड पर बहुत पतला पसार देना चाहिये, तब उसे कभर ग्लास द्वारा ढाँप देना चाहिये और अधिक दबाना नहीं चाहिये, तब उसको $\frac{१}{६}$ की शक्ति वाले खुर्दबीन से देखना चाहिये। लाल अणुओं के बीच हलचल और कलबलाते हुये कीड़े पर नज़र अति शीघ्र पड़ती है। कभी-कभी ये कीड़े चलते-चलते नजर से बाहर चले जाते हैं।

इनको देखने के लिये $\frac{१}{१२}$ की शक्ति वाली खुर्दबीन की जरूरत होती है। यह कीड़े बहुत आसानी से रंग जाते हैं, लीसमैन मोडीफीकेसन (Leishman modification) का रोमैनवोसकीज (Romanowskis) रंग इसके लिये अच्छा होता है जिसे प्रोटोपलाजम नीले रंग से नीवकलीयस गुलाबी रंग से और फलैजलम और सेन्ट्रोजोम चमकीले लाल रंग से रंग जाते हैं। सारा के कीड़े और नैगना के कीड़े प्रायः मिलते जुलते हैं।

ये कीड़े रक्त में सिर्फ बुखार जिस समय होती है। उसी समय पाये जाते हैं और जिस समय बुखार छुट जाती है रक्त से गायब हो जाते हैं। इसलिये जब रक्त की जांच हो उस समय इस बात को याद रखनी चाहिये।

जानवरों के मर जाने पर ट्रीपनोसीम भी शीघ्र नाश हो जाते हैं, इसलिये रोगी का रक्त २४ घन्टे के पश्चात् दुषित नहीं रह जाता है।

इस रोग के कीड़े गर्मी बरदास्त नहीं कर सकते, और ११०° की गर्मी से ये आसानी से नाश को प्राप्त होते हैं। ठन्डे में ये अधिक ठहर सकते हैं। रसायनिक औषधियों द्वारा इनका नाश शीघ्र होता है।

कीटाणु के शरीर में पैठने के नियम—कीटाणु शरीर में काटने वाली मक्खियों द्वारा जाते हैं। पहले मक्खियां रोगी को काटती हैं फिर जब विष उनके शरीर में आ जाता है तब स्वस्थ जानवरों को काटती हैं। जांच करने पर पता लगा है कि तीन प्रकार की मक्खियों द्वारा यह रोग फैलाया जाता है। जैसे टेवेनस, हीमेटोपोटा और स्टोमैक्सीस। जिसमें टेवेनस से अधिक रोग फैलाया जाता है। टेवेनस और हीमेटोपोरा घोड़ों तथा मवेशियों के शरीर पर पाये जाते हैं जिनका रंग सोनहुला होता है, जिसको दिहात में घोड़मांछी भी कहते हैं इनका आकार बड़ा होता है। मादा मक्खियों को रक्त चूसने की अधिक इच्छा होती है।

स्टोमैक्सीस, घर के अन्दर जो मक्खियां पाई जाती हैं, उसी तरह की होती हैं, और उससे भी कुछ बड़ी होती हैं।

ट्रीप्नोसोम कीटाणु मक्खियों के शरीर में रहते और बढ़ते हैं, जो कीटाणु जैसा है, वह अपने अपने नियम के अनुसार बढ़ता घटता रहता है।

जैसे टेसटीस मक्खी में जब ये कीटाणु एकबार में प्रवेश करते हैं तो उसी के अन्दर बढ़ते तथा मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

एक प्रकार के चमोकन जिसको ओरीनथरोडोरस करोसी कहते हैं, उसके द्वारा भी रोग फैलाया जाता है।

यदि रोगी को जख्म कहीं पर हो तो उसे भी नहीं काटने वाली मक्खियों द्वारा स्वस्थ जानवरों में जिनको जख्म हो, रोग फैल सकता है।

नीची लिखी तीन बातें फैलने पर ध्यान में रखनी चाहिये। (क) कीटाणु के कोष। (ख) काटने वाली मक्खियाँ, जो सुई की तरह रोग फैलाती हैं। (ग) पकड़ाया हुआ जानवर।

गाय और विशेषकर भैंस इस रोग के कीटाणु को शरीर में बहुत दिनों तक रखते हैं तथा ऊंटों में भी बहुत रोज तक यह बीमारी रहती है, इसलिये ऊपर लिखे जानवर कीटाणु के कोष

अर्थात् खजाने का काम करते हैं और यही कारण है कि रोग जाड़े के मौसम, (बरसात में रोग अधिक होती है) के बाद भी कभी कभी देखा जाता है ।

यह रोग खाद्य पदार्थों तथा चारा इत्यादि (जो रोगी के गोबर इत्यादि से मिश्रित हों) के खाने से नहीं फैलता है ।

कीटाणु के शरीर में प्रवेश करने पर ४ से १२ दिनों के अन्दर रोग उत्पन्न होता है ।

लक्षण और रोग की पहचान—बुखार की दशा में रक्त जांच करने पर इस रोग के कीटाणु मिलते हैं तब इसकी पहचान ठीक से होती है ।

घोड़ों और खच्चरों में—प्रथमावस्था में जब रोग का आक्रमण होता है तो केवल साधारण बुखार देखी जाती है। कभी बुखार के साथ शरीर में कहीं कहीं पर या किसी किसी में सारे शरीर पर पीत्ती निकल जाती है। कुछ दिनों के पश्चात् बुखार छुट जाती है और जानवर फिर स्वस्थ बोध होने लगता है। कुछ दिन के बाद (करीब १ से ६ दिन) जानवर फिर बीमार पड़ता है, नाड़ी पूरी और तेज रहती है ५४ से ६४ तक हर मिनट गिना जा सकता है, आंख के पर्दों पर छोटे छोटे लाल दाग देखने में आते हैं, आंख से पानी चलता है और नाक से भी पोटा गिरता रहता है। इसी अवस्था में पैरों में सूजन

ोजे से लेकर पिछले घुटनों तक होता है। इस समय जांच किया जाय तो ट्रीपनोसोम पाया जाता है। इसके सरी पारी बुखार की आती है जो कुछ दिनों तक रहती है ह बुखार छुट जाती है और ट्रीपनोसोम गायब हो जाता समय केवल शरीर में सूजन तथा दुबलापन छोड़कर विशेष लक्षण देखने में नहीं आता है, जानवर बराबर ा है और बीमार होने का कोई लक्षण नहीं मालूम पड़ता ार की तीसरी पारी फिर शीघ्र आती है और सब लक्षण ीख पड़ते हैं, कमल की गति बहुत नाजुक हो जाती है, हुत तीव्र हो जाती है और पैर की सूजन और अधिक हो और इस तरह ताप का आना और छूटना जारी रहता था आंख के परदे पीले हो जाते हैं जिससे मालूम होते क की शरीर में कमी पड़ गई और जानवर दिन पर ने लगता है और एक से दो महीने के अन्दर मृत्यु हो ।

●

जानवरों का लक्षण कुछ कुछ रद बदल हो सकता है ीचे लिखे उनके विशिष्ट लक्षण दिये जाते हैं।

बुखार का आना जो २ से २१ दिनों तक तथा इससे धक रह सकती है।

) १ से ६ दिन तक बुखार का छूट जाना ।

(ग) कीटाणु का ताप के समय रक्त में पाया जाना, तथा ताप न रहने पर नहीं मिलना ।

(घ) खूब खाने पीने पर भी, दिन पर दिन जानवर दुबला होते जाता है, जो इस रोग का लक्षण है ।

(ङ) दीखने वाले भितरी पर्दों पर छोटे छोटे दाग, तथा पीलापन पाया जाता है ।

(च) पैरों में, नाभी तथा मुत्रेन्द्रिय के खोल तथा पेट और छाती के नीचे के भागों में सूजन हो जाती है ।

(छ) रक्त की अधिक कमी शरीर में देखी जाती है ।

(ज) उसके बाद मृत्यु हो जाती है ।

गाय बैलों के लक्षण—शरीर का धीरे धीरे सूखते जाना, अधिक खाने पर भी दुर्बल रहना । ऊपर बताये अनुसार बुखार का आना और छुट जाना । किसी किसी के पैरों में भी सूजन रहना । बोखार के समय कीटाणु का रक्त में पाया जाना । आंखें बन्द कर, कई घण्टों तक पड़ा रहना, पेशाब अधिक होना, जानवर का सुस्त पाया जाना, चलने में कमजोरी जाहिर करना । आंख तथा मुख के पर्दों को देखने से रक्त की कमी बोध होना और उनका रंग पीला जान पड़ना । ऊपर बताये हुये लक्षण विशेषकर इन जानवरों में देखे जाते हैं । कोई-कोई जानवर लक्षण दीखने के बाद १० से १५ दिनों तक जीवित रहते हैं और कितने चंगे भी हो जाते हैं ।

ऊँटों में—इन जानवरों में रोग शीघ्र पहचान में नहीं आता है, क्योंकि बाहरी लक्षण इन जानवरों में कुछ नहीं पाये जाते हैं। इनके रक्त में इस रोग के कीटाणु के रहते भी, इसकी दशा पहले जैसे ही देखने में आती है। ऊँटवानों का कहना है कि वे लोग इन जानवरों के पेशाब के गंध से जो मिट्टी के ढेले पर किये गये हों, बीमारी परख लेते हैं। कभी-कभी पहले लक्षण जो देखने में आता है, वह है बोझा लेकर उठते समय दुर्बलता प्रगट करना। आँखों में जो चमक स्वस्थता के समय देखी जाती है वह बहुत कम हो जाती है, जानवर बहुत सुस्त और असावधान प्रतीत होता है। प्रायः दस दिनों तक बुखार लेते रहने से तब बुखार का कहीं पता लगता है और बुखार के समय रक्त जाँच करने पर जब कीटाणु मिल जाँय तब पहचान पूरी समझी जाती है। यह ध्यान रखना चाहिये कि सबेरे और शाम की बुखार में इन जानवरों में अन्तर पाई जाती है, जैसे स्वभावतः शाम की बुखार १००° से १०१° फ० तक होती है, लेकिन इतनी बुखार यदि सबेरे हो तो अधिक बुखार समझनी चाहिये।

भीतरी परदों के ऊपर दाग हो सकता है लेकिन सदा नहीं पाया जाता है, और न शरीर को सूजन ही इसमें बराबर मिलती है। किसी-किसी में पैरों में, पोते में, मुतेन्द्रियों के खोल में, स्तनों में और छाती के बगल में कभी-कभी फोड़े होते हैं। दुबलापन धीरे-धीरे बढ़ता रहता है, पंसलियों तथा

कमर की हड्डियाँ गिनी जा सकती हैं, कूब और जाँघ पहले से पतले हो जाते हैं।

प्रथमावस्था में रोग का प्रकोप बराबर बीच-बीच में आता रहता है, किसी-किसी में चार बार और किसी में इससे भी अधिक होता है, लेकिन जैसे समय व्यतीत होता जाता है वैसे इनकी वृद्धि भी कम होती है, और पीछे कहीं एक आध बार हुआ तो बहुत साधारण रूप से हता है।

खौरा (बालों का उड़ना) इस रोग के साथ इन जानवरों में पाये जाते हैं।

इस रोग की गति बहुत बदलती रहती है, कभी-कभी तो बहुत तेज होती है विशेष कर जब जानवर से कठन काम लिया जाता है तब उसकी मृत्यु इस रोग से कुछ ही महीनों में हो जाती है। अधिकतर यह रोग इन जानवरों में पुराना हो जाता है और पकड़ाए हुये जानवर बरसों स्वस्थ दशा में देखा जाता है लेकिन मृत्यु रक्त की कमी के कारण या फेफड़ों के सूजन के कारण हो जाया करती है, जो मरने पर फाड़ने से पता लगता है।

कुत्तों में—इस रोग में बुखार, सिर तथा कण्ठ का फुल जाना, आँख के पर्दों का धसना, आँख के अन्दर दाने निकल जाना इत्यादि है जिससे जानवर या तो एकदम अन्धा हो जाता

है या उसे कम सूझता है। ताप के समय कीटाणु रक्त में पाया जाता है।

इस रोग में कोई खाश भीतरी लक्षण नहीं होते, जो फाड़ने पर मिलें, कभी-कभी तील्ली बड़ा हो जाता है। मरी बहुत दुबला रहता है और माँस बहुत फीका और रक्त हीन पाया जाता है।

महामारी के समय का नियम।

१ जहाँ पर जानवर एक जगह पर बाँधे जाते हों वहाँ से रोगी को कम से कम $\frac{1}{2}$ माइल की दूरी पर अच्छे जानवरों से हटा कर रखना चाहिये। ध्यान रखनी चाहिये कि मक्खियों के काटने से तथा बीमार जानवरों से यह रोग फैलता है।

२ कोई शंका वाले जानवर को हटाकर तब तक अलग रखना चाहिये जब तक उसके रोग की पहचान न हो जाय।

३ नियमानुसार घोड़ों में जब चिकित्सा से कोई लाभ नहीं हो, तो रोगी को मार देना चाहिये।

४ मरे हुये जानवरों को गाड़ देना चाहिये, लेकिन २४ घण्टे के बाद इसमें बीमारी फैलने की शक्ति नहीं रहती है। कुत्तों के मुख में यदि जख्म हो तो इनका माँस खाने से रोग हो सकता है।

५ जिस स्थान पर इस रोग से कोई जानवर मर गया हो, तो उस स्थान के शेष जानवरों का १४ दिनों तक बुखार लेते रहना चाहिये और जिन पर शंका हो उनकी रक्त परीक्षा करनी चाहिये। बुखार, दुबलापन और ऊंटों में खउरा का होना, बीमारी की शंका लाती हैं।

६ अस्तबल के आस पास यदि ½ मील तक गढा हो तो उसे भर देना चाहिये, क्योंकि उसमें मक्खियों के बढ़ने की सम्भावना है। जहां पर पानी जमा हो जाता हो उसे नाली द्वारा बाहर निकालने की चेष्टा करनी चाहिये। कहीं पर सड़ा पानी जमा हो उसमें किरासन तेल देकर, फिर मिट्टी द्वारा भर देना चाहिये।

७ पशुओं को विशेष कर घोड़ों को सबेरे ८-३० बजे तक और शाम को ४ बजे से सूर्य्यास्त तक कपड़े से शरीर ढक कर रखनी चाहिये, ताकि मक्खी न काटें। दोपहर को मक्खियां अधिक धूप के कारण आराम करतीं हैं।

महामारी के समय यदि हो सके तो बराबर पशुओं को अस्तबल में रखना चाहिये क्योंकि बड़ी मक्खियां अस्तबल में कम जाती हैं।

८ ऊपर बताए हुए समय पर पशुओं के शरीर पर चियर पाईन (Cheer Pine) का तेल लगा देने से भी मक्खियों का डर नहीं रहता है।

९ जानवरों के शरीर को खूब साफ रखनी चाहिये, क्योंकि गन्दे शरीर पर अधिक मक्खियाँ बैठती हैं। इस तरहकी प्रवृति ऊँटों में अधिक देखी जाती है, जब एक घोड़ा गन्दे ऊँट के नजदीक खड़ा होता है, तब सब मक्खियां घोड़े से ऊँट पर चली जाती हैं। इसलिये ऊँटों की भी मलाई अति आवश्यक है।

१० किसी प्रकार पशुओं को जख्म न होने पावे इसका ध्यान रखना चाहिये और यदि हो भी जाय तो उस पर कीटाणु मारक औषधि लगाकर पट्टी बांध देनी चाहिये।

११ चूकि बेअर २०५ नैगनौल द्वारा रोगियों में अधिक लाभ होता है, इसलिये जो ऊँट बहुत दुबले हो गये हों तथा जिनकी अवस्था बहुत शोचनीय हो उन्हीं को मारनी चाहिये और शेष सब की चिकित्सा करनी जरूरी है।

१२ घोड़ों की चिकित्सा—बहुत प्रकार की औषधियाँ इस रोग के लिये व्यवहार किये गये। जिनमें अधिकतर संखिया और एनीलीनडाई के हिस्से थे, जिनसे कुछ लाभ भी पाया गया था। परन्तु अब इस रोग की एक लाभदायक औषधि निकली है जिसका नाम बेअर २०५ नौगनौल (Bayer 205 Naganol) इसके प्रयोग की विधि सुई द्वारा खून की नली में और सिर के निकट रीढ़ के प्रथम या दूसरे जोड़ में होती है। इसकी परीक्षा पहले पहल डाक्टर डी० एस० सी० इम्पीरीयल इन्सटीचीएट भेटनरी रीसर्च के डाईरेक्टर साहब ने की थी, और जिससे देखा गया है कि १०० में ९० पशुओं को इससे लाभ होता है।

१९१९ ई० में होम साहब जो उस समय मुक्तेश्वर के बक्टरोलौजीस्ट थे उन्होंने एटौक्सील (Atoxyl) और संखिया प्रयोग करने के लिये जोर दिया है और जिससे लाभ भी पाया गया है। चूंकि चिकित्सा की यह पुरानी प्रथा है और इसके देने में कुछ कठिनाई है, इस कारण से लोगों ने इसका व्यवहार छोड़ दिया है।

इस औषधि को यानि एटौक्सील के सलीवसन को चमड़े के नीचे सुई द्वारा दी जाती है, और उसके बाद संखिया पूरी मात्रा में गोली बनाकर खिलायी जाती है, जिसकी मात्रा धीरे धीरे बढ़ाई जाती है। एटौक्सील में रोग चंगा करने की शक्ति नहीं है लेकिन रक्त प्रवाह से कीटाणुओं की अधिकता को हटा देती है। इसलिये जब कीटाणु रक्त प्रवाह में हों उस समय एटौक्सील देनी चाहिये। यदि एक खुराक में कीटाणु रक्त से न हटें, तो २४ घण्टे बाद एक खुराक और देनी चाहिये संखिया की खुराक शरीर के वजन के अनुसार एक रोज या दो रोज बाद करके देना चाहिये।

यदि कीटाणु चिकित्सावस्था में फिर देखने में आवें,तो एटौक्सील और संखिया फिर देनी चाहिये। यदि दवा देने के बाद फिर रोग का आक्रमण हो जाय तो दूबारे उसी प्रकार चिकित्सा करनी चाहिये और संखिया की मात्रा बढ़ा देनी चाहिये। इस चिकित्सा से १०० में ७५ के चंगा होने का अनुमान किया जाता है।

दूसरी औषधि टाटरइमेटीक (Tatar Emetic) है जो इस रोग के लिये घोड़ों तथा ऊंटो और मवेशियों को सुई द्वारा रक्त में दी जाती है,

बहुत प्रकार की औषधियों का प्रयोग रक्त प्रवाह में किया गया, और देखा गया है कि कीटाणु रक्त प्रवाह से भाग कर सिर के पिछले हिस्से के जल में (Cerebro Spinal Fluid) चले जाते हैं, जहां पर किसी औषधि की शक्ति नहीं पहुँच पाती, क्योंकि वह एक परदे द्वारा ढंपा रहता है। जब औषधि का असर रक्त से चला जाता है तब फिर वे एक महीने या १५ रोज में जैसा असर औषधि का रहा, रक्त में आते हैं जिसका परिणाम अन्त में मृत्यु है।

इसलिये पूर्ण चंगा करने के लिये डाक्टर एडवर्ड मुक्तेश्वर भेटनरी रीसर्च इन्सटीच्युट के सुई देने के नियम नीचे दी जाती है।

(क) सुई देने के पहले दो प्रकार की सलीवशन बेअर २०५ नैगानौल की बनानी चाहिये, (१) १० प्रतिशत और (२) ०·१ प्रतिशत का पहला ५ ड्राम (७५ ग्रेन) औषधि में इतना जल मिलाया जाय कि वह ५० सी. सी. हो जाय, और दूसरे को बनाने के लिये १·० सी. सी. १० प्रति शत औषधि से लेकर इतना जल मिलाया जाय ताकि उसकी मात्रा १०० सी. सी. तक हो जाय।

जल को पहले खूब उबाल देना चाहिये, ताकि दुषित न रहे।

(ख) (१) घोड़े को गिरा कर उसके पाँव को ठिकाने से बाँध देनी चाहिये और उसके सिर को छाती के तरफ झुकाना चाहिये और रस्सी से कस कर पकड़े रहना चाहिये। सिर के हिस्से की बाल छाँट देनी चाहिये और उसको फिनाईल लोसन से पोंछ कर टींचर आईडीन लगा देनी चाहिये।

(२) एक मुट्ठी (३ $\frac{1}{2}$ इंच) करीब सिर के हड्डी के पीछे सुई को सीधे १" एक इंच घुसानी चाहिये। कुछ ठहर कर पुनः आगे बढ़ाना चाहिये और जब तक सुई द्वारा स्वच्छ जल न निकले तब तक धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिये। तब सुई में एक छोटी रबर की टीयुब जो रेकर्ड की पिचकारी से, जिसमें ०·१ प्रतिशत का लोशन हो लगा देना चाहिये। थोड़ा महावरा हो जाने पर यह सुई आसानी से दी जाती है। इसके लिये नीचे लिखी बातों पर ध्यान देना चाहिये। सुई खूब तेज और अच्छी रहनी चाहिये, भोथरे सुई से काम होना कठिन है। यदि सुई घुसाते समय हड्डी में लग गई हो तो उसको कुछ दूर खींच लेनी चाहिये तब फिर घुसानी चाहिये। यदि बहुत दिक्कत हो तो छोड़ देनी चाहिये और उस स्थान का पूरा ज्ञान करके तब काम लगानी चाहिये।

(३) सिर के पीछे जोड़ में २० सी. सी. करके ०·१ प्रतिशत वाला सलीवशन, १००० पौंड के वजन वाले पशु की मात्रा है और फिर साथ ही साथ १००० पौंड के वजन वाले शरीर पर ५० सी. सी. १० प्रतिशत वाला सलीवशन रक्त की नली में देनी चाहिये।

(४) दूसरी सुई १५ रोज के बाद सिर में २० सी. सी. ०·१ प्रतिशत वाला सलीवशन (१००० पौंड के वजन पर) देनी चाहिये।

(५) तीसरी सुई दूसरी सुई के १५ रोज के बाद २० सी. सी. ०·१ प्रतिशत वाला सलीवशन सिर में और ५० सी. सी. १० प्रतिशत वाला सलीवशन रक्त की नली में देनी चाहिये।

नोट—१ ऊपर बताई हुई चिकित्सा से शीघ्र पकड़ाये हुए जानवरों तथा जिसकी दशा अधिक खराब न हो, उनमें अधिक लाभ देखी गयी है। जब जानवर की हालत मरने मरने पर हो तो उसमें कोई लाभ नहीं होता है। यदि पशु अधिक दुर्बल हो गया हो और बीमारी से उसकी दशा अधिक खराब हो गई हो तो ऊपर बताये कम मात्रा में रक्त की नली द्वारा सुई १५ रोज बाद करके दी जा सकती है।

२ रक्त की नाली में पूरी मात्रा में सुई देने के कुछ दिनों पश्चात् घोड़ों में कभी-कभी लेमनाईटीज यानी सुम की सूजन और दर्द हो जाता है। इससे कोई डर की बात नहीं है और यदि पशु अधिक दुर्बल न रहा तो कुछ दिनों में चंगा हो जाता है।

३ तीसरी सुई देने के पश्चात् पशु को अच्छा भोजन और स्वच्छ जल तथा सेवा करनी चाहिए, ताकि उसकी दशा शीघ्र बदल जाय और जब स्वस्थ मालूम पड़ने लगे तब काम में लाना चाहिए।

(१३) ऊँटों की चिकित्सा—इस जानवर में भी बहुत प्रकार की औषधियाँ जैसे संखिया, एनीलीन डाई, टाटर ईमेटीक इत्यादि दी गई है कोई औषधि अधिक मात्रा में देने से कुछ दिनों के लिये रक्त से कीटाणु को हटा देती है, संखिया से इसमें पहले कुछ लाभ पाया गया था।

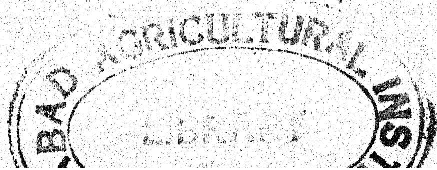
(क) टाटर इमेटीक (Tatar Emetic)

१९१७ ई० में कैप्टेन एच० ई० क्रौस आई० सी० भी० डी० ने जो ऊँटों के विशेषज्ञ थे टाटर ईमेटीक द्वारा बहुत जानवरों की चिकित्सा की और इसके फलस्वरूप उन्होंने बताया है कि इस औषधि से १०० में ७१.४ से ७८.५ तक रोगियों की रक्षा की जा सकती है।

उनकी इस विषय की क्या राय है वह नीचे दी जाती है :—

जब कीटाणु रक्त प्रवाह के गिर्द में रहे, और जिस समय ताप अधिक हो उस समय सुई देना सर्वथा मना है ऐसी दशा में रोगी को मूर्छा या मृत्यु भी कम मात्रा में यानी ५० सी. सी. १ प्रतिशत के सलीवसन से हो जाती है और जब कीटाणु रक्त प्रवाह में न हों और ताप भी न रहे, उस समय १५० से २०० सी० सी० १ प्रतिशत सलीवशन से भी किसी प्रकार की हानि नहीं पायी जाती है। टाटर इमेटीक को डिस्टिल्ड जल में मिलाकर और फिर छान कर रक्त की गर्मी के बराबर धीरे धीरे सुई द्वारा देनी चाहिये। यह औषधि गर्दन के रक्त नली में दी जाती है इसे बहुत सावधानी से देनी चाहिये। जिसमें औषधि का कुछ भी भाग रक्त की नली के बाहर मांस में न गिरे, वरना बड़े जोर की सूजन हो जाती है। इससे बचने के लिये थोड़ा नमक का पानी (Normal Saline Solution) बनाकर दूसरी पिचकारी में तैयार रहे और जैसे ही वह औषधि समाप्त हो, वैसे ही इसको दे देना चाहिये, तब कोई भय नहीं रहता है।

सुई देने के पश्चात् यदि ऊँट खाना पीना छोड़ दे तो सुई तब तक फिर नहीं देनी चाहिये जब तक पशु फिर खाने नहीं लगे।



इस औषधि के मात्रा के कुछ नियम नीचे दिये जाते हैं—

१ दिन	१५०	सी० सी०	१ प्रतिशत टाटर	इमेटीक	सलीवसन	रक्त की नली द्वारा दी जानी चाहिये।
३रे दिन	१५०	"	"	"	"	"
५वें दिन	१७५	"	"	"	"	"
७वें दिन	१७५	"	"	"	"	"
९वें दिन	२००	"	"	"	"	"
११वें दिन	१५०	"	"	"	"	"
१३वें दिन	१७५	"	"	"	"	"
१५वें दिन	२००	"	"	"	"	"
१७वें दिन	"	"	"	"	"	"
१९वें "	"	"	"	"	"	"
२१वें "	२२५	"	"	"	"	"
२३वें "	"	"	"	"	"	"
२५वें "	२५०	"	"	"	"	"
२७वें "	"	"	"	"	"	"

क्रौस साहब ने इस औषधि को दूसरी मात्रा में यानि २०० सी० सी० चौथी खुराक में दिया था, और उसकी मात्रा को १ रोज बीच कर के २९ दिनों तक ले गये थे।

तीसरी विधि इस औषधि के लिये २०० सी० सी० से शुरू किया जाता है और पांच खुराक देकर, दो खुराक २५० सी० सी०

दी जाती है, इस प्रकार इसी नियम का अन्त १३ दिनों में होता है।

चौथा नियम २०० सी० सी० से शुरू किया जाता है और १९ दिनों के अन्दर १० खुराक दी जाती है।

मेजर लैकी साहब का कथन है कि ३८ से ४० ग्राम तक औषधि कम मात्रा से आरम्भ करके, और अधिक दिनों तक देनी चाहिये।

मेजर लैकी साहब के बताये कुछ नियम नीचे दिये जाते हैं—

१ला दिन २० सी. सी. $\frac{1}{2}$ प्रतिशत टाटर इमेटीक सलीवशान खून की नली में सुई द्वारा देनी चाहिये।

२रा दिन २० सी. सी. १ प्र: श: टाटर इमेटीक सलीवशान खून की नली में सुई द्वारा देनी चाहिए।

३रा	"	"	"	"	"	"	"	"
५वां	"	५०	"	"	"	"	"	"
७वां	"	"	"	"	"	"	"	"
९वां	"	"	"	"	"	"	"	"
११वां	"	१००	"	"	"	"	"	"
१३वां	"	"	"	"	"	"	"	"
१५वां	"	"	"	"	"	"	"	"
१७वां	,,	१५०	,,	,,	,,	,,	,,	

१६वां दिन २० सी. सी. १ प्र: श: टाटर इमेटीक सलीवशन खून की नली में सुई द्वारा देनी चाहिए।

२१वां ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,
२३वां ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,
२५वां ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,
२७वां ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,
२६वां ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,
३१वां दिन १५० ,, ,, ,, ,, ,, ,,
३३वां ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,
३५वां ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,
३७वां ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,
३६वां ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,
४१वां ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,
४३वां ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,
४५वां ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,
४७वां ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,
४६वां ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,

इस प्रकार ३३.२५ ग्रामस औषधि (टाटर इमेटीक) ७ सप्ताह में दी जा सकती है।

इसी प्रकार मेजर लैकी और इस्टीवैनसन साहबों द्वारा लाहौर में इस औषधि को ६ सप्ताह के अन्दर ३६ ग्रामस तक

दिया गया है। लेकिन अब सोडियम एन्टीमोनीट्राट, पोटासीयम एन्टीमोनीटाट के बदले में दी जाती है क्योंकि इस औषधि में विष लगने का भय कम रहता है। औषधि की मात्रा पशुओं की तन्दुरुस्ती तथा कद पर भी निर्भर करती है और जिस जानवर की चिकित्सा की जाय उसकी निगरानी औषधि का विष देखने के लिए हमेशा करनी चाहिये, यदि रक्त प्रवाह में कीटाणु वर्त्तमान हों तो औषधि कम मात्रा में देकर रक्त को शुद्ध करके, ऊपर लिखे नियम जारी रखनी चाहिये।

नीचे लिखी हुई बातों पर सुई देने के प्रथम ध्यान रखना चाहिये:—

१ सोडीयम एन्टीमोनीटाट या टाटर इमेटीक की सुई देने के प्रथम रक्त की जांच और बुखार देख लेनी चाहिये। यदि बुखार १००° या इससे भी अधिक हो तो ऐसी हालत में पूरी मात्रा में औषधि नहीं देनी चाहिये, लेकिन २०–२५ सी० सी० तक ½ प्रतिशत सलीवसन देना उचित है। दूसरे दिन जब रक्त शुद्ध रहे तो १०० सी० सी० १ प्रतिशत सलीवसन से शुरू करनी चाहिये। दुर्बल ऊंटों की चिकित्सा के प्रथम खिला कर हालत ठीक कर लेनी चाहिये।

२ नीचे लिखे कुछ प्रतिकूल लक्षण चिकित्सा के समय के दिये जाते हैं। पहला लक्षण है बुखार के समय में किसी पशु को पूरी मात्रा में औषधि देना मना है। इसलिये चिकित्सा

के प्रथम ही प्रत्येक ऊंटों की बुखार को लिख कर रखनी चाहिये। ज्वर के साथ साथ नीचे बताये बहुत से प्रतिकूल लक्षण देखे गये हैं। जैसे—

(क) पागुर या गाली का बन्द कर देना।

(ख) खाना न खाना।

(ग) पेशाब बदरंग हो जाना। यह लक्षण १०वें या १२वें खुराक के बाद कमजोर जानवरों में देखे जाते हैं।

(घ) रक्त का जमाव, जो आगे चलकर दीखने वाले परदों का रंग पीला हो जाता है।

(ङ) नाक और आंख से पानी का गिरना।

(च) चमड़ों के तह (Dermatitis) का सूजन विशेष कर गर्मी के दिनों में जब जानवरों के शरीर से पसीना अधिक निकलता है।

(छ) कब्जियत।

(ज) लकवा और मांसों में कंपकंपी देखी जाती है।

(झ) रक्त बहना और आंख का अपने नियत स्थान से इधर उधर दीख पड़ना। सुई देने के पहले (चिकित्सा के समय) ऊंटों के निकट खड़ा होकर उनकी हालत का निरीक्षण करना चाहिये, कि वे सुई की गर्मी को बर्दाश्त कर सकते हैं या नहीं। कुछ नियम नीचे बताये जाते हैं।

१ ऊंटों को खिलाओ और देखो कि वे किस प्रकार खाते हैं, जैसे शीघ्रता से खाते हैं या धीरे से या कभी कभी खाते ही नहीं हैं। अलग खड़े होकर देखना चाहिये कि उनके सिर नाद में हैं या वे सिर ऊपर किये हुये हैं।

२ कब्जियत है या नहीं।

३ बुखार की जांच करनी और लिख कर रखनी चाहिये।

४ रक्त का जमाव और आँख का रंग पीला है या नहीं इसकी जांच के लिए आँखों की परीक्षा करनी चाहिये।

५ पानी पिलाने को ले जाना चाहिये और वहीं पर पेशाब का रंग देखना चाहिये। (ऊंट पानी के पास ले जाने से तुरत पेशाब करने लगते हैं।)

१ प्रतिशत सलीवसन का २०० सी० सी० की मात्रा में सोडीयम एनटीमोनीटार्ट एक रोगी ऊंट को जो अच्छी हालत में हो और खून जिसमे शुद्ध हो, दिया जा सकता है। यह मात्रा प्रत्येक तीसरे दिन बिना किसी भय के ३०-३५ ग्राम तक दिया जा सकता है। यदि बीच में कुछ अस्वस्थता प्रतीत हो तो चिकित्सा बन्द कर देनी चाहिये और पूरी मात्रा में मैगसलफ देकर तन्दुरुस्ती ठीक करके फिर इलाज शुरु करना चाहिए इसके देने से एन्टीमोनी शरीर के अन्दर से बाहर हो जाता है और कभी कभी रोगी के मल से आंव के ऊपर जखम देखने में आता है

उसका कारण एन्टीमौनी का मल के साथ गिरना है। जब स्वास्थ्य पहले के समान हो जाय तब ५० सी० सी० से औषधि आरम्भ करके २०० सी० सी० तक दे सकते हैं।

जब ज्वर की दशा में चिकित्सा आरम्भ किया गया हो और कीटाणु रक्त में हों तब २०-५० सी०सी० की मात्रा में ½ प्रतिशत सलीवसन एक घण्टे के बाद देना चाहिए। यदि दूसरे दिन रक्त शुद्ध हो जाय तब ५०-१०० सी० सी० तक औषधि दी जा सकती है और तीसरे दिन से १५०-२०० सी० सी० की मात्रा में औषधि दी जा सकती है और प्रत्येक तीसरे दिन देकर चिकित्सा पूर्ण किया जा सकता है।

चिकित्सा के प्रथम रोगी को चना खिलाना चाहिये और पेट भर जाने पर सुई देनी चाहिये। ऊंटों को चिकित्सा के समय हरी घास खिलानी चाहिये।

'ख' बेयर २०५ [नैगनौल]

BAYER 205 (NAGANOL)

दूसरी औषधि जो इस रोग के लिये प्रयोग में लाई गयी है, वह है बेयर २०५ नैगनौल। ऊंटों में एक ही (१० ग्राम) पूरी मात्रा में रक्त की नली में सुई द्वारा देने से लाभ पाया गया है।

'ग' बेयर २०५ नैगानौल और टाटर इमेटीक।

तीसरा नियम चिकित्सा का बेयर २०५ और टाटर इमेटीक एक साथ प्रयोग करने का है। जो एक सोहावा के ऊँट विशेषज्ञ द्वारा व्यवहार में लाया गया है और सिर्फ टाटर इमेटीक की सुई से विशेष लाभ पाया गया है। इसमें सुई कम देनी पड़ती है।

नीचे लिखे अनुसार इसकी मात्रा हैं :—

१ला दिन नैगनौल का ५ प्रतिशत सलीवसन—१०० सी. सी.

६ठा दिन टाटर इमेटीक १ प्रतिशत सलीवसन—२५०सी. सी.

११वां ... ...

१६वां ... ...

२१वां ... ...

२६वां ... ...

३१वां दिन नैगनौल ५ प्रतिशत सलीवसन—१०० सी. सी.

ऊपर बताये हुए नियम से एक और आसान प्रणाली है, जिससे विशेष लाभ होता है वह है एक ही सुई, जिसमें ४ ग्राम बेयर २०५ नैगनौल और ३ ग्राम टाटर इमेटीक रक्त की नली में दी जाती है।

इसलिये जितनी जल्दी हो सके उतनी ही शीघ्रता से चिकित्सा करा लेनी चाहिये, नहीं तो स्वास्थ्य लौटाने में पशुओं को बहुत समय लगता है।

१४ कुत्तों की चिकित्सा—रक्त जाँच करने पर जब कीटाणु पाये जाँय तब ५ सी. सी. १० प्रतिशत बेयर नैगानौल की सलीवसन(१/२ ग्राम) रक्त की नली में सुई द्वारा देनी चाहिये, यदि कुत्ता छोटा हो तो ५ सी. सी. ५ प्रतिशत नैगानौल सलीवसन सुई द्वारा रक्त की नली में देनी चाहिये। खाने के लिये रोगी को दूध, अण्डा और मांस का शिरूआ देना चाहिये। इस चिकित्सा से विशेष लाभ देखा गया है। जहाँ पर कुत्तों में और विशेष कर हाउन्ड में यदि इस रोग के फैलने की आशंका हो तो, इसी औषधि को कम मात्रा में प्रत्येक १५ रोज में देने से रोग का भय जाता रहता है।

पशुओं की चिकित्सा—गाय बैलों के अन्दर इस रोग के प्रति पूरी सहन शक्ति होती है जो पहले बताया गया है। इसलिये नैगानौल जो बहुत कीमती औषधि है इसमें व्यवहार करना उचित नहीं है। दूसरे इन पशुओं में केवल महामारी के प्रारम्भ को छोड़ कर फिर शिकायत सुनने में नहीं आती है। महामारी के शुरू में किसी-किसी के मस्तिष्क में गोलमाल के लक्षण अधिक दीख पड़ते हैं। रोगी के रक्त को जाँच करने पर जब कीटाणु मिलें तो, सब से अच्छी औषधि इसके लिये टाटर इमेटीक ३ प्रतिशत सलीवशन ५ सी. सी. प्रत्येक १०० पौंड के शरीर के वजन पर देने से लाभ होता है, इससे भी कम मात्रा में २ सी. सी. प्रत्येक १०० पौंड के वजन वाले जानवर पर देने

से किसी खतरे का डर नहीं रहता है, क्योंकि ५ सी. सी. से कभी-कभी अधिक ज्वर और दूसरी हानि पाई गई है, इस लिये कम मात्रा में देना अच्छा है। जिन पशुओं में मस्तिष्क के लक्षण प्रगट हों उनमें बिना रक्त जाँचे भी दे सकते हैं, नहीं तो इस रोग की अवधि बहुत कम रहती है, देर करने से मृत्यु का भय है। इसलिये महामारी के दिनों में जिन-जिन पशुओं को ज्वर देखने में आवे, उन सबों को टाटर इमेटीक की सुई रक्त की नली द्वारा देनी चाहिये, इसके देने से मृत्यु की संख्या बहुत कम जाती हैं।

सलीवशन को उबाले हुये डीस्टील्ड जल में बनाना चाहिये या नमक के जल (Normal Saline) में जिसे १ ड्राम नमक १ पाईन्ट डिस्टील्ड जल में देकर उबाल कर छान लेना चाहिये। मामूली तरह से टाटर इमेटीक १५ ग्रेन १ औंस उबाले हुये डिस्टील्ड जल में बनाया जाता है, जब अधिक बनाना हो, तो ५ ड्राम १ पाईन्ट डिस्टील्ड जल में दे देनी चाहिये, फिर उसको धीरे-धीरे गर्म करने से दवा उसमें मिल जाती है, तब फिर ठण्ढा होने पर फिल्टर कागज में छाँक लेनी चाहिये।

ध्यान रहे कि सुई देने के समय औषधि का एक बुन्द भी रक्त की नली से बाहर न गिरे नहीं तो गिरे हुये स्थान पर बहुत सूजन और दर्द हो जाता है, जो शीघ्र आराम नहीं होता है।

पशु को रुग्नावस्था में या चंगा होने पर खाने के लिये बलवर्धक वस्तु देनी चाहिये।

Antrycide and Antrypot I.C.I. Company की शारीरिक तौल पर माला निर्धारित करके देने से शीघ्र लाभ पाया गया है।

इस रोग से बचने के उपाय विशेष कर ऊँटों के लिये :—

१ कोई सीरम इत्यदि इस रोग से बचने के लिये अब तक नहीं निकला है।

२ सारा के दिनों में जिन स्थानों में सारा अधिक होता हो, उन जगहों पर जानवरों क जाने नहीं देना चाहिये।

३ यात्रा के समय यदि ऐसा नहीं किया जा सकता हो, तो उन स्थानों पर जहाँ यह रोग अधिक होता हो, जैसे पंजाब लाहौर और शाहपुर के जिले, वहाँ पर से जानवरों को शीघ्रता से भगा ले जाना चाहिये।

४ जानवरों को ऊँचे स्थानों पर ठहराना चाहिये और जलाशयों से $\frac{1}{2}$ मील की दूरी पर ठहराना अच्छा है।

५ यदि हो सके तो हल्का झूल, विशेषकर घोड़ों को ओढ़ा कर रखना चाहिये सारा के दिनों में या जब कभी सारा वाले स्थान पर जाने की अवश्यकता हो, तो शरीर में चियर पाईन का तेल लगाना चाहिये।

६ १५ अक्टूबर के पहले नहर वाले जिलों में तथा पहाड़ की तराई वाले स्थान में ऊँटों का परेड नहीं कराना चाहिये।

७ सारा के दिनों में चरने के लिये, जानवरों को ऊंचे स्थानों में या जहां पर दलदल स्थान न हो वहां पर चरने देना चाहिये। हो सके तो जानवरों को दोपहर में चरना चाहिये और जलाशय से ½ मील का दूरी पर रखना चाहिये।

८ ऊंटों को १ जुलाई से लगातार ३१ अक्टूबर तक खरीद नहीं करना चाहिये, क्योंकि इन दिनों में सारा से पकड़ाये पशुओं का स्वास्थ्य देखने में अच्छा रहता है।

६ खरीदने पर पशुओं का ज्वर और रक्त परीक्षा करना चाहिये।

१० रीसालेदार ऊँटों के जत्थाओं पर बीच बीच में बराबर निरीक्षण होना चाहिये और ऊपर बताये नियम से जांच करनी चाहिये। जो बीमार निकलें उनको अलग दूर हटा कर रखना चाहिये।

११ जानवरों की भलाई और सफाई पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

१२ जख्मों की खबरगिरी या जिससे जख्म न हो ऊँटवानों को हिदायत करनी चाहिये।

नोट—नहरों तथा सिंचाई का प्रबन्ध अधिक हो जाने से पंजाब में ऊँटों के चारागाह की भी कमी पड़ गई है, तथा वे स्थान भी बीमारी के घर हो गये हैं। इसलिए पहाड़ी या स्वस्थ स्थानों में ऊँटों को रखने का प्रबन्ध करना चाहिये।

घोड़ों की गर्मी (DOURINE)

इसके भिन्न भिन्न नाम हैं—मैलडी कोइट, घोड़ों की गर्मी डूरीन जिसका माने अरबी में गरदा होता है।

प्रकृति—डूरीन एक छूत से फैलने वाली रोग है, जो घोड़ों को ट्रीपनोसोम द्वारा होता है, और जो घोड़े घोड़ियों के संयोग से फैलता है, जिससे पहले लिंग में या भग में सूजन होती है और उस के बाद ऊपर बताये हुए इन्द्रियों से मवाद आने लगता है, और शरीर के कई एक हिस्सों में चकते निकल आते हैं। जिससे रक्त की कमी दुबलापन और अन्त में लकवा होकर जानवर की मृत्यु हो जाती है। इस रोग की प्रकृति पुरानी होती है।

रोग का फैलाव—जहां तक देखने में आया है, यह रोग हिन्दुस्तान में नहीं पाया जाता है। १६०२ के पहले पंजाब और संयुक्त प्रान्त में देखने में आया था और कुछ दिनों तक था। परन्तु कार्रवाई किये जाने पर यह रोग फिर देखने में नहीं आया।

जिन देशों से घोड़े हिन्दुस्तान में आते हैं वहां इस रोग की उपस्थिति का ज्ञान होना आवश्यक है ईंगलिस्तान, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रिका, अरजेनटाइना और अरब में यह रोग नहीं पाया जाता है। लेकिन सीरीया और परसिया में यह रोग कुछ कुछ देखा जाता है।

किन किन पशुओं को यह रोग होता है—विशेष कर यह रोग घोड़ों और गदहों को होता है, और जो पशु अभिजनन के लिये रखे गये हैं उन्हीं में अधिकतर पाया जाता है आंडू घोड़े और घोड़ियां में यह रोग अधिक होता है और गदहों में कम होता है। अखते घोड़ों और खच्चरों में यह रोग नहीं होता है, लेकिन छूत लगने से हो सकता है।

कुत्तों में स्वभावतः यह रोग नहीं होता है लेकिन सुई द्वारा हो सकता है, इसलिये कभी कभी रोग जांच करने के लिये कुत्तों में सुई देने की आवश्यकता होती है। विशेष कर गदहों में यह रोग कठिनाई से पहचाना जा सकता है। देशी कुत्तों में इसके प्रति बड़ी सहन शक्ति होती है।

खरगोश और चूहों में यह रोग सुई द्वारा उत्पन्न किया जा सकता है। नर मादा के संयोग द्वारा भी रोग होता है। गौओं को यह रोग नहीं होता है।

अब तक मनुष्यों में इस रोग के होने का कोई खबर नहीं मिला है। मनुष्यों में जो गर्मी होती है, उससे इस रोग का कोई सम्बन्ध नहीं है।

कीटाणु और उसके नियम—ट्रीपनोसोम इक्वीपारडम इस रोग का कीटाणु है, जो सारा और नैगना से मिलता जुलता है, लेकिन उनसे कुछ छोटा होता है जो १८ से २६ यू०

लम्बा है। यह सारा के कीटाणु से चपलता में कम होता है, और उस कीटाणु के समान अधिक संख्या में नहीं पाया जाता है। यह आंड़ घोड़ों के लिंग से बीर्यपात तथा लम्भा के समान घोड़ियों के भग से जो पदार्थ गिरता है उसमें पाया जाता है। चकतों से रक्त लेने पर तथा शरीर के दूसरे भागों से रक्त लेने पर भी कीटाणु पाये जाते हैं। चकते निकलने के साथ ही उसमें कीटाणु पाये जाते हैं लेकिन कुछ घन्टों के बाद इनमें कीटाणु का मिलना दुर्लभ हो जाता है। फुले हुये स्थान में देर तक पाए जाते हैं इन सूजे हुए स्थानों के रसों में प्राय: कीटाणु नहीं भी मिलें, इसलिए रक्त निकाल कर जाँच करनी चाहिये। चुंकि अधिक संख्या में ये नहीं पाये जाते हैं, इसलिए इसके लिए सलाईड कुछ बड़ी होनी चाहिये जिससे बड़े स्थानों पर जाँच हो सके। चुंकि कीटाणु शरीर के बाहर कुछ ही घन्टों तक जीवित रहते हैं इसलिये रंग फौरन दे देना चाहिये इसके लिये लीसमैन का रंग बहुत ठीक होता है।

किस प्रकार शरीर में रोग होता है—स्वभावत: यह रोग अभिजनन से फैलता है। इसके किटाणु ट्रीपनोसीम से फरक होते हैं इनमें माँस के पर्दों में घुसने की शक्ति होती है। मिलन छोड़ कर दूसरे प्रकार से रोग बहुत कम होता है लेकिन मलने की चीजों से अथवा मल इत्यादि के सम्पर्क से रोग हो सकता है। कीड़ों द्वारा फैलने की कोई सम्भावना नहीं देखी जाती है परन्तु मक्खियों द्वारा यह रोग फैलाया जा सकता है।

जो रक्त शरीर से बाहर होते हैं, वो २४ घण्टे के बाद शक्तिहीन हो जाते हैं और उसी प्रकार लिंग और भग द्वारा जो मवाद गिरते हैं बहुत शीघ्र शक्तिहीन हो जाते हैं।

दो तिहाई घोड़ियों में बीमार घोड़ों के मिलन से रोग हो सकता है॥

रोग के चिन्ह या लक्षण—अभिजनन के ११ से २० दिनों के अन्दर रोग का लक्षण देखने में आता है।

इस रोग के लक्षण तीन हिस्सों में विभक्त किये जा सकते हैं।

(क) पहली अवस्था (ख) दूसरी अवस्था (ग) तीसरी अवस्था।

(क) पहली अवस्था—घोड़ों में रोग होने के समय कई एक बार पाल हो जा सकता है, तब उससे लक्षण बोध होने लगते हैं।

पहला लक्षण यह है कि पेशाब के रास्ते के खोल का नीचला भाग कुछ फूल जाता है, जो पहले ध्यान में नहीं लाया जा सकता है। उस भाग की परीक्षा करने पर यह पता चलता है कि लिंग में भी सूजन है, मवाद अन्दर से जारी है और भीतरी भाग लाल हो गया है और कुछ बाहर निकल आया है। उस ऊपर वाले खोल का सूजन धीरे-धीरे बढ़ता है और चढ़ते-बढ़ते पोते, दोनों जाँघों के नीचे तथा पेट के निचले

भागों पर पूरा असर ले आता है। सूजन छुने में ठण्ढा और दुखरहित होता है, लेकिन कभी-कभी गर्म और मोलायम होता है। जख्म के सुरसुराने से लिंग उत्तेजित हो जाता है और घोड़ियों की सम्भोग करने की इच्छा अधिक हो जाती है। यद्यपि ऐसी दशा में भी घोड़े सम्भोग कर सकते हैं, लेकिन गर्भ धारण करने की शक्ति इनके वीर्य में नहीं रहती है। आगे चल कर लिंग और पोते पर जख्म निकल जाते हैं।

घोड़ियों में घोड़ों के तुलना में लक्षण कम देखने में आते हैं। इनके भग में कभी एक ओर कभी-कभी दोनों ओर सूजन हो जाते हैं, जो बढ़ते-बढ़ते गुदामार्ग तक फैल जाते हैं। भग के नीचले परदों का रंग चमकीला लाल हो जाता है और उससे मवाद आता रहता है, पेशाव करने की इच्छा जल्दी-जल्दी देखी जाती है। इस अवस्था में ज्वर (१०१·४°) हो जाता है, लेकिन खाना पीना ठीक रहता है।

दूसरी अवस्था—चार या छः सप्ताह के बाद, गोल या अण्डाकार फोड़ा के समान जिसका आकार एक रुपये से लेकर मनुष्य के तलहथी के बराबर होता है जो शरीर के कई एक हिस्सों में निकल जाता है। अधिकतर गर्दन, कन्धा, सामने की छाती पर, पीठ पर तथा कमर जाँघों और पुट्ठों पर देखा जाता है। इन सूजनों को प्लैकस (Plaques) कहते हैं, जो इस रोग की विशेषता है। जो छूने में गढ़े प्रतीत होते हैं और देखने में बोध होता है जैसे कोई पदार्थ धातु के कटोरे के आकार का चमड़े

के नीचे रखा हुआ है। कभी-कभी वे इतने कम होते हैं कि जानवर के बगल से देखने पर देखे जा सकते हैं। इन फोड़ों की अवधि बहुत कम होती है, सबेरे निकलते हैं और रात म बिना कोई चिन्ह के गायब हो जाते हैं। और कभी ५ से ८ दिनों तक रहते हैं। कभी-कभी सूजन अधिक रहती है और अधिक दिनों तक ठहरती है। ये गर्म तथा दुखदायी नहीं होते हैं। ये फोड़े या चकते आगे चलकर जुरपीती के समान देखने में आते हैं।

रक्त की कमी और दूर्वलता अधिक देखने में आती है, जानवर बेखबर रहता है और बराबर सोया रहता है और उठने में दुख बोध करता है। लकवा के लक्षण प्रगट होते हैं, जानवर चलते समय पिछले टांग को घसीटता है, या पिछले मोजे को मोड़े चलता है। कमर दबाने पर मोलायम बोध होता है। इन्द्रियों की सूजन कठीन और पुरानी हो जाती हैं, और विशेष कर जाँघों की गिल्टियाँ फूल जाती हैं और कभी-कभी उनमें पीब भी आ जाती है। खाना-पीना इस पर भी ठीक रहता है। बुखार रहती है जो बीच-बीच में कम हो जाती है, बुखार कभी अधिक (१०२°) नहीं होती है। ऐसी दशा में यदि नर और मादे में कभी मिलने का संयोग हो तौभी गर्भ धारण नहीं हो सकता है, घोड़ियाँ अकसर अड़ा (Abortion) जाती हैं।

तीसरी अवस्था—इसमें रक्त की अधिक कमी होती है चलने फिरने की शक्ति जाती रहती है, लकवा हो जाता है,

और जानवर की मृत्यु हो जाती है। घोड़ों में चंगा होना नहीं पाया जाता है, लेकिन घोड़ियाँ १०० में २० या ३० के करीब आराम हो जाती हैं।

हिन्दुस्तान में इस रोग की अवधि १२ से १८ महीनों तक की है। गदहों के लक्षण भी ठीक घोड़े ही के सदृश्य होते हैं लेकिन रोग धीरे धीरे होता है और बेसी पुराना हो जाता है और रोग को शुरू में पहचानना कठिन है। जब बहुत जानवरों को रोग हो जाता है तब यह कहीं पहचान में आता है।

किन किन रोग से इस रोग का लक्षण मिलता है—बीमारी के शुरु में सारा (Surra) रोग के लिये भूल हो सकता है, लेकिन रोग के कथन से पहचाना जा सकता है। डूरीन अखते घोड़ों को नहीं होता है और उन घोड़ियों को नहीं हो सकता है, जो उन घोड़ों से पाल नहीं कराई गयी हों। जब ज्वर अधिक रहता है तब सारा रोग के कीटाणु रक्त में पाये जाते हैं। सारा में ज्वर खूब होता है और नीचे गिरता भी है। घोड़ों की गर्मी (Durine) में ज्वर नहीं होता है और रक्त में कीटाणु नहीं पाया जाता है, अगर मिलता भी है तो बहुत कठिनाई से। जब चकता एक बार निकल जाता है तो रोग पहचानने में कोई कठिनाई नहीं होती है।

परपरा हेमोरेजी का (Purpura Haemorrhagica) बीमारी के शुरू में कुछ कुछ इस रोग से मिलता जुलता है, लेकिन

इस रोग के इतिहास और सूजन उस रोग से दूसरे ही होते हैं।

यह रोग कभी कभी घोड़ों के कण्ठासार (Glanders farcy) रोग के लक्षण से गड़बड़ हो सकता है, लेकिन कण्ठासार को मेलिन द्वारा जांच (Mallein test) करने से ठीक बोध होता हैं। इन्द्रियों पर फोड़े का उठ जाना भी इससे गड़बड़ा सकता है। फोड़ा जो जानवर के लिंग या भग पर निकल जाता है, वह पाल करने के एक सप्ताह बाद निकलता है, जिससे इन्द्री में पहले अधिक गर्मी और सूजन होती, जिससे फोड़े निकल जाते हैं जो आगे चलकर फूट जाते हैं, और जख्म पर खट्ठी बैठ जाता है। तीन सप्ताह में इस रोग का अन्त हो जाता है, और उस स्थान पर उजला दाग रह जाता है।

रोग या रोगियों के प्रति व्यवहार—

१ हिन्दुस्तान में यह रोग देखे जाने पर रोग को दूर करने के लिये, जितने रोगी जानवर हैं क्या घोड़ा और क्या घोड़ी सब को मार डालना चाहिये। लेकिन इस प्रकार कब होता जब जितने घोड़े और खच्चरों के अभिजनन क्षेत्र हैं, सब सरकार के आधीन हों, तब ऊपर बताये नियम लागू हो सकता है।

२ यदि फिर हो जाय तो नीचे लिखे नियमों को काम में लाना चाहिये।

१ उन घोड़ियों को जो घोड़ों से पाल करने को जाने वाली हैं उनका निरिक्षण सावधानी से करना चाहिये। जिन घोड़ियों

के भग से किसी प्रकार का दूषित पदार्थ आता हो, केवल मासिक धर्म के रक्त स्राव को छोड़ कर, या किसी प्रकार का उस भाग का सूजन हो, तथा किसी प्रकार का सूजन जिन पर कुछ शंका हो, या बूढ़ी और दूर्बल घोड़ियों को भी घोड़े के पास नहीं जाने देना चाहिये।

(२) घोड़े के लिंग को कभी-कभी सावधानी से जाँच कर लेनी चाहिये। यदि कहीं थोड़ा भी जख्म हो, तो उस जानवर को तब तक काम में नहीं लाना चाहिये, जब तक उसके सभी शंका दूर न हो जाय। उन गदहों को जो खच्चर उत्पन्न करने के काम में लाये जाते हैं, उनकी परीक्षा पूर्ण रूप से होनी चाहिये।

(३) इस रोग की प्राकृतिक दशा सभी घोड़ों के मालिकों को मालूम करा देनी चाहिये।

(४) घोड़े या घोड़ियों में रोग हो जाने पर शीघ्र खबर देनी चाहिये।

(५) जिस जिले में रोग हो गया हो, वहाँ से जानवरों को हटा कर दूसरे ज़िलों में ले जाने तथा बिक्री वगैरह करने की सख्त मनाही होनी चाहिये।

(६) यदि जिले के अन्दर रोग फैल गया हो, तो घोड़ों का पाल करना बन्द कर देना चाहिये चाहे वे घोड़े सरकारी या गैरसरकारी हों।

(७) जितने रोगी जानवर हों सभी को मार देना अच्छा है। चिकित्सा से कोई विशेष लाभ नहीं पाया जाता है। जिन देशों में चिकित्सा इस रोग की होती है, वहाँ रोगी घोड़ों को अखता कर दिया जाता है और घोड़ियों को D लिखकर दाग दिया जाता है, ताकि वे फिर अभिजनन कार्य में न लाये जाँय।

राजयक्ष्मा
(TUBERCULOSIS)

इसके भिन्न-भिन्न नाम हैं—इसको कहीं यक्ष्मा, राज यक्ष्मा थाइसिस और कहीं-कहीं कफक्षई भी कहते हैं।

यह रोग हिन्दुस्तान के किसी-किसी भाग के जानवरों में पाया जाता है। खुली हवा में जानवरों को रखने से इस बीमारी का भय कम होता है। इस रोग के इतिहास से पता चलता है कि संसार के जिस-जिस स्थान पर जैसी-जैसी हवा रहती है, उसी प्रकार इस रोग की उन्नति देखी जाती है। जो पशु सदा बाहर रहते हैं, उनमें यह रोग नहीं रहता है और जो पशु मकान में बन्द रखे जाते हैं उनमें यह रोग अधिक पाया जाता है। इसी प्रकार गर्म जगहों के गौओं को भी यह रोग होता है।

प्रकृति—राज यक्ष्मा श्वाँस द्वारा फैलने वाला असाध्य रोग है, जो अनेक मनुष्यों तथा पशुओं में राज यक्ष्मा के कीटाणु द्वारा फैलता है, जिसमें फेफड़े तथा अन्य भागों में गिलटी के समान फोड़े निकलते हैं, जो आगे चलकर पक जाते हैं।

किन किन पशुओं को यह रोग होता है—सभी पशुओं को यह रोग स्वभावतः या सुई द्वारा फैलता है। गौओं में यह रोग अधिकतर होता है, भेंड़ या बकरे में यह रोग नहीं होता है। घोड़े, गदहे और खच्चरों को यह रोग प्रायः ही होता है। सुकरों में यह रोग खाद्य पदार्थों द्वारा फैलते पाया जाता है। कुत्ते और बिल्लियों में यह रोग स्वभावतः नहीं पाया जाता, लेकिन सुई देने से यह रोग इनमें हो सकता है। बन्दरों तथा हनुमान में यह रोग अधिक देखा जाता है, जब ये पशु पकड़ कर बन्द रखे जाते हैं। हिन्दुस्तान के ऊंटों में भी यह रोग देखा गया है। यह रोग चिड़ियों में भी अधिकतर पाया जाता है, यहां तक कि मुर्गियों बत्तकों तथा टर्की में यह रोग कभी कभी महामारी की तरह देखी जाती है। पिंजड़े के चिड़ियों में, जैसे तोते और मैनों में तथा कबुतरों में भी यह रोग होता है। बिलायती चूहों में मनुष्य तथा पशुओं वाले कीटाणु से अधिक मृत्यु होती है और खरगोशों में पक्षियों वाले कीटाणु से मृत्यु देखी जाती है। मनुष्यों में यह रोग बहुत भयानक और अधिक पाया जाता है।

कीटाणु और उनके शरीर में पैठने के नियम—तीन प्रकार की बीमारी अभी देखी जाती है, मनुष्यों की, गौओं की और पक्षियों की। इस रोग के कीटाणु जिसको राजयक्ष्मा का कीटाणु (Bacillus Tuberculosis) कहते हैं ऊपर बताए तीन जीवों में एक ही तरह के कीटाणु पाये जाते हैं, लेकिन हर जीव के अनुसार इनके स्वभाव में भी कुछ रद बदल पाये जाते हैं।

हर प्रकार के पशुओं में इन कीटाणुओं की शक्ति में भी कुछ रद बदल पायी जाती है। यहां तक देखा जाता है कि एक जीव से दूसरे जीव में बहुत कठिनाई से बदले जा सकते हैं। जैसे मनुष्यों के राजयक्ष्मा के कीटाणु गौओं पर कम असर करते हैं लेकिन गौओं के राजयक्ष्मा के कीटाणु मनुष्यों पर बहुत जोरदार असर कर सकते हैं। इस प्रकार के कीटाणुओं के रद बदल के प्रमाण के लिये, एक ही जिले या कस्बे में जहां गौओं में यह रोग होता है वहां पशुओं में भी देखा जाता है, या जहाँ पर तोतों या मैना में यह रोग देखा गया वहाँ पर मनुष्यों में भी यही बीमारी पाई जाती है। इस प्रकार यह देखने में आता है जैसे इस प्रकार का नियम हो गया हो।

राजयक्ष्मा के कीटाणु डण्डे के आकार के, दोनों सिरा गोलाकार और कभी-कभी थोड़ा टेढ़ापन लिये होता है जिसकी लम्बाई १-५ से ३-५ यू० और मोटाई २ यु० होती है। खेत के अणुओं की तिहाई भाग के आकार के होते हैं, गौओं में छोटे और मोटे होते हैं। सदा यह अकेला पाया जाता है, लेकिन कभी-कभी दो भी पाये जाते हैं लेकिन तीन या चार प्रायः ही कभी देखे जाते हैं। ये बहुत धीरे-धीरे बढ़ते हैं, प्राणियों के शरीर में हो या परीक्षा के समय हो। इसके रंग जाने का एक अद्‌भुत नियम है, जिसमें पुकसीन के लाल रंग कीटाणुओं पर चढ़ जाते हैं, जिसके बाद कोई धातु की कड़ी तेजाब या असली शराब (Alcohol absolute) देने से दूसरे कीटाणुओं के रंग छूट जाते हैं। लेकिन यह बात इसमें

नहीं देखी जाती है। इसलिये इसका नाम एसीड एलकोहल फासट (Acid Fast) भी कहते हैं। इसी से इस रोग की जाँच भी की जाती है।

इसकी उन्नति ऑक्सीजन की उपस्थिति या अनुपस्थिति दोनों में देखी जाती है, लेकिन प्रकाश से इसको हानि पहुँचती है। मामूली सूर्य किरण, ७ से १८ रोज के अन्दर इसको मार सकती है। कड़ी धूप इन कीटाणुओं को बलगम में पृथ्वी पर या कोई कड़ी चीज पर रहने से कई घन्टों में मार सकती है। जमीन में या गरदों में मिलकर १३७ दिनों तक जीवित रह सकता है सुखे हुये बलगम में ६ से १० महीने तक जीवित रह सकता है और जल में ५० से ७० दिनों के बाद भी जीवित पाया जाता है। १४०° को गर्मी इसको एक घन्टे में मार सकती है, खौलता हुआ जल $\frac{१}{२}$ घन्टे में मार सकता है। ठण्ढे से इस पर कोई असर नहीं होता है। नमक इसको १ महीना में मार सकता है, १०.५ का बना हुआ कारबोलिक एसिड ३० सेकन्ड में और १ में १००० का बना हुआ पोटास का लोसन १० मिनट में मार सकता है।

यह रोग श्वाँस, खाद्य तथा सुई द्वारा शरीर में प्रवेश करता है। पशुओं में अधिकतर श्वाँस द्वारा, बीमार पशुओं के निकट रहने से होता है, क्योंकि बलगम इत्यादि में इस रोग के किटाणु अधिक पाए जाते हैं।

रोगी पशुओं के दूध पीने से छोटे बछड़ों को रोग उत्पन्न हो जाते हैं, इसलिये पहले रोग अमाशय में प्रगट होता है। इसलिये कभी-कभी चमड़े पर ऐला के समान इस रोग के फोड़े पाये जाते हैं।

सूकरों में खाद्य पदार्थों द्वारा रोग फैलते पाया जाता है, जिसमें जख्म कण्ठ में और आंतों के भीतर पाए जाते हैं। चूहों में भी ठीक इसी प्रकार यह रोग फैलता है।

इस प्रकार का बहुत कम पाया जाता है कि मनुष्य या कोई पशु इस रोग के साथ पैदा हों। यह रोग खानदानी नहीं होता है, जो बछड़ा किसी रोगी मां से पैदा हुआ हो, उसको नीरोग पाला जा सकता है। इसके अलावे और भी बहुत से कारण हैं जिससे रोग हो सकता है, जैसे अधिक दूध देने वाली गौओं में, बच्चे में सम्भोग कराने से, एक ही खानदान से सम्भोग कराने से किसी रोग द्वारा दुर्बल होने से एक साथ बहुत पशुओं को रखने से भी रोग हो सकता है।

पशुओं में रोग के लक्षण—यह रोग अधिकतर पुराने स्वभाव का होता है और तीन प्रकार का पाया जाता है, जैसे फेफड़े का, आमाशय का और स्तन का। बिना किसी शंका के यह महीनों तक योंही पड़ा रह जाता है। फेफड़े में रोग होने से फेफड़ा, फेफड़े का पर्दा (Pleura) और वक्षस्थल की गिल्टियां भी रोग ग्रस्त हो जाती हैं। खांसी रहती है, और छाती की परीक्षा करने पर भद्दा शब्द सुन पड़ता है। पशु दोनों अगले पैर को

फैला कर सीधा खड़ा होता है और पसली के ऊपर दबाने से दर्द बोध करता है। आगे चल कर यह लक्षण अधिक बढ़ जाता है और ज्वर जो पहले कम रहता है पीछे अधिक हो जाता है। शरीर का दुबला होना और रोगी के समान दीखना ये इसके विशेष लक्षण हैं। आगे चल कर जानवर बहुत सूख जाता है, खांसी बहुत जल्दी जल्दी और दुखदाई होती है और मुख के मसूड़े इत्यादि देखने से पीला दीख पड़ता है इस दशा में रोग को पहचानने में अधिक कठिनाई नहीं होती है पेट के रोग में जिसको टेबसमेस्नेट्रीका (Tabes Mesentrica) कहते हैं, जिसमें आंत, आंत की गिल्टियां, आंत के परदे, कलेजा, तिल्ली, और यकृत आदि में रोग हो जाते हैं। कितना भी खिलाने से पशु की दशा दिन पर दिन खराब होती जाती है और अमाशय का रोग जैसे पेट का फूल जाना तथा अनपच रहना देखा जाता है। गुदामार्ग द्वारा पेट के अन्दर के फोड़े देखे जा सकते हैं। आमाशय में राज यक्ष्मा होने को पाइनरस (Piners) कहा जाता है। स्तन की बीमारी प्रायः बाहर से होती है लेकिन अधिकतर साधारणतः रोग हो जाने पर पीछे पाया जाता है। पहले बगैर किसी तकलीफ का एक कड़ा सूजन एक या दो, स्तन पर दीख पड़ता है जिससे दूध करने में कोई कमी नहीं रहती है। उसके बाद स्तन के ऊपर छोटे छोटे गिरह के समान उत्पन्न हो जाते हैं और दूध पीला पानी के समान कुछ फटा हुआ और कीटाणुओं से भरा हुआ पाया जाता है, स्तन की गिल्टियों में सूजन देखा जाता है।

दूसरे पशुओं में भी ठीक यही लक्षण पाया जाता है जानवर के फाड़ने पर (Post Mortem) फोड़ा फेफड़ा पर, फेफड़े के परदे तथा मीडीयाइस्टानल ग्लैंड (Mediastinal Gland) और ब्रोनकिअल (Bronchial) इत्यादि में पाया जाना वक्षस्थल के अन्दर रोग होने से देखा जाता है और फोड़ा का आंत, आंत के परदे, कलेजा तथा तिल्ली में आमाशय के भीतर रोग होने से पाया जाता है फोड़े प्रत्येक भाग में भी पाये जाते हैं। ये फोड़े पहले बहुत छोटे सरसों के दाने के बराबर होते हैं जो आगे चलकर मटर के दाने के बराबर और फिर इससे भी बड़े होते हैं। जो फेफड़ों के परदे पर पीले लाली लिए हुए गोभी के फूल के समान होते हैं जिसको अंगूर (Grapes) कहा जाता है।

छोटे दाने शीशे के समान होते हैं और जिसमें कीटाणु पाए जाते हैं। इसके अन्दर बड़ा सेल (Large Cell) होता है जिसको जैन्ट सेल (Gaint Cell) कहते हैं जो बीच में होता है और उसके किनारे छोटे गोलाकार लीम्फवायड सेल (Lymphoid Cell) होते हैं कीटाणु बड़े सेल में पाए जाते हैं। दाने के किनारे के परदे लाल होते हैं। कुछ दिनों के बाद इन दानों में छाली के समान हो जाते हैं। इस छाली का होना इस रोग का विशेष लक्षण है। पुराने रोगियों में इन दानों या फोड़ों को काटने से मवाद निकलते हैं, जिसके पश्चात् इसमें फोड़े के कीटाणु आक्रमण करते हैं और अधिक फोड़े देखने में आने लगते हैं।

परीक्षा—रोग की जाँच खुर्दबीन या टुबरकुलीन टेस्ट द्वारा की जाती है।

खुर्दबीन की जाँच पशुओं में सफलता पूर्वक नहीं होती है, क्योंकि बलगम पशु द्वारा निगल लिया जाता है। स्तन की राजयक्ष्मा रोग में दूध की जाँच खुर्दबीन द्वारा की जा सकती है। इसके लिये विशेष रंगने की जरुरत होती है, सबसे अच्छा नियम रंगने के लिये, जिल नेलसन औफ कारबोलेट औफ फुकसीन है (Zichl Neison, By Carbolate Of Fuchsin) (जिसमें कारबोलिक एसीड की मात्रा सैकड़े ५ और $\frac{१}{१०}$ भाग फुकसीन रहता है) अधिक रंग हो उसको जल द्वारा धो डालना चाहिये और तब सैकड़े में ५ भाग की मात्रा से सलफीयरीक एसीड या सैकड़े १५ भाग नाईट्रिक एसीड द्वारा देकर रंग छोड़ देना चाहिये। जब रंग छुट जाय, तब १०० में ७० भाग का शराब ढालना चाहिये, तब उस पर जल देना चाहिये। फिर उसके ऊपर सैकड़े १ भाग का मैथलिन बुलु, सलीवसन देकर रंगना चाहिये और अधिक रंग को जल से धो डालना चाहिये। इस प्रकार से राज यक्ष्मा के कीटाणु लाल हो जाते हैं और दूसरे कीटाणु नीले रंग के हो जाते हैं।

टुबर कुलिन टेस्ट (Tuber Culin Test.) टुबर कुलीन जो राजयक्ष्मा के कीटाणु को शुद्ध करके बनाया जाता है, जिसकी सुई राजयक्ष्मा के रोगियों को चमड़े के नीचे देने से

२° फ० अधिक ज्वर हो जाता है, या सुई देने के २४ घन्टे पश्चात् और भी ज्वर अधिक हो सकता है, ज्वर प्राय: ८ घन्टे के बीच में बढ़ता है।

परीक्षा के नियम—सावधानी पूर्वक परीक्षा के पहले ज्वर देखना चाहिये। परीक्षा १० से ११ बजे सबेरे करनी चाहिये। पीचकारी को उबाल कर या कारबोलिक एसिड के लोसन में शुद्ध कर लेनी चाहिये। पीचकारी के सुई के नोक को असली कारबोलिक एसीड में शरीर में घुसाने के पहले और बाद डुबा देनी चाहिये। ज्वर ८ घन्टे के बाद ६ या ७ बजे भोर में लेनी चाहिये, और फिर दो-दो घन्टे १६ घन्टे तक ज्वर देखना चाहिये। ज्वर को कागज पर लिखकर रखना चाहिये जिससे देखने में आवे कि कब ज्वर कितना बढ़ा या घटा है। इस बात की खबरगिरी करनी चाहिये जिससे परीक्षा के प्रथम बुखार न रहे, जानवर को धूप में नहीं जाने देना चाहिये या किसी तरह की हवा नहीं लगनी चाहिये, गाय के बच्चा देने के तीन हफ्ते तक पूरी खबरगिरी रखनी चाहिये। जानवर को आराम देना चाहिये तथा आसानी से छुना चाहिये।

टुबरकुलीन देने के दूसरे नियम

(OPTHALMIC TEST)

आँख या नेत्र में टुबरकूलीन देने के नियम—असली टुबरकुलीन के कुछ बुन्द आँख के परदे के अन्दर डाल देना चाहिये और

सिर को ऊपर उठा कर, ऊपर तब तक रखना चाहिये जब तक दवा तमाम आँख में घुल न जाय। रोगी पशुओं में आँख सूज जाती है और आँख के कोने पर काँची दीख पड़ती है। आँख में सूजन आठ या नौ घन्टे में शुरू होती है, और २० घन्टे तक या कई एक दिनों तक रहती है। दूसरे तरह के नियमों से दवा इसके साथ दी जा सकती है, उसमें कोई त्रुटि नहीं होती है।

चमड़े के नीचले परदे के नियम
(INTRADERMIC METHOD)

इस नियम में चार या पाँच बुन्द अच्छी तरह के बने हुये टुबरकुलीन को पूँछ के नीचे वाले परदे में सुई द्वारा देनी चाहिये, इससे रोगी पशुओं में २४ घन्टे के अन्दर सूजन हो जाती है, जो गिल्टी के समान कौड़ी से कुछ बड़ी देखने में आती है, जो कई एक दिनों तक रहती है, सामने के परदों में कोई रद बदल नहीं होता है।

चमड़े के नीचे वाले परदे में दोबारा टुबरकुलीन देने के नियम—इसमें बिना कुछ मिश्रित किए $\frac{१}{१०}$ सी. सी. टुबरकुलीन की सुई द्वारा गर्दन के चमड़े के नीचे दो बार दी जाती है। दूसरी खुराक ४८ घन्टे बाद दी जाती है। सुई का असर सुई के स्थान के सूजन को दबाने से और नापने से पता चलता है।

(क) सुई देने के नियम—

१ मध्य गर्दन पर करीब चार इंच लम्बा चौड़ा बाल छाँट कर खूब साफ कर देना चाहिये।

२ उस बाल छाँटे हुए गर्दन के चमड़ा को अँगूठा और तर्जनी ऊँगली से पकड़नी चाहिये। तब सुई और पीचकारी जो पहले से उबाला हुआ हो, उसी सुई को चमड़े के नीचे टेढ़ा घुसाना चाहिये जिसमें टुवरकुलीन १ मात्रा हो (सुई देने के कबल देख लेना चाहिये कि औषधि कहीं-कहीं से चूती न हो।)

३ सुई जितनी नीचे दी जाती है उसका असर उतनी ही अधिक होती है और जो सुई कुछ ऊपर दी जाती है उसका असर कुछ कम देखने में आता है। लेकिन देखना चाहिये की सुई एक दम अन्दर न जाय जब सुई ठिकाने से अन्दर दी जाय तब टुवरकुलीन पीचकारी द्वारा दे देना चाहिये। डरमीस (Dermis) में सुई देने के लिये कुछ अधिक पीचकारी को दबाने की आवश्यकता है। जब ठिकाने से सुई दी जाती है तब मटर के दाने बराबर सूजन चमड़े पर निकल जाता है।

४ दूसरी सुई पहली सुई देने के ४८ घन्टे बाद दी जाती है, दवा की मात्रा एक ही ($\frac{१}{१०}$ सी. सी.) है। दूसरी सुई देने की अवधि ७२ घन्टे तक बढ़ाई जा सकती है। कुछ सूजन तो सुई देने बाद निरोग जानवरों को भी होती है, लेकिन सूजन रोगी

जानवरों में अधिक होती है। दूसरी सुई ठीक पहली सुई की तरह सूजन जो पहली सुई से उत्पन्न होती है उसके मध्य में दी जाती है।

(ख) सुई के असर जांचने का नियम—

५ सुई पड़े हुये स्थान की मोटाई नापने के लिये एक जोड़े कैलीपरस (Calipers) के द्वारा की जाती है जिसे सूजन के स्थान को कैलीपरस से उठाने से चमड़े की मोटाई देखी जाती है।

६ सूजन की मोटाई पहले सुई देने के पश्चात् तुरत और प्रत्येक २४ घन्टे पर नापनी चाहिए। ठीक इसी प्रकार दूसरी सुई देने के बाद भी तुरत नापनी चाहिये। सूजन की मोटाई नापने से यह मालूम हो जाता है और दूसरी सुई देने में सुगमता होती है।

७ सुई दिए स्थान को धीरे से दबा कर देखनी चाहिए कि सूजन गर्म है या सर्द, मुलायम है या कड़ा और सूजन कितनी है, इसको लिख कर रखना चाहिए।

(ग) फल का बिचार—

८ नीरोग जानवरों में सुई देने पर थोड़ी सूजन होती है, सुई देन के २४ घण्टे बाद नापने पर सूजन बोध होता है, और ४८ घण्टे बाद सूजन कम होने लगती है। कभी-कभी सूजन में कोई रद बदल नहीं होती है सूजन छुने पर गर्म या मोलायम नहीं होती है और मटर के दाने बराबर गिल्टी देखी जाती है, जसके बगल में कोई पनछा इर द जमा नहीं रहता है।

९ रोगी जानवरों में सूजन २४ घण्टे बाद अधिक मोटी हो जाती है, वह सूजन ४८ घण्टे तक बढ़ती जाती है, किसी-किसी में सूजन कुछ कम भी पायी जाती है। सूजन छूने से गर्म, मोलायम और पास में मवाद भरा ऐसा मालूम होता है और छूने से जानवर को कुछ दुःख मालूम होता है, जो निरोग जानवरों में नहीं पाया जाता है।

१० कभी-कभी रोगी जानवरों में अधिक सूजन नहीं भी देखी जाती है। इसलिए शंकावाले पशुओं में दूसरी सुई देने के पश्चात् ४८ घण्टे पर सूजन जैसी रहे उसी प्रकार बिचार करना चाहिये।

११ ठीक से सूजन नापने से ही रोगी और निरोगी पशुओं का पता चलता है, जिससे सूजन के छूने पर और सूजने की दशा से रोग का अनुभव किया जाता है।

१२ भैंसों में सुई का असर पशुओं से अधिक देखा जाता है। कभी-कभी सूजन इतनी कठिन होती है कि चुटकी में पकड़ने से नहीं पकड़ाता है।

कौनसेनट्रेटेड टुवरकुलीन (Concentrated Tuberculin) जो मुक्तेश्वर में बनता है उसका असर हिन्दुस्तानी पशुओं में और स्थानों की तुलना में टुवरकुलीन से अच्छा असर पाया जाता है।

रोगी पशुओं के प्रति क्या व्यवहार करना चाहिये—

१ जिन पशुओं में बीमारी ठहरायी गयी हो या वैसे गौओं में जिनके स्तन में इस रोग की शंका हो, उनको ग्राम से या गोहाल से एकदम अलग हटा कर रखनी चाहिए, जहाँ पर कोई दूसरा पशु या मनुष्य न जाये, सिर्फ एक मनुष्य अलग से चारा पानी देकर चला आवे, और दूसरे स्थान पर जाने के पहले हाथ पैर खूब कारबोलिक साबुन से धो डाले।

२ गौशाला इत्यादि जहां कहीं इस रोग का सन्देह हो, वहां टुवरकुलीन द्वारा जांच करनी चाहिये, और जो रोगी ठहरें उनको न० (१) में बताए हुए नियम का पालन करना चाहिये।

३ बाहर से आए हुये जानवरों को और गौओं के साथ रखने के पहले टुबरकुलीन द्वारा परीक्षा करनी चाहिये।

४ बीमार पशुओं के स्थान को शुद्ध करने के नियम में बताये अनुसार करनी चाहिये। शुद्ध जानवरों के खाने के नाद, दीवाल, गच, बिछावन या कोई भी ऐसी वस्तु जिसके साथ रोगी के लार, बलगम, गोबर इत्यादि मिश्रित हुआ हो शुद्ध कर डालना चाहिये। गोबर को जला डालना चाहिये, क्योंकि पशु का बलगम जिसमें रोग के कीटाणु रहते हैं उनको निगल जाते हैं, और जिनपर आम्लरस से कोई हानि नहीं पहुँचाई जा सकती है।

५ जब तक स्वस्थता की परीक्षा न हो जाय तब तक उन गौओं का दूध जिनके स्तन में कोई रोग इत्यादि हो नहीं खानी चाहिये।

६ जब तक टुवरकुलीन द्वारा परीक्षा न हो जाय और दुबलापन से ... अच्छी नहीं रहने से यदि इस रोग का सन्देह हो तो १ घन्टे ... उबाल कर तब तक खाना चाहिये।

७ दूध के बर्तन को अच्छी ... भाफ करना चाहिये भाफ और खौलता हुआ जल इस काम के लिये ... अच्छा है, क्योंकि दवा इत्यादि में लाने से दूध और घी का स्वाद बदल जाता है।

८ पशुओं का मांस रोग से दूषित नहीं होता है।